वर्ष 39, अंक-4, जुलाई-अगस्त, 2016

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23370633
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1 अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 3388, 3347

गगनांचल

जुलाई–अगस्त, 2016

प्रकाशक

सी. राजशेखर

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली

संपादक

नम्रता कुमार

उप-महानिदेशक

सहायक संपादक

डॉ. पूजा खिल्लन

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002

ई-मेल : ddgnk.iccr@nic.in; pohindi.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
		यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
		यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि. नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

हमारे अभिलेखागार से
बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की
गतिविधियों की एक झलक 4

लेख

प्रसाद के नाटकों में नारी अस्मिता की खोज 8
अरुण कुमार वर्मा

सिन्धु घाटी सभ्यता की विशेषताओं का कलात्मक अध्ययन 11
स्वाति रेखी

आदिकालीन रासो साहित्य 18
सकीना अख्तर

लोक संस्कृति का वैविध्य और हिमालय 20
गंगा प्रसाद विमल

अनुभूतिजन्य यथार्थ के साधक रामदरश मिश्र 24
डॉ. वेद मित्र शुक्ल

रोमानिया में भारत और भारतीयता का रूमानी संसार 28
अनीता वर्मा

पर्यटन और संस्कृति का बेजोड़ संगम : उत्तराखण्ड 32
डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

ऐतिहासिक और दर्शनीय स्थल के संदर्भ में
अजमेर का सांस्कृतिक महत्त्व 35
उर्मिला शर्मा

विद्यापति की परिचयात्मक काव्य-यात्रा 41
सीताराम पाण्डेय

श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्यात्मक अवदान 46
डॉ. अनुपम कुमार

कामतानाथ की रचनाशीलता 'काल-कथा' के संदर्भ में 49
धर्मपाल सिंह

कवि घाघ की कहावतों में कृषि विज्ञान 52
अशोक मनोरम

लक्ष्मी का प्रतीक है—विश्व की आदिमुद्रा कौड़ी 55
प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा

लोक जीवन में संगीत 57
डॉ. अनुपमा कुमारी

नालन्दा के संस्कृत अभिलेखों में दान का स्वरूप 59
डॉ. देवेन्द्र नाथ ओझा

ललित निबंध

मैं तुम्हारा पता नहीं जानता 61
उमेश कुमार सिंह

संस्मरणात्मक यात्रा-वृतांत

हिमाचल से नालदेहरा पुकारता 64
आरती स्मित

साक्षात्कार

कविताओं के पास हैं अभी मनुष्य 70
(वरिष्ठ कवि दिविक रमेश से श्याम सुशील की बातचीत)
श्याम सुशील

लघु कथाएं

ये बेचारे तो, बस जी रहे हैं/मैं भिखारी नहीं हूँ 74
डॉ. सुरेन्द्र गुप्त

कहानी

दादाजी के सपने 77
ऋषि मोहन श्रीवास्तव

गर्लफ्रेंड 79
डॉ. पूजा खिल्लन

शोधार्थी 81
वनिता उप्पल

कविता/गीत/गज़ल/दोहे/नवगीत

वीरानियाँ भी हैं/चल त्याग कलम को तू हितेश 83
हितेश कुमार शर्मा

फिर से इक नई कहानी होगी 83
मंजुश्री

बँटवारा/धन्यवाद 84
रश्मि रमानी

कविता 85
डॉ. किश्वर सुल्ताना

चले गए हम/याद रख 85
ओम प्रकाश अडिग

कविताएँ 86-87
डॉ. पुष्पलता कुमार

गजलें 87
रामबहादुर चौधरी 'चंदन'

मन, मेरे आज उदास न हो/ऊपर-ऊपर जीता हूँ 88
सतीश गुप्ता

इस फैलते हुए शहर में/अंतिम गान की पृष्ठभूमि 89
राजेन्द्र राजन

नारी शक्ति 89
डॉ. पुष्पा प्रसाद

पुस्तक-समीक्षा

पुनर्मूल्यांकन का जोखिम 90
सुनील मांडीवाल

नरेन्द्र मोदी : एक मूल्यांकन 92
सुनील कुमार वर्मा

राष्ट्रीय एकता की मजबूत कड़ी 93
गंगा प्रसाद विमल

संपादक की ओर से

साहित्य का एक कार्य गलत के प्रति हस्तक्षेप दर्ज करना और सही का मार्ग अवलोकित करना भी है। उसकी यही संवेदनशीलता साहित्य की पहचान है। किन्तु आज यह कार्य कठिन से कठिनतर होता जा रहा है और साहित्यकार अब सिर्फ लेखक बनकर रह गया है। जिस तरह महात्मा गाँधी ने एक दफा कहा था कि ''केवल अन्याय करने वाला ही दोषी नहीं होता अपितु उसे सहने वाला भी अपराधी होता है।'' उसी तरह साहित्य के दृष्टिकोण से सही-गलत को आपस में उलझा कर सच के मर्म से खिलवाड़ करने वाला लेखक भी समाज के लिए अहितकर है। परन्तु त्रासदी यह है कि हमारे समय में इस तरह के लेखन की भरमार है। विमर्श, विचारधारा और गोष्ठी के नाम पर सत्य को गड्ड-मड्ड और तोड़-मरोड़ कर पेश करने की एक परंपरा-सी चल पड़ी है। जबकि अच्छा साहित्य आत्मा की खुराक है। केवल उसका बाह्य और व्यावहारिक पक्ष ही नहीं बल्कि आन्तरिक पक्ष भी काम्य है। हमारे प्राचीन साहित्य में मूर्त-अमूर्त, बाह्य-आंतरिक, सैद्धान्तिक-व्यावहारिक पक्षों में संतुलन की धारा प्रवाहित होती रही है। यदि इस कसौटी से परखें तो आज के साहित्य में एक तरह का सतहीपन और छिछलापन साफ नजर आएगा। अपनी बात को व्यापक संदर्भ से जोड़ते हुए मैं स्पष्ट करना चाहूँगी कि साहित्यकार ईमानदारी, सदाशयता, प्रेम, सौहार्द्र, सहिष्णुता जैसे अमूर्त्त मूल्यों को मूर्त्त रूप में सृजित करता है। प्रेमचन्द और प्रसाद जैसे साहित्यकारों ने यही किया और अपने समय से भी आगे की रचनाएँ समाज को दीं। कहना न होगा कि उनसे पूर्व के रचनाकार भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं थे। किन्तु आज का साहित्य पूर्णतया वर्तमान केन्द्रित हो चला है। जिसमें पुराने मूल्यों का तो अवमूल्यन हुआ ही है, नए मूल्यों का सृजन भी नहीं हो पा रहा है। तो हमें यह बात भी सोचनी होगी कि बिना मूल्यों के समाज चलेगा किस प्रकार? इससे समाज में दिनोंदिन अराजकता बढ़ती जाएगी। इस स्थिति से निबटने का हल भी हमें जल्द सोचना होगा। वरना संस्कृति और सभ्यता के नाम पर खोखले विमर्शों के अलावा कुछ और शेष नहीं बचेगा। इस अंक में गंगा प्रसाद विमल, अनुपम कुमार, अनुपमा कुमारी, देवेंद्र नाथ ओझा, युवा सहायक संपादक डॉ. पूजा खिल्लन, वेद मित्र शुक्ल, वनिता उप्पल की रचनाएं एवं अन्य रचनाएं पठनीय हैं। पत्रिका में सहायक संपादक डॉ. पूजा खिल्लन द्वारा सामग्रियों का चुनाव एवं चयन भी सराहनीय है। यह उनके गुण-ग्राह्यता का प्रमाण है। फिलहाल अपनी ओर से इतना ही।

नम्रता

(नम्रता कुमार)
उप-महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

हमारे अभिलेखागार से

बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की गतिविधियों की एक झलक

आइरिस मर्डोक (यू.के.) द्वारा व्याख्यान (30, जनवरी, 1967)

श्री जे. बी. प्रीजले (यू.के.) द्वारा व्याख्यान (13 फरवरी, 1965)

डॉ. जे. वी. नार्लीकर (भारत) द्वारा व्याख्यान (11 मार्च, 1965)

लॉर्ड बटलर द्वारा आजाद मैमोरियल व्याख्यान (18 मार्च, 1970)

डॉ. लाइनस पॉलिंग द्वारा आजाद मैमोरियल व्याख्यान—1967 (2-3 फरवरी, 1967)

डॉ. डी.एस. कोठारी द्वारा आजाद मैमोरियल व्याख्यान (26-27 फरवरी, 1970)

प्रसाद के नाटकों में नारी अस्मिता की खोज

अरुण कुमार वर्मा

लेखक रीवा (म.प्र.) में जवाहर नवोदय विद्यालय में पी.जी.टी. (हिन्दी हैं)। लेखन में रुचि व भागीदारी।

जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य की विमल विभूति के साथ भारतीय संस्कृति के पुरोधा भी थे। इन्होंने न केवल भारतीय संस्कृति का अध्ययन किया बल्कि इसे मथकर इसका अवलेह हमारे सामने रखना चाहा था। नारी किसी भी साहित्य, समाज और संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। नारी की पूजा नहीं बल्कि उसकी भागीदारी की जरूरत है जिसे प्रसाद जी ने महसूस किया था। जिसकी पूजा होनी चाहिए उसकी पूजा हम नहीं कर पाते। नारी को पूज्य बनाकर उसके अधिकार को छीनने की परम्परा से आगे बढ़कर समाज और राष्ट्र के हितों को ध्यान में रखते हुए उसके अधिकार निर्धारित करना चाहते थे।

प्रसाद जी की दृष्टि इतिहासपरक थी। इसको स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है, ''इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारे जलवायु के अनुरूप जो हमारी अतीत सभ्यता है उससे बढ़कर कोई आदर्श होगा ही नहीं, इसमें हमें पूर्ण संदेह है।'' प्रसाद पर आरोप लगाया जाता रहा है कि वे अतीतपोशी थे। यह नितांत भ्रामक है। उन्होंने अपने अतीत को कभी भी आँख मूँद कर स्वीकार नहीं किया बल्कि वे अतीत के अनुभवों के द्वारा वर्तमान और भविष्य का निर्माण करना चाहते थे। उन्होंने अपने निबंध में लिखा भी है, ''अतीत और वर्तमान को देखकर ही भविष्य का निर्माण

होता है।'' इनका अतीत परक दृष्टिकोण हमारा सांस्कृतिक अनुशीलन है। हम अपनी सांस्कृतिक जमीन से जुड़कर ही विकास के अच्छे सोपान गढ़ सकते हैं क्योंकि उसमें हमारे पूर्वजों का अनुभव समाहित है।

हमारा विषय प्रसाद के नाटकों में नारी अस्मिता की खोज है। इसके लिए जरूरी है कि हम उनकी मान्यताओं को जानें। जब हम प्रसाद के नाटकों का अनुशीलन करते हैं तो पाते हैं कि वे नारी अस्मिता के प्रति कितने जागरूक थे। वे ऐसी अस्मिता स्थापित करना चाहते थे जो स्वस्थ, सकारात्मक सोच के लिए अपने और राष्ट्र के विकास के लिए प्रयत्नशील हो। वे कभी भी अपने को 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' के भाव से नहीं जोड़े और न ही नारी को 'अबला जीवन की कहानी' ही माना है। इनके साहित्य में नारी शक्ति के रूप में स्थापित हुई है। वे कोरे आदर्शवादी भी नहीं थे। इन्होंने मानव प्रवृत्तियों का खिंचाव ईश्वर की ओर न मानकर उसका हल इस लोक में खोजा है। इसी को केन्द्र में रखकर अलका और ध्रुवस्वामिनी जैसे स्वस्थ और शक्तिशाली चरित्र को उभारा है।

प्रसाद जी ने नारी चरित्र को जीवन के विभिन्न धरातलों पर प्रस्तुत किया है। एक ओर वे सहचरी के रूप में देवसेना का चरित्र प्रस्तुत करते हैं जो त्याग और समर्पण की प्रतिमूर्ति है। वह मानसिक दुर्बलता का शिकार स्कंदगुप्त को नियंत्रित करते हुए राज्य की ओर लगाती है, ''अब राज्य की लालसा नहीं है। एकांत में किसी कानन के कोने में तुम्हें देखता हुआ जीवन व्यतीत करूँगा, एक बार कह दो।'' यहाँ एक प्रेयसी के रूप में देवसेना के माध्यम से उसके कर्त्तव्य को निर्धारित करते हुए लिखते हैं, ''तब तो और नहीं, आपको अकर्मण्य बनाने के लिए देवसेना जीवित नहीं रहेगी।'' वहीं 'राज्यश्री' विधवा और बहन के रूप में अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए भाई को राज्य कार्यों की सलाह देती है। उन्होंने पत्नी के रूप में चित्रलेखा और पद्मावती का सशक्त चित्रण किया है।

प्रसाद जी कुछ अर्थों में आदर्शवादी जरूर थे, लेकिन उन्होंने कभी भी ऐसा चरित्र दिखाने की कोशिश नहीं कि जो सिर्फ आदर्श ही रह जाए। उन्होंने मानवीय गुणों को ध्यान में रखते हुए मानव सुलभ दुर्बलताओं को भी स्वीकार किया है। वे ऐसी नारी का चरित्र प्रस्तुत करना चाहते थे जो आधुनिक हो, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो और सुसंस्कृत भी हो। प्रसाद जी ने जिन अधिकारों की बात कही है वह स्वतंत्रता है स्वच्छंदता कभी नहीं। 'ध्रुवस्वामिनी' उनकी 1933 ई. के आस-पास की रचना है। उस समय में उन्होंने

ऐसे अधिकारों की बात कही है जो आज भी हमारी सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं कर पायी है। आज भी न जाने कितनी नारियाँ ध्रुवस्वामिनी जैसी समस्याओं की शिकार हैं। ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से पुनर्विवाह जैसी मान्यता पर विचार हेतु समाज के समक्ष रखना चाहते थे। इसका हल भी उन्होंने भारतीय संस्कृति में खोजने का प्रयास किया है। नाटक की भूमिका में इसका स्पष्टीकरण करते हुए कौटिल्य के अर्थशास्त्र का उदाहरण प्रस्तुत किया है—

''नीचत्वं परदेशं वा
प्रस्थितो राजकिल्विषी।
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः
क्लीवोऽपिवापतिः।।''

धर्मशास्त्र और कर्मकांडों पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए एवं नारी की दशा बताते हुए ध्रुवस्वामिनी कहती है, ''संसार मिथ्या है या नहीं, यह तो मैं नहीं जानती परन्तु आपके कर्मकांड और शास्त्र क्या सत्य हैं? जो रक्षणीया स्त्री की यह दशा हो रही है।'' उसने रामगुप्त का त्याग यूँ ही नहीं किया। वह उससे याचना करती हुई कहती है, ''आज मैं शरणप्रार्थिनी हूँ। मैं स्वीकार करती हूँ कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई। किन्तु आज मेरा अहंकार चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी होकर रहूँगी।'' इस पर भी जब अपने आप को सुरक्षित नहीं पाती, तब उसका शाश्वत नारीत्व गरज उठता है। वह निश्चय कर लेती है, ''मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं करूँगी।'' परिस्थितिवश उसके चरित्र का निर्माण हुआ है और उसने जिन परिस्थितियों पर अधिकार प्राप्त कर उसे अपने अनुकूल बनाया है। इसी नाटक में मंदाकिनी के द्वारा नारी की स्थिति का वर्णन कराते हैं, ''स्त्रियों के बलिदान का कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलम्ब खोजने वाले हाथों से वह पुरुषों के चरण को पकड़ती है और वह सदैव ही इनके तिरस्कार, घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है।'' आज भी समाज में स्त्रियों की दशा इससे अलग नहीं है और इसी का उत्तर ध्रुवस्वामिनी है।

प्रसाद की मान्यता आज से काफी पहले की है लेकिन उन्होंने नारी की वास्तविक अस्मिता को जाना था, इसलिए उनकी रचनाएँ आज भी कालजयी हैं। आज साहित्य में नारी विमर्श को लेकर एक क्रांति-सी आ गई है। अधिकारों की स्वतंत्रता के साथ-साथ स्वच्छंदता पर भी विचार-विमर्श होते रहे हैं, लेकिन आत्म अनुशासन से कोई भी स्वतंत्र नहीं है। हमारी भावनाएँ और आकांक्षाएँ कहीं न कहीं हमारे मन के कोने से हमें झकझोरती रहती हैं और रहेंगी। ऐसे में हमारी संस्कृति ही हमें सशक्त अवलम्ब प्रदान कर सकती है। इसी की खोज और स्थापना प्रसाद जी ने अपने नाटकों में की है।

प्रसाद पर नारी पक्षधरता का आरोप लगाया जाता रहा है। मेरी समझ से यह आरोप नितांत असंगत है। अगर प्रसाद ने नारी का पक्ष लिया भी है तो उसे उसका अधिकार और स्वतंत्रता दिलाने के लिए और वह भी ऐसी स्वतंत्रता जो देश और संस्कृति के अनुकूल हो। स्कंदगुप्त और देवसेना का प्रेम जहाँ एक ओर आदर्श की पराकाष्ठा है वहीं दूसरी ओर उनका कर्त्तव्य भारत की स्वाधीनता है। एक ओर वे प्रेम को मानव की आवश्यकता और उसकी सार्थकता को स्वीकार करते हुए उसमें आत्म संतोष दिखाया है और अगले जन्म में मिलने की कामना से वे विलग होते हैं, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना का ध्यान भी उनके मन में है।

प्रसाद जी ने नारी चरित्र के विभिन्न पहलुओं को उकेरा है। नारी के चित्रण में उनके हृदय की सारी कोमलता, कल्पना, भावना और कला के साथ-साथ नारी के प्रति व्यापक दृष्टिकोण प्रस्फुटित हुआ है। एक ओर जहाँ उन्होंने 'ध्रुवस्वामिनी' जैसे चरित्र प्रस्तुत किए हैं जो परिस्थितियों से टूटने और पुनः निर्मित होने वाली मर्यादित, साहसी, शिक्षित, जागरूक एवं स्वतंत्र नारी है वहीं दूसरी ओर प्रणय वेदना से व्याकुल अतृप्त हृदया अन्तर्द्वन्द्व के ग्रस्त प्रेम की प्रतीक देवसेना, कोमा, मालविका जैसा चरित्र दर्शाया है। एक ओर जहाँ भारतीय नारीत्व से युक्त मल्लिका, राजश्री, वासवी हैं तो वहीं दूसरी ओर नैतिकता की अवहेलना करने वाली महत्त्वाकांक्षी, राजनैतिक कुचक्रों में फंसी विजया, सुरमा, छलना, अनन्तदेवी आदि चरित्र हैं लेकिन इन चरित्रों पर प्रसाद का आदर्श या सांस्कृतिक चेतना का स्वर प्रभावी रहा है, इसलिए सभी महत्त्वाकांक्षी पात्र पश्चात्ताप की ज्वाला में तपकर या तो सुधार कर लेते हैं अथवा आत्मघात। प्रसाद के नारी चरित्रों को लक्ष्य करते हुए दशरथ ओझा लिखते हैं, ''प्रसाद ने नारी जीवन को व्यापक दृष्टि से देखा है। स्त्री चरित्र के निर्माण में चरित्र को ही प्रधानता न देकर उसके शील निर्देशन का प्रयत्न किया है।''

प्रसाद जी नारी को पुरुष के साथ सहभागिता का दर्जा देना चाहते थे। 'चंद्रगुप्त' नाटक में अलका का चरित्र एक ऐसा नारी चरित्र है जो नेतृत्व की क्षमता रखती है। आज से सत्तर साल पहले ही वे नारी को घरों से बाहर लाकर समाज में सक्रिय योगदान की अपेक्षा रखते थे। उसी का परिणाम 'चंद्रगुप्त' की अलका है। समाज में इस भावना को विकसित करने के लिए ऐतिहासिक नाटक में अलका का काल्पनिक चरित्र प्रस्तुत किया है, जो सेल्यूकस के साथ चालाकी से छल कर सिंहरण को छुड़ाती है, पर्वतेश्वर को देश की रक्षा के लिए लड़ने को प्रेरित करती है और उनको धोखा देकर उनसे अपनी रक्षा करती है। यह एक ऐसा नारी चरित्र है जो अबला नहीं सभी दृष्टियों से सबल अपनी रक्षा अपनी रक्षा और विकास के साथ-साथ राष्ट्र की रक्षा करती है। उसका गीत आज भारतीय सांस्कृतिक स्वतंत्रता का गीत है जो नवयुवकों को शुद्ध भारतीय होने के लिए प्रेरित करता है—

''हिमाद्रि तुगं शृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती।''

प्रेम शाश्वत है। यह हर एक हृदय की चाह है। इसकी अभिव्यक्ति समाज की मान्यताओं पर निर्भर करती है। भारतीय संस्कृति त्याग और समर्पण पर आधारित है। यहाँ समाज और राष्ट्र दोनों प्रसाद का लक्ष्य था। प्रेम की भावधारा को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा है, ''प्रेम अगर शाश्वत है तो दुनिया ज्वालामुखी है।'' यहाँ इसका वर्णन इसलिए

समीचीन है कि प्रेम भी नारी की अस्मिता का अभिन्न अंग है। इसकी अभिव्यक्ति इन्होंने अपने नाटक में बहुत ही अलग ढंग से की है। प्रेम की सूचना उन्होंने एक घूँट में दी है, ''अकस्मात जीवन कानन में राका रजनी की छाया में छिपकर बसंत घुस आता है। शरीर की क्यारियाँ हरीभरी हो जाती हैं। सौन्दर्य का कोकिल कौन कहकर सबको रोकने टोकने लगता है।'' जहाँ उन्होंने प्रेम की अनिवार्यता को स्वीकार किया है वहीं उसे सिर्फ स्मृति बताते हुए स्पष्ट किया है, ''प्रेम में स्मृति का सुख है। एक टीस उठती है वही तो प्रेम का प्राण है।'' प्रेम का दूसरा पक्ष उन्होंने त्याग को स्वीकार किया है। जिसमें सिर्फ 'देने' का भाव होता है। ऐसा भाव जो अपने आप को समर्पित कर देता है। इस त्याग की चरमावस्था मालविका के चरित्र में देखने को मिलती है जो चंद्रगुप्त के लिए अपने प्राणों का त्याग भी स्वीकार करती है। उन्होंने कभी भी प्रेम में अश्लीलता को स्वीकार नहीं किया है। यह हृदय से हृदय का समर्पण है। यहाँ स्वतंत्रता भी है और पिता और समाज की चिंता भी है। तभी तो सुवासिनी कहती है, ''मैं तुम्हारा परिणय अस्वीकार नहीं करती किन्तु इसका प्रस्ताव पिता से करो... परन्तु राक्षस मैं जानती हूँ कि यदि विवाह छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार से मैं तुम्हारी हो जाती तो तुम ब्याह से अधिक सुखी होते।'' सुवासिनी की यह मर्यादा भारतीयता का उच्चादर्श है और ऐसा भी नहीं कि उसमें नारी सुलभ भावनाएँ नहीं हैं।

प्रसाद जी ने नारी के अंदर हृदय पक्ष की प्रधानता को अधिक महत्त्व दिया है। इसके साथ ही साथ उन्होंने त्याग, सेवा, उदारता और विश्वास को उनके स्वभाव का गुण माना है। इसलिए इनके सभी पात्रों में भावुकता, त्याग और सेवा के साथ-साथ मर्यादापूर्ण आत्मसम्मान का भाव सदैव जागृत दिखाई देता है। इन्होंने पूर्ण मानव और मानवता के लिए स्त्री और पुरुष के गुणों में सामंजस्य को स्वीकार किया है। एक घूँट का आनन्द कहता है, ''आज मेरे मस्तिष्क के साथ हृदय का मेल हो गया है। इस हृदय का मेल कराने का श्रेय बनलता को है।'' स्त्री और पुरुष दो शक्तियाँ हैं और शायद 'कामायनी' में प्रसाद जी विजयनी मानवता के लिए शक्तियों के बिखराव को लेकर चिंतित थे और उसी का सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे। नारी की अस्मिता और महत्त्व 'अजातशत्रु' में दीर्घाकारायण के द्वारा प्रस्तुत किए हैं, ''स्त्रियों के संगठन में अनेक शारीरिक और प्राकृतिक विकास में परिवर्तन है जो स्पष्ट बतलाता है कि वे शासन कर सकती हैं किन्तु अपने हृदय पर। वे अधिकार जमा सकती हैं उन मनुष्यों पर जिन्होंने समस्त विश्व पर अधिकार किया हो।... कठोरता का उदाहरण है पुरुष और कोमलता का विश्लेषण है स्त्री जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा, अन्तर्जगत का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं।''

जब हम प्रसाद के समग्र नाटकों का अवलोकन करते हैं तो वैविध्य भरा चरित्र हमारे सामने उभरता है। उन्होंने अपने नाटकों में नारी का स्थान सिर्फ मनोरंजन न मानकर उसके चरित्र के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है। उनकी समस्याओं को समझा है और उसे स्वस्थ आधार देने का प्रयास किया है। वे नारी के समर्थक नहीं बल्कि सच्चे आलोचक थे।

आज साहित्य में नारी विमर्श को लेकर बहुत कुछ लिखा जा रहा है। अच्छी खासी चर्चा चल रही है। इस बहस में प्रसाद जी भी हमारे साथ हैं। निश्चित रूप से इस विषय को लेकर अच्छे साहित्य रचे गए हैं जिसमें नारी की समस्या और अधिकार की खुलकर चर्चा हुई है। अगर हम ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हो पाया है। इसका एक ही कारण है कि हमने लड़ाई लड़ी जरूर है लेकिन आधारहीन लड़ाई लड़ी है। हम अपने अधिकार को लेकर जागरूक हैं लेकिन हमारे कदम पाश्चात्य संस्कृति में जाकर फँस जाते हैं। ऐसे में प्रसाद जी का वक्तव्य हमें सिर्फ टोकता ही नहीं है बल्कि हमसे पूछता है, ''हम पश्चिम के आज को ही सब जगह खोजे रहेंगे? और यह भी विचारणीय है कि क्या हम लोगों के सोचने का निरीक्षण का दृष्टिकोण सत्य और वास्तविक है।... प्रगतिशील विश्व है, किन्तु अधिक उछलने से पद स्खलन का भी डर है।... पश्चिम ने भी अपना सब कुछ खोकर नये को नहीं पाया है।''

आज का दौर आरोप-प्रत्यारोपों पर ज्यादा आधारित है। इसके लिए हमें समाज और संस्कृति के साथ समन्वय की जरूरत है। इसी समन्वय को प्रसाद जी ने अपने साहित्य में पूर्णतः स्थान दिया है। नारी का स्वतंत्र होना अति आवश्यक है। उसे उसका अधिकार मिलना चाहिए जिससे आज भी वह वंचित है। कुछ ही नारियों की जागरूकता को हम सबकी जागरूकता नहीं मान सकते। कागज पर अधिकार दे देने से सब कुछ नहीं हो जाता। जब तक हम उसे मन से देने को तैयार नहीं होते। आज भी उसे वह हक नहीं मिला है जिसकी वह उत्तराधिकारिणी है। इसके लिए कुछ हद तक वह खुद जिम्मेदार है। उसने कभी भी जमीनी लड़ाई नहीं लड़ी है। वह सदैव अपने वर्ग पर जाने-अनजाने अत्याचार करती आ रही है। इस वर्ग की प्रत्येक समस्याओं में कहीं न कहीं इसका अपना हाथ है। कारण चाहे जो भी रहे हों, लेकिन यह कटु सत्य है। जिसके लिए उसे आत्म-विश्लेषण की जरूरत है।

नारी किसी भी देश की महत्त्वपूर्ण शक्ति है। इसको प्रसाद जी ने सिर्फ महसूस ही नहीं किया था बल्कि समाज में उसकी भागीदारी को स्थान भी दिया। वे जितना नारी विकास को लेकर चिंतित थे उतने ही भारतीय संस्कृति को लेकर भी चिंतित थे। इसलिए वे नारी विकास में भी भारतीय संस्कृति का पुट देखना चाहते थे। वे स्वतंत्रता और संस्कृति में समन्वय चाहते थे इसलिए स्वच्छंदता की उड़ान को संस्कृति की डोर से बाँधना भी चाहते थे। उनका यही दृष्टिकोण आज भी उन्हें कालजयी बनाए हुए है और आगे भी बनाए रहेगा। उनका यह दृष्टिकोण आज हमारी महती आवश्यकता है।

पी.जी.टी. (हिन्दी), जवाहर नवोदय विद्यालय,
सिरमौर, रीवा-486448 (म.प्र.)

सिन्धु घाटी सभ्यता की विशेषताओं का कलात्मक अध्ययन

स्वाति रेखी

स्वाति रेखी पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय से एम.फिल., पी-एच.डी., इन्टीग्रेटिड प्रोग्राम से संबद्ध शोधार्थी हैं। आपके रुचिकर विषय हैं दक्षिण एशिया की कला व संस्कृति, हिन्द महासागर में राजनैतिक परिदृश्य। आपने अपने शोध पत्र विभिन्न राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रस्तुत किए हैं।

सिन्धु घाटी सभ्यता भारत की प्रथम नगरीय सभ्यता थी, अपने उन्नत पक्षों के फलस्वरूप यह अन्य तत्कालीन सभ्यताओं से श्रेष्ठतम थी व इसने परवर्ती भारतीय सभ्यताओं को अवश्य प्रभावित किया। नदी किनारे अवस्थित होने के परिणामस्वरूप कृषि कर्म संभव हुआ। कृषि उपकरण धातु व पाषाण निर्मित थे, फसलों की विभिन्न किस्में उगाने के अतिरिक्त एक ही खेत में दो प्रकार की फसलें उगाने की परिपाटी थी, हल का प्रयोग, जलाशयों को घेर कर बाँध बनाने की कला से वे परिचित थे। पशुपालन का भी विशेष महत्त्व था। इन्हें बोझा ढोने, घर की रखवाली, मनोरंजन आदि के उद्देश्य से रखा जाता था। कुछ पशुओं के प्रति धार्मिक श्रद्धा प्रकट की जाती थी, जैसे बैल, भैंसा, नाग आदि। समुन्नत कृषि व्यवस्था ने इस सभ्यता को आर्थिक, औद्योगिक, व्यापारिक दृष्टि से समृद्ध किया। पाषाण के अतिरिक्त धातु का प्रयोग उपकरण निर्माण, युद्ध सामग्री बनाने, आभूषण, दैनिक उपयोग की सामग्री बनाने में होता था। वे लौह ज्ञान से अपरिचित थे। मिश्रित शिल्प जैसे कपड़ा बुनना, चाक पर बर्तन बनाने, सील बनाने, बढ़ईगिरी उन्नति पर था। विभिन्न नगरों में विशिष्ट उद्योगों के कारखाने थे जैसे बालकोट व लोथल सीप उद्योग, मोहनजोदड़ो ईंट उद्योग, चुहदड़ो मनके बनाने के लिए प्रसिद्ध था। उद्योग-धंधों का स्थानीयकरण हो चुका था। आर्थिक समृद्धि ने आंतरिक व बाह्य व्यापार को प्रभावित किया जिससे यह सभ्यता मुख्यतः व्यापार प्रधान हो गई। ईरान, सुमेर, मिस्र, मेसोपोटामिया से मुख्यतः जल व स्थल मार्ग से व्यापार होता था। ये लोग माप-तौल से परिचित थे। व्यापारिक समृद्धि का प्रभाव समाज पर पड़ना अवश्यंभावी था जिसने यहाँ ज्यामितीय ज्ञान पर आधारित नागरी सभ्यता को जन्म दिया। प्रत्येक नगर खण्डों में विभक्त था व सड़कें समकोण बनाकर काटती थी। मकान पक्की ईंटों के बने होते थे। प्रत्येक घर में कुएँ, जल निकासी की अच्छी व्यवस्था थी। व्यापार प्रधान अर्थव्यवस्था ने इन्हें शांत वातावरण बनाए रखने को उन्मुख किया, जिस कारण हम इस काल में बहुत कम हथियार पाते हैं, जो अल्प मात्रा में मिले भी हैं वे मात्र आत्मरक्षा के लिए ही होंगे। शांतिप्रिय भौतिक उन्नति ने धर्म को समुन्नत बनाया, ये लोग मुख्यतः मातृदेवी के उपासक थे जिससे समाज के मातृसत्तात्मक होने के संकेत मिलते हैं। इस काल का समाज विज्ञान, योद्धा, व्यापारी व शिल्पी तथा श्रमिक वर्ग में विभाजित रहा होगा, जिसके साक्ष्य उत्खलित भग्नावशेष हैं। ये लोग पशु-पक्षियों, वृक्षों, अग्नि पूजा, जल पूजा करने के अतिरिक्त अंधविश्वासी भी थे जिसका उल्लेख हमें ताबीजों के रूप में मिलता है। मातृदेवी व शिव की पूजा विशेष रूप से की जाती थी। इन लोगों की विशिष्ट लिपि चित्रात्मक थी, विभिन्न रोगों, जड़ी-बूटियों के अतिरिक्त इन्हें भाओं का भी ज्ञान था। अतः विज्ञान, प्रौद्योगिकी उन्नति पर थी। यह एक समष्टिवादी सभ्यता थी जिसमें उत्खनन सामग्री में सार्वजनिक विशाल सभा भवन व स्नानागारों के ध्वंसावशेषों से सामूहिक जीवन का पता चलता है। इस काल की मिली सामग्री न केवल विशेषताओं को दर्शाती है अपितु कला की प्रखरता को भी उजागर करती है।

इस सभ्यता का वितरण क्षेत्र उत्तर में जम्मू से लेकर दक्षिण में नर्मदा के मुहाने तक व पश्चिम में बलूचिस्तान के मकरान तट से लेकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ तक त्रिभुजाकार आकृति में 1299600 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में था। उत्तरी सीमा पाकिस्तान के पंजाब प्रांत में रहमान देरी व दक्षिणी सीमा गुजरात प्रांत में भोग है (1400 कि.मी.) पूर्व में स्थित आलमगीर पुर (मेरठ) से पश्चिम में स्थित सुत्कार्गेडोर की दूरी 1600 कि.मी. है (श्रीवास्तव, 2008) चित्र संख्या-1.

आर्थिक क्षेत्र के अंतर्गत कृषि कर्म में उनके द्वारा विभिन्न फसलों के प्रयोग के साक्ष्य हमें इस काल के निर्मित मृदभांडों जैसे अनार व नारियल की आकृति के तो प्राप्त होते ही हैं इसके अतिरिक्त सेलखड़ी निर्मित नींबू की पत्ती, केले के पत्तियों का चित्रण मृदभांडों पर भी मिलता है, जो इनके प्रयोग में लिए जाने का सूचक भी है।

चित्र सं. 1

बनावली से हल का मॉडल प्राप्त होता है, जो मृण निर्मित है। अनाज को ढोने के लिए प्रयोग में आने वाली बैलगाड़ियों की आकृति के खिलौने हड़प्पा, चन्होदड़ो, आदि से मिलते हैं। मिट्टी की बनी चूहेदानियाँ, सिलबट्टे भी प्राप्त हुए हैं जो मुख्यतः अलाबस्टर के बने हैं। बट्टे मुख्यतः 11 इंच लम्बे व 4 इंच व्यास वाले हैं। लोथल से एक वृत्ताकार चक्की के दो पाट प्राप्त होते हैं। (श्रीवास्तव, 2008)

पशुपालन किया जाता था, न केवल जीवाष्मों अपितु मृदभांडों, चित्रणों, मुद्रा संकेतों, खिलौने की आकृतियों से स्पष्ट है कि वे पशु-पक्षियों से परिचित थे व इन्हें पालते भी थे।

कूबड़दार वृषभ का अंकन मुहरों पर प्राप्त होता है। (शर्मा, 1990) मोहनजोदड़ों की एक मृणमूर्ति में कुत्ते के गले में पट्टा बँधा है जो उसके पालतू होने का प्रमाण है। ताँबे, मिट्टी से निर्मित भैंसे की मूर्तियाँ प्राप्त होने के अतिरिक्त हाथी का अंकन कई मुहरों पर हुआ है। लोथल व मोहनजोदड़ों से घोड़े के प्रकार की मृणमूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। बत्तख का चित्रण लोथल के भाण्डों पर अधिक हुआ है, मोर का चित्रण प्रायः सभी स्थलों से प्राप्त हुआ है। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003)

उद्योग-धंधे उन्नति पर थे, कपड़ा बुनना एक प्रमुख उद्योग था। शॉल, धोती यहाँ के निवासियों के प्रमुख वस्त्र थे। मोहनजोदड़ो से प्राप्त पुरोहित की मूर्ति पर वस्त्र तिपतिया अलंकरण से युक्त है। स्पष्टतः बुनकर कढ़ाई से परिचित थे। स्त्रियाँ पंखे की आकृति की शिरोभूषा पहनती थीं, जो मातृदेवी की मूर्ति से स्पष्ट है।

चाक पर मिट्टी के बर्तन बनाए जाते थे, सिंधु सभ्यता के बर्तनों में गोलाई अधिक व सीधे कोने कम हैं। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003, चित्र संख्या 2)

मृदभाण्डों पर दूधिया, गुलाबी, लाल रंगों का लेप किया जाता था जिन पर पालिश की जाती थी, चित्रण साधारणतः काले रंग से (जो मेग्निफेरस हाइमेटाइट से तैयार होता था) पर किया जाता था इन पर मुख्यतः काले रंग की मोटी अथवा पतली धारियाँ आढ़ी बनी प्राप्त होती हैं। चित्रण के लिए बर्तन को खण्डों में विभाजित किया जाता था शंकु, चेक, डिजाइन, मनकों का बार्डर, अर्धचन्द्र

चित्र सं. 2

अंदर की ओर मुड़े, तिकोने, सीढ़ीदार तिकोन, वृक्क के आकार का डिजाइन, लहरदार रेखाएँ, लटकन, मत्स्य, शल्क आदि भी हैं। बर्तनों पर वनस्पति पीपल, ताड़, नीम, केला, बाजरा का चित्रण प्राप्त होता है। मृदभाण्डों पर फूलों अथवा सूर्य का अंकन है। मछली, मोर, अंग्रेजी अक्षर 'ट' से मिलती जुलती आकृति का डिजाइन पक्षी का द्योतक है। कुछ मृदभाण्डों पर बड़े सींग वाले बकरे व हिरण का अंकन है, पशुओं के साथ वनस्पति चित्रित है। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003)

धातुओं को गलाने, पीटने, उन पर पानी चढ़ाने की विधि से लोग परिचित थे, जिसका प्रयोग धातु के उपकरण, सौन्दर्य प्रसाधन आदि सामग्री निर्माण हेतु होता था।

उत्खनन से ताँबे के बर्तन, उस्तरे, कंघे, शृंगारदान प्राप्त हुए हैं। तांबे के दर्पण, कंघे हाथी दाँत के निर्मित हैं। (चोपड़ा, पुरी व दास, 2004)

शलाकाएँ—प्राप्त शलाकाओं का ऊपरी भाग बत्तख के सिर जैसा है। इनके भीतर मंजन रखा जाता था। सोना, चाँदी, बहुमूल्य पत्थरों, कांचली मिट्टी से निर्मित आभूषण प्राप्त होते हैं। (चित्र सं. 3) स्त्रियाँ बालों को मिट्टी, तांबे, कांसे के पिनों से सजाती थी। मोहनजोदड़ो से तांबे की बाल पिन के ऊपरी भाग पर हिरन को काटते हुए कुत्ते का अंकन व अन्य पर हाथी दाँत के पिन का ऊपरी भाग कुत्ते के सिर के समान है। कांचली मिट्टी के बने पिन पर ताली बजाते तीन बंदर अंकित हैं। कानों में बालियाँ पहनी जाती थी जो ताँबे, काँसे, चाँदी की निर्मित होती थी। जड़ाऊ टीका कांचली मिट्टी व शंख से निर्मित, केश राशि सँभालने के लिए सोने की पत्ती के फीते प्राप्त होते हैं। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003)

मनके सेलखड़ी, कार्नीलियन, जैस्ट, कैल्सीडेनी, क्रिस्टल, लाजवर्द, कांचली मिट्टी, शंख, हाथी दाँत आदि से निर्मित होते थे। (चित्र सं. 4)। ये बेलनाकार, दंतचक्र, छोटे ढोलाकार, अणुकार, गोल होते थे, जिन पर

चित्र सं. 3

लाल भूमि पर सफेद, सफेद भूमि पर काला, लाल भूमि पर काला डिजाइन अंकित किया गया है। (श्रीवास्तव, 2008)

बढ़ईगिरी के व्यवसाय के साक्ष्य तख्ते व गाड़ी के पहियों के अवशेष हैं। राजगीरी प्रमुख उद्योग उन्नति पर था। भवन पक्की ईंटों से निर्मित होते थे। ये ईंटें सादी होती थीं इन पर अलंकरण कालीबंगा से ही प्राप्त होता है। फन्नीदार ईंटों का प्रयोग कुओं की दीवार बनाने में किया गया है व इमारतों के कोनों की चिनाई अंग्रेजी के अक्षर 'ए' जैसी समकोणकार बनी ईंटों से की गई है। (श्रीवास्तव, 2008, चित्र सं. 5)

आमोद-प्रमोद—हड़प्पा से प्राप्त मिट्टी, कांस्य की गाड़ी, चन्हुदड़ो से मिट्टी की गाड़ी प्राप्त हुई है जिसमें हाँकने वाले को हाथ में कोड़ा पकड़े दिखाया गया है। फाख्ता की आकृति की सीटी, मिट्टी के झुनझुने प्राप्त होते हैं। इन पर लाल रंग के डिजाइन निर्मित हैं, मिट्टी के बने कुर्सी के मॉडल के अतिरिक्त पालिश

चित्र सं. 4

चित्र सं. 5

किए हुए कलात्मक पाँसे मिट्टी, पत्थर से बने हड़प्पा से प्राप्त हुए हैं। कांचली मिट्टी के कंचों पर अलंकरण है। कांचली मिट्टी, शंख, संगमरमर, स्लेट, सेलखड़ी आदि की गोटियाँ प्राप्त हुई हैं जो अलंकृत व विविध आकार की हैं। सीप व पत्थर की गोलियाँ भी प्राप्त हुई हैं। सीप की गोलियों पर वृत्त के भीतर वृत्त के डिजाइन हैं। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003)

मोहनजोदड़ो की एक मुद्रा पर व्यक्ति ढोल बजा रहा है—स्पष्टतः वे वाद्य यंत्र से परिचित थे। मिट्टी के बने मुखौटे प्राप्त होते हैं। एक मुद्रा पर तीर से हिरन को मारते दिखाया गया है। अन्य पर मनुष्य पेड़ पर चढ़ा है, नीचे जमीन पर बाघ है, आखेट का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। ताँबे के बाणाग्र से धनुष बाण का प्रयोग स्पष्ट है। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003)

व्यापार व वाणिज्य के अंतर्गत बहुमूल्य पत्थर, धातुओं का आयात होता था। क्रय-विक्रय वस्तु विनिमय द्वारा होता था चूँकि वे माप-तौल से परिचित थे अतः विभिन्न प्रकार के बाटों का प्रयोग करते थे। मोहनजोदड़ो से सीप का एक खण्डित पैमाना प्राप्त होता है। लोथल से प्राप्त पैमाना हाथी दाँत का है। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003)

बाट विभिन्न आकारों यथा घनाकार, ढोलाकार, छेद वाले शंक्वाकार, ऊपर व नीचे की ओर चपटे बेलनाकार थे व चूना पत्थर, सेलखड़ी, स्लेट पत्थर, कैलसीडोनी आदि से निर्मित थे, जिस पर पॉलिश की जाती थी। ये छोटे व बड़े विभिन्न तौलों हेतु होते थे। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003)

सिंधु सभ्यता की प्राप्त मुद्राएँ सेलखड़ी, कांचली मिट्टी, गोमेद, चर्ट आदि से निर्मित वर्गाकार, चतुर्भुजाकार, बेलनाकार, बटन जैसी घनाकार, गोल हैं। मुद्राओं पर वृषभ अंकन अत्यधिक कुशल है उसे क्रोध की मुद्रा में दिखाया गया है। कुछ मुद्राओं पर बैल के कंधे और काल कंबल को बड़ी कुशलता से व्यक्त किया गया है। आकृति के अंकन में सजीवता है। बैल के आगे नांद दिखाया गया है, मुद्राओं पर कूबड़ वाले बैल की आकृतियों को इतनी कुशलता से उभारा गया है कि अपेक्षाकृत विशालकाय बैल की विशालता का पूरा आभास छोटी सी मुद्रा पर अंकित ही मिल जाता है। खड़े दिखाए जाने पर भी इसमें गतिशीलता झलकती है, पशु को पार्श्व में दिखाते हुए भी उसके दोनों सींगों को कलाकार ने दिखाया है। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003, चित्र सं. 6)

चित्र सं. 6

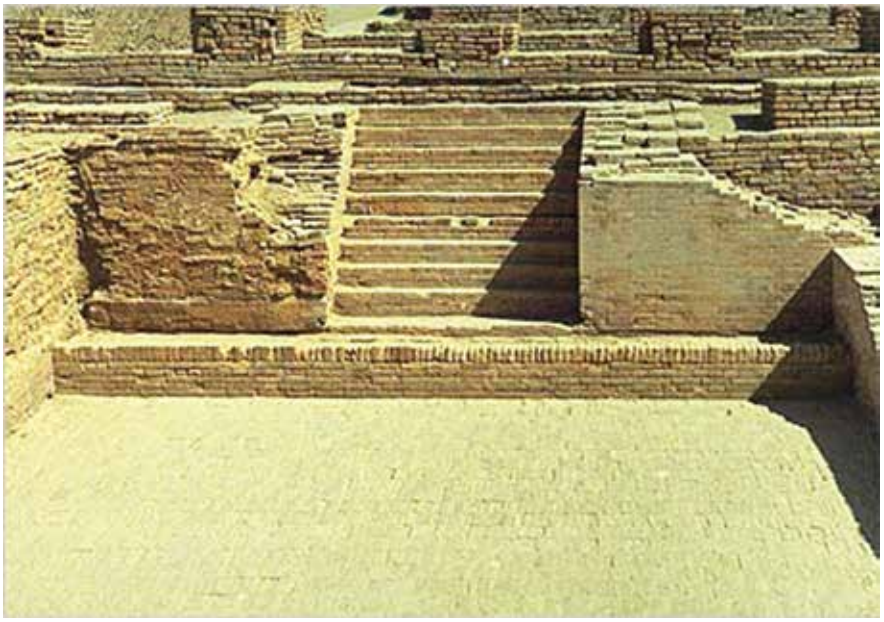

चित्र सं. 7

व्यापार प्रधान अर्थव्यवस्था ने भौतिक संस्कृति को उन्नत बनाया व यहाँ नागरी सभ्यता का उदय हुआ व सिंधु सभ्यता की नगर योजना वैज्ञानिक व तकनीक आधार पर सुनियोजित रूप से निर्मित थी।

नगर योजना के अंतर्गत हड़प्पा, मोहनजोदड़ो आदि नगरों का निर्माण योजनाबद्ध व्यवस्था के आधार पर हुआ था। सड़कें सीधी व एक-दूसरे को समकोण पर काटती थीं। प्रधान सड़कें पूर्व से पश्चिम, उत्तर-दक्षिण की ओर जाती थीं व समान्तर थीं। अंततः सभी गलियाँ राजपथ से मिल जाती थीं, जो घरों के दरवाजे के पीछे की ओर खुलती थीं। नगरों में पानी निकासी की सुव्यवस्था थी, घरों का पानी बहकर सड़कों तक आता था जहाँ उनके नीचे नालियाँ बनी होती थीं, जो ईंटों व पत्थर की सिल्लियों से ढकी होती थी। (श्रीवास्तव, 2008)। भवनों का निर्माण पक्की ईंटों से होता था, जिनका आकार एक समान था। (ग्रोवर, 1980)।

मोहनजोदड़ो का स्नानागार आयताकार है, इसका क्षेत्रफल 39×23 फुट व गहराई 8 फुट है। (बाशम, 1995, चित्र सं. 7)

रावी नदी के बाईं ओर अव्यवस्थित पश्चिम पंजाब में (लरकाना) हड़प्पा से प्राप्त दो खण्ड—पश्चिम खण्ड की किलेबन्दी की गई है जिसमें आने-जाने का मुख्य मार्ग उत्तर में था। उत्तरी प्रवेश द्वार व रावी के बीच एक अन्न भण्डार, श्रमिक आवास, ईंटों से जुड़े गोल चबूतरे थे, जिनमें अनाज रखने के लिए कोठार बने थे। सामान्य आवास क्षेत्र के दक्षिण में एक कब्रिस्तान भी था। (झा व श्रीमाली, 1995)

गुजरात राज्य के अहमदाबाद जिले के धोलका तालुका में स्थित लोथल से आवास क्षेत्र, दैनिक उपयोग की वस्तुओं, बर्तन, उपकरणों के अतिरिक्त गोदी बाढ़ा के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जो इस बात की पुष्टि करता है कि साबरमती व भोग्या नदियों के संगम पर स्थित यह एक प्रसिद्ध बंदरगाह था, जहाँ से पश्चिम एशिया के साथ व्यापार किया जाता था। इस गोदी बाड़े का आकार 219×37 मीटर है। यह पकी मिट्टी से निर्मित है। इसकी 4.5 मीटर ऊँची ईंटों की दीवारें हैं। (श्रीवास्तव, 2008, चित्र सं. 8)

इस सभ्यता ने आर्थिक समृद्धि की ओर ध्यान दिया व अस्त्र-शस्त्र निर्माण में विशेष रुचि शांतिप्रिय होने के परिणामस्वरूप साधारणतः नहीं दिखाई। इस काल के उपकरण ताँबे, काँसे, पत्थर, मिट्टी से निर्मित थे, जिनमें मध्यश्लाका का अभाव था, अतः मजबूत न थे। मोहनजोदड़ो की एक मुद्रा पर एक कटीले भाले का अंकन है। चन्हुदड़ो से ताँबे की छेददार कुल्हाड़ी व कुछ छेददार कुल्हाड़ी की प्रतिकृतियाँ मिट्टी की पाई गई हैं। मोहनजोदड़ों से तलवार के साक्ष्य के अतिरिक्त चाकू जो चौड़े पत्ती जैसी फाल व लम्बी चूल वाले हैं, भी प्राप्त होते हैं। पक्की

चित्र सं. 8

मिट्टी की गोफन गोलियाँ मिली हैं, जिन्हें अस्त्र के रूप में प्रयोग किया जाता था। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003)

दैनिक उपयोग की वस्तुओं के अंतर्गत ताँबे की तश्तरियों के ढक्कन, घड़े के ढक्कन व कुछ छोटे बर्तन मिले हैं। काँसे के भी कटोरे व ढक्कन प्राप्त हुए हैं, चाँदी के बर्तन भी मिले हैं जिनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। मोहनजोदड़ो से दो आरियाँ मिली हैं एक ताँबे की दूसरी काँसे की है। लोथल से एक आरी मिली है जो चक्राधार है। मोहनजोदड़ों से एलाबास्टर पत्थर से निर्मित बर्तन प्राप्त होते हैं। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003)

हाथी दाँत निर्मित कंघी, बालों में लगाने की पिन, सुइयाँ मिली हैं। (पाण्डेय, 2002)। हाथी दाँत की गोटियाँ भी मिली हैं, शंख का प्रयोग उत्खनन हेतु किया जाता था जिसमें पंखुड़ियों, सीढ़ीनुमा, क्रास, पत्ते की आकृति के डिजाइन मिलते हैं। शंख के बड़े चमचम भी मिले हैं। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003)

जहाँ तक धार्मिक जीवन का प्रश्न है, इस सभ्यता के विभिन्न साक्ष्य उपलब्ध होते हैं जैसे—इस काल की प्राप्त सीलें, टेरीकोटा मूर्तियाँ, यज्ञ वेदी, शवाधान क्रिया, ताबीज, लिंग, चक्र, जल-पूजा विधान आदि। सीलों व मूर्तियों में सर्वप्रमुख मातृदेवी थी जिसके सम्मुख बलि दिए जाने का उदाहरण हमें हड़प्पा से प्राप्त एक सील से होता है। बलि प्रथा संभवतः व्यक्ति को विपरीत स्थितियों में दृढ़तापूर्वक सामना करने में सक्षम बनाने के लिए प्रचलित की गई होगी।

मातृदेवी उर्वरता की देवी थी। मोहनजोदड़ो से प्राप्त रुद्र शिव की सील पुरुष देवता की उपासना का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। पशुओं में गैंडा, बैल, चीता, हाथी, भैंस, आदि की पूजा की जाती थी। वृक्षों में पीप का अंकन अधिक होना धार्मिक महत्त्व प्रकट करता ही है, कलश शवाधान के अंतर्गत नाग का चित्र अंकित है,

चित्र सं. 9

जो नाग पूजा को भी दर्शाता है। यज्ञवेदियों का निर्माण ज्यामितीय ज्ञान पर आधारित थाा, जिसके साक्ष्य कालीबंगा, लोथल हैं, जिसमें पशुओं की जली हड्डियाँ मिली हैं जो पशुबलि का प्रमाण हैं। (श्रीवास्तव, 2008)। उनका अंधविश्वास हमें विभिन्न स्थानों से प्राप्त ताबीजों से मिलता है जो ताँबे, पाषाण के निर्मित होते थे, जिन पर एक ओर पशु की आकृति व दूसरी ओर लेख था। (श्रीवास्तव, 2008)

मोहनजोदड़ो से प्राप्त योगी की मूर्ति आध्यात्मिकता की ओर परिलक्षित करती है। जो सफेद सलेखड़ी से निर्मित है, इसके नेत्र अधखुले व दृष्टि नासिका पर केन्द्रित है। शॉल पर तिपतियाँ अलंकरण हैं। (श्रीवास्तव, 2008)

सिंधु सभ्यता की चित्रात्मक लिपि यदि पाठ्य नहीं है। इसका अंकन मुद्रा पर अत्यन्त कुशलता से किया गया है (चित्र सं. 9) जो इसकी कलात्मक उत्कृष्टता का भी एक सूचक स्वरूप है।

प्रौद्योगिकी की उन्नति के चलते विभिन्न धातुओं, एलोय का प्रयोग कर विभिन्न कलात्मक वस्तुओं के निर्माण व इस हेतु प्रयुक्त होने वाले उपकरणों के निर्माण हेतु प्रयुक्त किया गया।

धातु मूर्तियों के निर्माण के अंतर्गत, मोहनजोदड़ो से प्राप्त काँसे की मूर्ति उत्कृष्ट उदाहरण है। यह नग्न है, इसके हाथ-पाँव लम्बे हैं, हाथ में एक पात्र है तथा यह भुजा चूड़ियों से भरी हुई है व गले में भी आभूषण

चित्र सं. 10

पहने हुए है। दायी भुजा कमर पर स्थित है, नेत्र बड़े हैं जिन्हें गहरे निशान से अभिव्यक्त किया गया है। नासिका चपटी व ओंठ भारी हैं। इस मूर्ति का निर्माण द्रवी-मोम विधि से हुआ है। (श्रोतिरीय, 2004, चित्र सं. 10)। लोथल से ताँबे की निर्मित पक्षी, बैल, खरगोश, कुत्ते की आकृति के अतिरिक्त हड़प्पा से एक ताँबे की इक्का-गाड़ी मिली है। (थप्लयाल व शुक्ल, 2003)

कहना उचित होगा कि हड़प्पा सभ्यता की विशेषताएँ कलात्मकता को संजोए थीं। उपयोगिता के दृष्टिकोण की प्राधान्यता के चलते भवनों में अलंकरण का प्रायः अभाव है, विभिन्न स्थानों की नगर योजना में विविधता नहीं थी। यह यद्यपि वैज्ञानिक आधार पर निर्मित है। जहाँ तक सैन्धव सभ्यता की कला का प्रश्न है यह विकसित अवस्था को व्यक्त करती है। यहाँ के विभिन्न स्थलों से प्राप्त कलाकृतियाँ उच्चकोटि के तकनीक एवं सौन्दर्य को दर्शाती हैं।

संदर्भ ग्रंथ–

- ग्रोवर, एस. (1980), 'द आर्किटेक्चर ऑफ इण्डिया', विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, साहिबाबाद।
- चोपड़ा, पी.एन., पुरी बी.एन. व दास एम.एन. (2004), 'भारत का सामाजिक सांस्कृतिक व आर्थिक इतिहास', मॅकमिलन इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली।
- झा, डी.एन. व श्रीमाली, के.एम. (1995), 'प्राचीन भारत का इतिहास', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
- बाशम, एल (1995), 'भारत', शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा।
- थप्लयाल, के.के. व शुक्ल, एस.पी. (2003), 'सिंधु सभ्यता', मानव संसाधन विकास मंत्रालय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- पाण्डेय, आर. (2002), 'भारत का सांस्कृतिक इतिहास', उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- शर्मा, आर.एस. (1990), 'प्राचीन भारत', राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली।
- श्रोत्रिय, शुकदेव (2004), 'भारतीय कला गौरव', चित्रायन प्रकाशन, मुजफ्फरनगर।
- श्रीवास्तव, के.सी. (2008), 'प्राचीन भारत का इतिहास और संस्कृति', यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद।

313, लाजपत पुरी, लाल कुर्ती, मेरठ कैन्ट, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

रचनाकारों से अनुरोध

- ❑ **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि ई-मेल से भेज रहे हों तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।**
- ❑ **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।**
- ❑ **रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी प्रेषित करें।**
- ❑ **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।**
- ❑ **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति जांच लें।
- ❑ **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- ❑ **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- ❑ **स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।**
- ❑ **रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।**
- ❑ **आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया ddgnk.iccr.nic.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।**
- ❑ **रचनाकार अपनी रचनाएँ pohindi.iccr.nic.in पर भी भेज सकते हैं।**
- ❑ **लेखकों से अनुरोध है कि कृपया मानदेय प्राप्ति हेतु अपना नाम सहित बैंक खाता संख्या, IFSC कोड अवश्य लिखें।**

आदिकालीन रासो साहित्य

सकीना अख्तर

लेखिका कश्मीर केन्द्रीय विश्वविद्यालय में हिन्दी अधिकारी के पद पर सेवारत। लेखन से जुड़ाव एवं भागीदारी।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में कई प्रकार की भावनाओं तथा प्रवृत्तियों से जुड़ी रचनाएँ प्राप्त होती हैं। यह रचनाएँ, धर्माश्रय, राजाश्रय तथा लोकाश्रय की छत्रछाया में सुरक्षित रह पाई हैं। इन रचनाओं में भाषा तथा शैली की विविधता पाई जाती है, जिनमें बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य, चारण साहित्य तथा देश भाषा में रचित साहित्य की प्रधानता है। एक ओर रास तथा रासक काव्य हैं, तो दूसरी ओर चरित काव्य। इस काल में जहाँ धर्मनिरपेक्षता तथा नीति से जुड़ी सिद्धों तथा नाथों की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं तो वहीं आल्हाखंड तथा विद्यापति की माधुर्यपूर्ण पदावली भी पाई जाती है। तत्कालीन वर्ण व्यवस्था पर आधारित सामंती समाज तथा संस्कृति का वर्णन है, तो उसे कड़ी चुनौती देने वाला वर्ण और वर्ग निरपेक्ष होकर सहज साधना पर बल देने वाला सिद्धों तथा नाथों का साहित्य भी है। धार्मिक साधनाओं तथा धार्मिक मतों की दृष्टि से भी यह काल बहुआयामी रहा है। अपने समस्त अंतर्विरोधों के बावजूद यह काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

इस काल के वैविध्यपूर्ण साहित्य की एक धारा 'रासो साहित्य' है। 'रासो साहित्य' में इस युग की समस्त विशेषताएँ तथा साहित्यिक प्रवृत्तियाँ संयोजित हैं। 'रासो' शब्द की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है। इसे कई नामों से अभिहित किया गया है, जैसे रास, रासो, रासा, रसायन, रासक, रास आदि। परन्तु इस शब्द की उत्पत्ति मूल रूप से रास शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ है चिल्लाना, भाषण कला, एक प्रकार का विशेष नृत्य, सामान्य ध्वनि, स्त्री-पुरुषों का गोल घेरा, कृष्ण एवं गोपियों का विशेष नृत्य आदि।

संस्कृत धातु व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'रास' शब्द के रस के बहुवचन बोध के लिए प्रयुक्त हुआ है—'रसानाम समूहो रास' अर्थात् रसों का समूह ही रास है। रास के नृत्य गीत स्वरूप में रसानुभूति की सार्थक प्रक्रिया झलकती है। जिसमें आनन्द की दिव्यता या अलौकिकता भासित है। (रासो काव्य परम्परा और बीसलदेव रासो, पृष्ठ 79)

गोपियों के बीच एक कृष्ण के अनेक रूप होते हैं। स्त्रियों और पुरुषों का परस्पर हाथ बाँधकर मंडलाकार नृत्य, कृष्ण गोपियों के हल्लबद्ध वृत्ताकार नृत्य और प्राचीन पशुपालक नृत्य (चिल्लाहट) में, संगीत के योग से विकसित नाट्य रूप 'रासलीला' में परिवर्तित चन्द्र की चन्द्रिका पर मुग्ध होकर कृष्ण-गोपियों की क्रीड़ा, रहस्य लीला और देशी भाषा के शब्द 'रास' अर्थ में प्रयुक्त हुआ माना है।

कालान्तर में इसमें कई परिवर्तन आए। रास का नृत्य एवं गीतात्मक रूप कुछ समय पश्चात् परिवर्तित हो गया और समय के क्रम में कथा-प्रधान रूप विकसित होने लगा। यह स्थिति कुछ शताब्दियों तक बनी रही और फिर रास के नृत्य गीत में नृत्य का जुड़ाव गौण हो गया तथा कथा की प्रधानता क्रमशः प्रबलतर होती गई। कथा-काव्य रास को विकसित होने की एक नई दिशा मिली, रसानुभव किया जाने लगा। श्री नरोत्तम स्वामी ने प्राचीन राजस्थानी एवं गुजराती में ऐसे दर्जनों रास-काव्यों की परम्परा बतायी है, जो विशाल मात्रा में उपलब्ध है। अपभ्रंश काल में ही जैन रचनाकारों ने इस रास को अपनाकर धर्मपरक रचनाएँ लिखी, जिनका लौकिक प्रभाव राज दरबार से संबंधित कवि, भाट एवं चारणों पर पड़ा है। उन्होंने 'रास' की जगह 'रासो' शब्द को प्रयोग में लाना शुरू कर दिया। दोनों रचनाओं में परम्परागत अन्तर देखा जा सकता है। मेवाड़, ढूंढाह और मारवाड़ में झगड़े को भी 'रास' कहते हैं। वस्तुतः विवाद और झगड़े की व्यंजना रासो की विशेषता है। इसमें तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ विद्यमान हैं।

वस्तुतः 'रासो' के मूल रूप 'रास' के विकास की अन्तिम अवस्था लगभग 14वीं सदी तक रही। इसके रूप क्रमशः परिवर्तित होते गए। पहले इसमें नृत्य, गीत और संगीत की मधुर ध्वनियों के साथ भावनाओं की अभिव्यक्ति होती थी। सातवीं-आठवीं शताब्दी तक यह कथा-प्रधान हो गया, जिसे जैन रचनाकारों ने धार्मिक रचनाओं के रूप में रचा। ये रचनाएँ दो प्रकार की थीं, प्रथम 'छंद प्रधान' तथा द्वितीय 'विषय प्रधान'। छंद प्रधान रचनाओं के अन्तर्गत 'भरतेश्वर बाहुबली रास', 'चंदनबाला रास', 'स्थूलीचभद्र रास', 'नेमिनाथ रास' आदि प्रमुख हैं। इनमें दो प्रकार के छंदों का प्रयोग किया जाता है—प्रमुख तथा गौण। प्रमुख काव्य परम्परा में

चर्चरी, फागु, चौपाई रास तथा गौण के अन्तर्गत दोहा, छप्पय, गाथा एवं रेलुआ का उपयोग किया जाता है।

जहाँ तक विषय-प्रधान रचनाओं का संबंध है, तो इसमें प्रबंध चरित, एक कवचमातृ विरुदावली आदि प्रवृत्तियों का समावेश किया गया है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि जैन साहित्य में प्रचुर मात्रा में चरित काव्यों की रचना हुई है। सम्वत् 1461 के आस-पास कवि 'सफारू' द्वारा रचित काव्य ग्रन्थ 'प्रद्युम्न चरित', जैन चरित काव्यों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

जैन रचनाकारों के अतिरिक्त भी रासो काव्य परम्परा में कई ऐसे साहित्यकार हुए जिन्होंने प्रचुर मात्रा में साहित्य रचा। अब्दुल रहमान, मुन्जराज, कवि चन्दबरदाई, नल्लसिंह भाट आदि प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त रासो साहित्य में ऐसी भी कई रचनाएँ हैं जिनकी गणना धार्मिक विषय से इतर लौकिक साहित्य के रूप में की जाती है। उदाहरणतः 'बीसलदेव रासो'। यह एक ऐसी कृति है जो जैन नृत्य गीत परम्परा की होते हुए भी उस परम्परा में नहीं मानी जाती क्योंकि उसकी कथावस्तु लौकिक है। इसमें नृत्य-गीत परम्परा की समस्त विशेषताएँ समाहित हैं। यहाँ यह तथ्य ध्यातव्य है कि इसका रचनाकार कोई राजकवि नहीं था अथवा उसने किसी राजाश्रय में रहकर इस कृति की रचना नहीं की थी और न ही इसमें किसी शैली विशेष का निर्वाहन किया था। उसके इस रचना को रचने का उद्देश्य जनमानस को इस वियोग श्रृंगार प्रधान कथा को गा-गा कर सुनाना थ। इसमें लोक तत्त्व एवं लोक जीवन तथा रासो काव्य की रूढ़ियों का समावेश किया गया है। जबकि जैन धार्मिक रासो ग्रन्थों में शांत व निर्वेद रस की प्रधानता होती है, भक्ति की धारा आद्योपांत दिखाई देती है तथा लौकिक तत्वों का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। वहीं चारणों तथा भाटों द्वारा रचित रासो काव्य-कृतियों में वीर-रस की प्रचुरता के साथ-साथ तीर्थ आदि का वर्णन भी दिखाई देता है। इसी के साथ-साथ रासो काव्य परम्परा में 'रोमांचक रासो काव्य' भी रचा जा रहा था, जिसका एकमात्र उद्देश्य मनोरंजन था। इन कथाओं में विविध प्रेम-प्रसंग, लोक प्रचलित रूढ़ियों एवं कथाओं, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेम, अन्धविश्वास आदि की गहन छाप दृष्टिगत होती है।

इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक रासो काव्य परम्परा भी रही है। जिसके अंतर्गत ऐतिहासिक घटनाओं तथा पात्रों को आधार बनाकर रचना रची जाती है। कथा में गति एवं प्रवाह लाने के लिए आवश्यकतानुसार काल्पनिक घटनाओं तथा पात्रों का भी समावेश किया जाता है। उदाहरणतः 'पृथ्वीराज रासो', 'प्रताप रासो' आदि। इसी रसो परम्परा की श्रृंखला की अन्य कड़ी है पौराणिक रास। इसके अंतर्गत प्राचीन पौराणिक आख्यान एवं कथा को केन्द्र में रखकर रचना की जाती है। इन रचनाओं को प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास भी माना जाता है। इसमें मूल रूप से जन्म-जन्मान्तरों की कथाएँ सन्निहित होती हैं। भावुकता, अलौकिकता, प्रेम तथा रहस्यमयी चरित्रों की प्रधानता रहती है। नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन इनमें आद्योपांत छलकता रहता है। इस प्रकार रासो साहित्य में 'हरिवंशपुराण रास', 'नेमिनाथ रास', 'भरतेश्वर बाहुबली रास', 'पंचपाण्डव चरित रास', 'रामगुण रास' आदि प्रमुख हैं।

रासो काव्य परम्परा की अन्य महत्त्वपूर्ण कड़ी है—व्यंग्य प्रधान रासो काव्य। इसका सीधा संबंध सामाजिक कार्यकलापों से जुड़ा है। इसमें सामाजिक तथा धार्मिक विसंगतियों, विद्रूपताओं पर व्यंग्य द्वारा कुठाराघात किया जाता है। यह व्यंग्य स्त्री एवं पुरुष किसी को भी केन्द्रित कर किया जा सकता है, चाहे वह तत्कालीन समय का राजा या रानी या फिर कोई भी उच्चकुलीन पात्र ही क्यों न हो। चौदहवीं शताब्दी में हीरानन्द कृत 'कलिकाल रास' व्यंग्य रासो काव्य की एक सुप्रसिद्ध कृति है।

वस्तुतः विभिन्न साहित्यिक-धार्मिक सप्रंदायों तथा सामान्य जनजीवन से संबंधित कवियों ने इस काव्य परंपरा को अपनी रुचि अनुसार विकसित करते हुए महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। देशकाल के अनुरूप इसका स्वरूप बदलता गया। तत्कालीन परिवेश तथा साहित्यिक परम्परा को आत्मसात करते हुए इन कवियों ने रसा साहित्य को बहुआयामी तथा समृद्ध किया है। इन्हें केवल धार्मिक काव्य के चौखटे में सीमित कर देना इन कृतियों के साथ अन्याय करना होगा। इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कथन इस प्रकार है, ''जैन अपभ्रंश चरित काव्यों की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है, वह सिर्फ धार्मिक सम्प्रदाय की मुहर लगने मात्र से अलग कर दिए जाने योग्य नहीं है। धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यिक कोटि से अलग नहीं की जा सकती। केवल नैतिक और धार्मिक या आध्यात्मिक उपदेशों को देख कर यदि हम ग्रन्थों को साहित्य सीमा से बारह निकालने लगेंगे तो हमें आदि काव्य से भी हाथ धोना पड़ेगा।''

यद्यपि यह सत्य है कि जैन धार्मिक रासो काव्यों के रचनाकार अधिकतर जैन महात्मा तथा साधु-संन्यासी थे किन्तु उनका उद्देश्य केवल जैन धर्म का प्रचार करना मात्र नहीं था बल्कि लोक जीवन से जुड़े तत्त्वों तथा जीवन संदर्भों में नैतिकता तथा विकासोन्मुख आदर्शों का उदात्त भाव से पालन करना/करवाना भी रहा है। अतः इनकी रचनाओं में लोकहित की भावना ही आद्योपांत परिलक्षित होती है। इस प्रकार रासो साहित्य हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। यह परवर्ती हिन्दी साहित्य की बुनियाद है।

सैंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ कश्मीर, एडमिनिस्ट्रेटिव कैम्पस, नौगाँव-11, नजदीक पुहरू क्रासिंग, नौगाँव बाइपास, श्रीनगर-190016 (जम्मू-कश्मीर)

लोक संस्कृति का वैविध्य और हिमालय

गंगा प्रसाद विमल

लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार एवं जाने-माने कवि एवं लेखक।

हिमालय लोकचर्याओं का एक विलक्षण संग्रहालय है। वैविध्य की दृष्टि से तो वह विचित्र ही है। कराकोरम की घाटियों को ही लें तो वहाँ अभी आदिम स्थितियाँ विद्यमान हैं। आधुनिकता की जो रोशनी वहाँ पहुँची भी है तो वह इतनी मन्द है कि उसके आलोक ने पश्चिमोत्तर राष्ट्रों की राज्य इकाई के रूप में अपने ही मुल्क की सरहदों को पूरी दुनिया को समूचा संसार समझा हुआ है। ऐसी परिस्थिति सुदूर हिमालय क्षेत्रों के उन सभी इलाकों में विद्यमान है जहाँ अभी तक आधुनिक संसार पूरी तरह नहीं पहुँच पाया है या छुट-पुट जिस रूप में पहुँचा भी है तो उसे हिमालय के उन दुर्गम इलाकों ने अपने सांस्कृतिक रंग में ढाल लिया है। तथापि वहाँ समूचे तौर पर एक लोक संसार अस्तित्ववान है। उनकी लोक कलाएँ, उनके लोक नृत्य, उनके लोक वाद्य और उनके लोकाचार अभी भी क्रियावान है। इस विद्यमानता से यही निष्कर्ष हाथ लगता है कि लोकाचारों की प्रयोजनमूलकता अपने सार्थक रूप में वहाँ सक्रिय है। और इसी आधार पर कहा जा सकता है कि लोकानुभवों की यह सृष्टि इतने गहरे में मानव-मनोलोक में स्थापित है कि हम आसानी से कह सकते हैं कि दुनिया के सभी क्षेत्रों के मुकाबले मनुष्य जीवन यदि अपनी विविध लोक शैलियों में कहीं सक्रिय है तो वह हिमालय क्षेत्र ही है।

विशाल क्षेत्र में अनेक प्रकार के हिमालय एक-दूसरे से इस तरह गुंथे हैं कि उन्हें अलगाना दुष्कर कार्य है। मोटे तौर पर भौगोलिक हिमालय की बात करें तो हम उसकी मुख्य रूप से तीन परतें देख सकते हैं—(1) बाहरी हिमालय, (2) मध्यवर्ती हिमालय, (3) भीतरी हिमालय।

इन तीनों हिमालयों के अतिरिक्त अनेक अन्य हिस्से भी दृश्य रूप में हिमालय के ही रूप हैं जिन्हें हम अन्य प्राकृतिक स्रोतों से जानते हैं। इसके प्रमाण हमें वैज्ञानिक अध्ययनों, साहित्य और लोक चर्याओं में बिखरे मिलते हैं। यह दृश्य हिमालय एक तरह की भौतिक उपस्थिति है। यह भौतिक उपस्थिति अनेक रूपों में प्रभाव छोड़ती है।

मोटे तौर पर यह दृश्य हिमालय एक ऐसी संरचना है, जिसे समझना जरूरी है। इसकी दृश्यता के अन्य पक्षों को इसलिए केन्द्रीय मानना चाहिए क्योंकि वे सब पक्ष भी हिमालय को केन्द्रीय मानकर विकसित हुए हैं। अर्थात् हिमालय अत्यंत दिव्य है—यह केवल अधिभौतिक अनुभव नहीं है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि हिमालय की उपस्थिति किसी एक कारण से महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि हम भाषा का ही पक्ष देखना चाहें तो पायेंगे कि हिमालय क्षेत्र में अन्यान्य भाषाओं की उपस्थित है। वे पारस्परिक संवाद के लिए पूर्ण माध्यम हैं और समूचे हिमालय के अन्तर्भाषायी संवाद के लिए भी किसी एक ऐसी भाषा को उपस्थित पाते हैं जो अनेक भाषीय वर्गों के बीच अपने अपने संप्रेषण की पूर्णता के लिए पर्याप्त है। पर्याप्त भी इस आशय से कि सभी भाषाओं के बीच संवाद की संभावना किसी-न-किसी रूप में मौजूद है।

इस वक्तव्य को समझना लाजिमी है। भाषाओं का वैविध्य हिमालय की विविधता के प्रसंग से ज्यादा आसानी से समझने वाली चीज है। अर्थात् हिमालय की प्रकृति, हिमालय की बुनावट का मामला ही लें तो हमें यह अहसास होगा कि हिमालय कोई दो चीजें एक नहीं हैं। फिर भी वे हिमालय हैं। आप उन्हें काटकर अलग से उसके अस्तित्व पर बहस नहीं कर सकते। करना होगा तो हिमालय को एक ही मानकर आप उसके अनेक भेदोपभेद उपस्थित कर सकते हैं। परंतु जैसे ही हिमालयी गीत की एक पंक्ति गीतोच्चार की शैली का स्थापन करेगी वह पहली चीज तो यही स्थापित करेगी कि गीत का भाषाई रूप चाहे जो हो वह हिमालय के निसर्ग के संगीत को अभिव्यक्ति देती है। कुछेक अध्येताओं ने कश्मीर, जम्मू, हिमाचल प्रदेश की लोकगाथाओं का अध्ययन कर हिमालय की घोर उपेक्षा से यह साबित करना चाहा कि इस दुर्गम क्षेत्र में कोई भी भाषिक गतिविधि नहीं है इसीलिए हमने आरंभ में ही कहा है कि हिमालय लोक चर्याओं का विलक्षण संग्रहालय है। यह कहने का हमारा तात्पर्य यह भी है कि हिमालय एक ऐसा विशाल ज्ञान भंडार है, जो अपनी लोक समृद्धि के कारण ही विरल भी है।

अब हम केवल इस प्रश्न से भी जूझें कि क्या हिमालय की लोक समृद्धि भारतीय लोक जीवन का हिस्सा नहीं है तो हमें खोजना पड़ेगा कि नदियों द्वारा जो जल भारत या भारतीय समुद्रों पर सदियों से गिरता रहा है, गिरता भी रहेगा वह हिमालयी है या नहीं? तो इस प्रश्न का उत्तर न देना ही उचित और श्रेयस्कर है। स्पष्ट है ज्ञान की जो धारा हिमालय से विकसती है वह सर्वत्र फलती-फूलती है और उसका स्वायित्व संपूर्ण विश्व का बन आता है क्योंकि किसी बादल, किसी पक्षी और आसमान के किसी टुकड़े को स्थानीय नहीं साबित किया जा सकता।

कश्मीर से कोहिमा तक आपको लोक गीतों एक न खत्म होने वाला झरना मिलेगा। इसका संरक्षण अनेक स्तरों पर हुआ है। और अब यह आधुनिक यंत्रों में भी उपलब्ध है। इसके मोटे-मोटे हिस्से किए जा सकते हैं जो राष्ट्रीय रूप में स्वीकृत हैं। नेपाली लोकगीत, कश्मीरी लोकगीत, लद्दाखी लोकगीत, हिमाचली लोकगीत (हिमाचली क्षेत्रों की संज्ञाओं से जुड़े गद्दी लोकगीत, कुल्लवी लोकगीत, सिरमौरी लोकगीत), गढ़वाली लोकगीत, बंगाणी लोकगीत, माच्छी लोकगीत, भोटिया लोकगीत, जौनसारी लोकगीत, कुमाऊँनी लोकगीत, लेपचा लोकगीत, भूटानी लोकगीत, मणिपुरी लोकगीत, मिजो लोकगीत, असमी लोकगीत आदि रूपों में उन्हें देखा जा सकता है। इन लोकगीतों में लोक जीवन की अनेक छवियाँ मिलती हैं। लोकचर्याओं को केन्द्र में रखकर भी असंख्य लोकगीत इस महत्त्वपूर्ण लोक क्षेत्र में रचे गए हैं। हिमालय क्षेत्रों का लोक जीवन मानव कल्पना से भी ज्यादा बीहड़, त्रासदाता, दुर्गम, दुर्भेद्य होते हुए भी अति मनोरम है। इस जिस महाभारत की उपस्थिति की चर्चा हिमालय क्षेत्र में कर रहे थे वह हिमालय क्षेत्र की विभिन्न शौर्य तथा युद्ध संबंधी प्रकल्पनात्मक गाथाओं में इस तरह पिरोई गई हैं कि उसका आस्वाद करने के बाद व्यास रचित मूल महाभारत बहुत ही अधिक संवेदनशील महसूस की जा सकती है। महाभारत का प्रथम पर्व इस निर्मित के अनुसार किसी रूपवान ढलान में हुआ होगा। हम पाते हैं कि मूल गाथा में मूल रूप से जो चरित्र उपस्थित के जरूरी नहीं हिमालय क्षेत्र सबको स्वीकार कर ले। प्राचीनतम सांस्कृतिक धारा होने के कारण हिमलाय क्षेत्र में सक्षमता है कि वह नए विमर्शों में स्वयं को बराबर विकसित करता है। किन्तु गाथा का वही रूप भिन्न-भिन्न तरीकों से छनता है और लोक नाट्य लीलाओं में फिर से हिमालयी निसर्ग से आ जुड़ता है।

महाभारत का युद्ध प्रसंग को ही लें। हिमाचल के सिरमौर इलाके में इसका नाट्य रूप युवजनों द्वारा प्रतीक युद्ध के रूप में उपस्थित किया जाता है। कहीं-कहीं ये मिथकीय गाथा रूप विश्वासों या आनुष्ठानिक उपस्थितियों में मूल्यात्मक आधारों के विगृह के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं अर्थात् सिरमौर में ही अनेक तरह की प्रस्तुतियाँ इस बात की द्योतक है कि महाभारत का कौन-सा मूल्यात्मक आधार स्वीकार किया गया है। सामुदायिक नृत्य का हिस्सा बनकर सदैव बुरे पक्ष को अर्थात् कौरव पक्ष को पराजय ही झेलनी है किन्तु प्रस्तुति

का कौशल अभिनेताओं की शक्ति पर निर्भर करता है और तदनुरूप उसको सराहना भी मिलती है।

हिमालयी लोकचर्या में श्रुति का प्रभाव सर्वत्र देखा जा सकता है। आर्ष साहित्य का जो भी हिस्सा आनुष्ठानिक क्रियाओं द्वारा जन स्मृति तक पहुँचा वह लौटकर 'वचन' साहित्य का आधार बन कर वाचिकी परंपराओं में रूपांतरित होता रहा किन्तु तब तक उसके इतने मौलिक संस्करण ढल चुके कि केवल आर्ष गाथा का बाहरी प्रारूप ही मिथकीय रहा शेष क्षेत्रगत असर से ऐतिहासिक रास्तों से एकदम आंचलिक बनता रहा है। गढ़वाल-कुमाऊँ क्षेत्र में महाभारत का यही रूप लोकगाथाओं, लोकगीतों और लोकाधारी कलारूपों में संरक्षित रहा। एक विदुषी ने अपने शोध में निष्कर्ष दिया कि उपलब्ध लोकगाथा में महाभारत के घटने का स्थान भी हिमालय ही बताया गया है। यह रूपांतरण किसी व्यक्ति के हाथों नहीं हुआ बलिक लोक आख्याताओं से समय-समय पर वह आजादी ली तथा उसी के अनुरूप महाभारत घटने का विवरण अपने क्षेत्रीय परिवेश में उद्घाटित कर स्थापित किया कि कौरव और पाण्डव यहीं के मूलवासी थे। हिमालय क्षेत्र का वैविध्य, दिव्य सौन्दर्य प्रक्षेपित करने वाले शिखरों में ही व्यंजित नहीं होता—वह उस जाग्रत प्रथमदर्शी द्वारा भी निजतापूर्ण ढंग से अपना बन जाता है कि कभी-कभी आश्चर्य भी होता है कि 'कुन्ती' का सूर्य से मिलन हिमालय की घाटियों में ही होता है क्योंकि असंख्य प्रेमगाथाओं की शरण स्थली हिमालय की मनोरम, कामोदीप्त करने वाली घाटियाँ ही हैं।

विद्वानों ने उचित ही निष्कर्ष निकाले हैं कि हिमालय के हर पर्वत शिखर, हर क्षेणी, हर ढलान, हर झरने, हर मंदिर, हर तालाब, हर वृक्ष, हर शाखा, हर पुष्प और हर नदी की अपनी अलग मिथकीय गाथा है और उस मिथकीय गाथा के प्रमाण उन गाथाओं, गीतों तथा संगीत की लहरियों में मिलते हैं जिनकी अपनी निजता है, व्यक्तित्व है। इन लोकानुभवों का विस्तार हर पीढ़ी की अपनी शैली में विकसित होता रहता है। यह आसानी से कहा जा सकता है कि हिमालय क्षेत्रों में लोकाचारी समृद्धि का अकूत कोष है जो अनेक स्थानों पर रूपांतरित होकर वहीं की क्षेत्रीयता का हिस्सा बनकर भी हिमालयी उदारता का बखान कर डालता है। समय-समय पर अन्य लोक क्षेत्रीय लोक सृजन पर हिमालय का प्रभाव पड़ा है तथापि उनमें नई चीजें, समाज के नये अनुभव, ऐतिहासिक घटनाओं की नई व्याख्याएँ, नये कथानकों का आगमन और शौर्य व जातिगत अभियान से भरी गाथाएँ लोकधाराओं में नयेरूपों में अवतरित होती हैं और व्यापक होकर सभी दिशाओं में तैरने लगती हैं। धुनें उन वाद्य यंत्रों से तैयार की जाती हैं जो इसी क्षेत्र के संगीत को लोकाधारित अनिवार्यताओं के अनुसार ढालती हैं। और वे नये राग-रागनियों में कम महत्त्वपूर्ण नहीं होते। नये संचार माध्यमों में भी वे अतिरिक्त रूप से लोकप्रिय गीत हैं जो जन माँग पर बार-बार निर्मित किए जाते हैं। अर्थात् प्राचीन काल से अब तक लोक व्याप्ति के रूप में विद्यमान रूपों का प्रचलन जारी है। यह सातत्य अन्य अनेक शास्त्रीय आधारों का निर्माण करता है।

लोकगीत लोक भावना के सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व का बोध देते हैं। परंतु लोककथाएँ अत्यंत प्रासंगिक और हर युग में नयी होने के गुण से सम्पन्न होती हैं। 'फोक टेल्स फ्राम इंडिया' ग्रंथ का संचयन एवं अनुवाद बीसवीं शताब्दी के महान तमिल-अंग्रेजी कवि ए.के. रामानुजन ने किया है। उसमें उन्होंने अपनी भूमिका में स्पष्ट भी किया है कि ''पक्षी इसलिए नहीं गाते कि उनके पास उत्तर हैं, वे इसलिए गाते हैं कि उनके पास गीत हैं।'' स्पष्ट है कि हमारी वाचिक समृद्ध परंपरा में केवल आनंद के लिए ही हम लोकगीत या लोक कथाएँ नहीं पढ़ते अपितु यह अनुभव करने हेतु पढ़ते हैं कि वे एक ऐसी सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं जो धीरे-धीरे मनुष्य के भीतर निसर्ग की आत्मीयता जगाने लगती हैं। रामानुजन ने एक हिमालयी लोककथा का अपने ग्रंथ में संचयन किया है, जिससे हमें संदेश मिलता है कि मानव समाजों में मानवीय मूल्यों का सृजन कैसे होता है? एक शेर साँप और दो आदमी घने जंगल की खाई में गिरे पड़े हैं। उन्हें कोई बचाए तभी वे बच सकते हैं। एक आदमी ऊपर से उन्हें झाँकता है। यह कालखण्ड वह है जब मानवेतर भी मानवीय भाषा का इस्तेमाल करते हैं। वे प्रार्थना करते हैं कि उन्हें बचा लिया जाए। शेर कहता है मुझे बचाओगे तो मैं तुम्हारे काम आऊँगा। आदमी उसे बचाता है। बचते ही वह जंगल में भाग जाता है। फिर स्वयं पैरवी करता है। वह साँप को भी बचा लेता है। अंत में आदमी भी बचा लिए जाते हैं परंतु बचते ही वे बचाने वाले को वहाँ के क्रूर राजा की कैद में डलवा देते हैं।

लोकगाथा में लोकोत्तर कल्पनाएँ जो कि फन्तासी जैसी लगती हैं, इसलिए उतरती हैं कि उनके निष्कर्षों से फिर हम वास्तविकताओं को भलीभाँति समझने लगते हैं। यहाँ इस कथा में फिर वाचक या जेल में सड़ रहे व्यक्ति को जिसे, कि वहाँ का क्रूर राजा उन आदमियों के भ्रष्टाचार को असत्य समझते हुए, मृत्युदंड दे देता है। वह अपने द्वारा किए गए भले काण्डों के संदर्भ में शेर को याद करता है तो शेर नगर में आकर उस आदमी की पवित्रता को प्रमाणित करता है फलतः एक मामले में वह छूट जाता है किन्तु जब वह साँप से प्रार्थना करता है तो साँप भी उसकी सहायता करता है निष्कर्ष यह है कि भले को भलाई प्राप्त होती है किन्तु बुरे आदमियों की स्थिति पर यह लोकगाथा अपने संकेतों से स्पष्ट करती है कि बुरे की बुरी गति निश्चित है। हिमालय की यह लोकगाथा गढ़वाल-कुमाऊँ मण्डल की है। इसके अनेक रूप अन्य भाषाई समुदायों में फैले हुए हैं। कई

लोक साहित्य मर्मज्ञों ने यह स्थापना भी की है कि सामाजिक मूल्यों की निर्यात्री लोक धारा वस्तुतः हिमालय क्षेत्र से ही विकसित हुई है और इसे भावानुरूपाग्रह उन्हें आर्ष साहित्य में शास्त्रोक्त श्रेणी में रूपांतरित होते हुए दीखे तथा अन्य अनेक आधार विधि और अन्य शास्त्रों की मूलभित्तियों के रूप में स्वीकार किए गए।

लोक का अर्थ क्षेत्र और किसी संज्ञाधारी का बोध नहीं देता इसलिए यह स्वीकार करना कठिन है कि किसी एक क्षेत्र में ही कोई विशेषातायुक्त उन्मेष जाग्रत हुआ हो। अस्तु यह मानना ही श्रेयस्कर है कि हिमालय का लोक अन्य क्षेत्रीय इकाईयों से भिन्न है इसलिए वह हिमालयवासियों का ही नहीं है बल्कि सबका है। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो हम पाएंगे कि इस दिव्य क्षेत्र में उच्चतर के आदर्श लोकादर्श के रूप में निर्मित हुए और समूचे विश्व लोक में हम उनकी उपस्थिति देखते हैं। यह कहना उचित न होगा कि लोकधाराओं का सारा सृजन इसी विधि से सर्वत्र व्याप्त हुआ किन्तु इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि विविधा के गुण के कारण हिमालयी प्रभावों की विशेष उपस्थिति को उजागर होने देने की सुविधा अनेक कारणों से उपलब्ध रही होगी। ''तिब्बत टेल्स'' नामक ग्रंथ में एम. एण्टन वान शीइफ्नर ने तिब्बत के दुर्गम क्षेत्रों की अपनी यात्रा के दौरान क्सोमा कोरोसी ने महाप्रयाण से पूर्व हिमालय क्षेत्र में उपलब्ध सामग्री के आधार पर तिब्बती और अन्य हिमालयी भाषाओं पर जो कार्य किया था, वह भी उस समृद्ध क्षेत्र की लोकधाराओं के विकसित साहित्य की पुष्टि करता है। क्सोमा कोरोसी का लक्ष्य तो हंगेरियाई जाति के मूल की खोज थी जिसे 'हुन' जाति से सम्बद्ध मानने के विश्वास प्रचलित थे। (बेचारे क्सोमा कोरोसी 11 अप्रैल, 1842 को छोटी बीमारी से चल बसे)। इस प्रसंग को उठाने की आवश्यकता केवल यह है कि यूरोपीय भाषाओं में भी किसी-न-किसी रूप में हिमालय क्षेत्र के लोक सृजन का प्रभाव है। यह कहने का अर्थ केवल इस सत्य की पुष्टि है कि हिमालय क्षेत्र अपने वैविध्य में विश्व की अनेक अन्य लोकचर्याओं का उद्गम भी है, व संग्रहालय भी। हिमालय क्षेत्र की लोकगाथाओं को शिक्षण कला के अनुशासन के रूप में ही आज देखना उचित होगा क्योंकि 'गाथा' संबंधी प्राचीन ग्रंथों का उद्देश्य यही साबित होता है। यहाँ तक कि कुछ लोकगीत भाषा शिक्षण के प्रयोग से जुड़े हैं। मौखिक परंपरा के होने के कारण इनका संचयन नहीं हो पाया है किन्तु उक्ति के रूप में अभी भी बहुत से लोग उन्हीं दृष्टांतों से अपनी बात को प्रामाणिक सिद्ध करते हैं। नंदा जन्म से लेकर जीतू बगड़वाल की गाथाओं का लक्ष्य हिमालय क्षेत्र की अनेकार्थी व्यंजनाओं का संरक्षण तथा उनसे निर्मित होने वाले मूल्याधर की प्रासंगिकता से जुड़ा है।

अतः हिमालय क्षेत्र के लोक साहित्य का अत्यंत गंभीरता से अध्ययन आवश्यक है जिससे हम उन सूत्रों का उत्खनन कर सकें जिनसे मानव विकास की गतिविधियाँ जुड़ी हैं। ये गल्पात्मक प्रकल्पनात्मक बेशक हों किन्तु नई सैद्धांतिकी उन्हीं से निर्मित होती है। 'क्वेस्ट फार इंडियन फोक टेल्स' में साधना नैथानी से भारत के मध्यवर्ती क्षेत्रों की लोककथाओं का विवेचन करते हुए अनेक नए निष्कर्ष दिए हैं तथा इनके सूत्र अन्य अनेक क्षेत्रों से संबंधित है। यद्यपि उनका उद्देश्य हिमालय क्षेत्र का अध्ययन नहीं है। तथापि कुंदन सिंह जाट द्वारा वर्णित लोकगाथा में हम बहुस्तरीय कथात्मकता का अनुमान पा सकते हैं। यह कथा अनुमान अनेक अन्य कथारूपों को भी जन्म देते हैं। वास्तव में हमारी भाषाओं और बोलियों में यही क्षमता व्याकरेणतर कारणों से विद्यमान है। अगर भाषा को केन्द्रीय वस्तु मानकर हम अन्य सांस्कृतिक रूपाकारों का अध्ययन करें तो हासिल होगा कि केन्द्रीय वस्तु भाषा सांस्कृतिक रूपाकारों की विभिन्न अंतर्धाराओं में भाषा का अलग-अलग रूप प्रयोग में लाते हैं। वही भाषा जो गीत में अपने छांदिक अनुशासन के कारण संगीत के निकट है वह नृत्य में फिर अपनी अलग किस्म की त्वरा को प्रदर्शित करेगी। किन्तु मोटे तौर पर भाषा का अर्थ संप्रेषण की ही विधि मानी जाती है। हिमालय क्षेत्र के संगीत में लोकानुभव का अलग सघन रूप विद्यमान है। संभवतः सभी क्षेत्रीय इकाईयों में उसके मूल रूपों की एकता के पीछे कारण यही है कि वह निसर्ग के अत्यंत निकट है। हिमालयी लोकगीतों में जो ऊष्मा और तरलता है वह लगभग सभी लोक विधाओं में अपने अपने ढंग से विद्यमान है और उसके सार्वजनीन स्वीकार का कारण यदि एक ओर हिमालय है तो दूसरी ओर हिमालय का वह जन-जीवन है जिसके हर पक्ष में यह अतिरिक्त सांस्कृतिक चेतना है।

112, साउथ पार्क, कालकाजी,
नई दिल्ली-110019

अनुभूतिजन्य यथार्थ के साधक रामदरश मिश्र

(काव्य-संग्रह 'आग की हँसी' को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलने पर एक विशेष आलेख)

डॉ. वेद मित्र शुक्ल

दिल्ली के राजधानी कॉलेज में अध्यापनरत डॉ. वेद मित्र शुक्ल देश-विदेश में कई अकादमिक शोधपत्र प्रस्तुत करने के साथ हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद, स्वतंत्र लेखन, हिन्दी गज़ल आदि विधाओं से जुड़े हैं।

''हमारे हाथ में सोने की नहीं/सरकंडे की कलम है/सरकंडे की कलम/खूबसूरत नहीं, सही लिखती है/वह विरोध के मंत्र लिखती है/प्रशस्ति-पत्र नहीं लिखती है/हम कटघरे में खड़े हैं, खड़े रहेंगे... / ...राजा कौरव हों या पाण्डव/हम तो सदा वनवास ही झेलेंगे।'' ('दिन एक नदी बन गया', पृ. 2)

सहजता के साथ अपने समय की जटिलताओं को साहित्य के माध्यम से सम्प्रेषित करने में सिद्धहस्त रामदरश मिश्र आज के उन हिन्दी साहित्य के पुरोधाओं में शामिल हैं जिनको जाने बिना समकालीन हिन्दी साहित्य को जानने व समझने का दावा नहीं किया जा सकता। इस आपाधापी से भरे युग में जिस ईमानदारी, सरलता व सच्चाई से मिश्र जी एक लम्बे समय से साहित्य की लगभग हर विधा में रचना-कर्म से पूरी सक्रियता और मनोयोग के साथ जुड़े हुए हैं वह उभरते युवा साहित्यकारों के लिए ही नहीं अपितु आने वाले समय के लिए भी प्रेरणादायी हैं।

पथ के गीत (1951), बैरंग-बेनाम चिट्ठियाँ (1962), पक गई है धूप (1969), कन्धे पर सूरज (1977), दिन एक नदी बन गया (1974), मेरे प्रिय गीत (1985), बाजार को निकले हैं लोग (1986), जुलूस कहाँ जा रहा है? (1989), आग कुछ नहीं बोलती (1992), शब्द सेतु (1994), बारिश में भीगते

बच्चे (1996), हँसी ओठ पर आँखें नम हैं (1997), ऐसे में जब कभी (1999), आम के पत्ते (2004), तू ही बता ऐ जिन्दगी (2005), हवाएँ साथ हैं (2008), कभी-कभी इन दिनों (2010), धूप के टुकड़े (2012), आग की हँसी (2012), लम्हें बोलते हैं (2014), और एक दिन (2014), मैं तो यहाँ हूँ (2015), आदि काव्य-संग्रह, बारह से अधिक उपन्यास जिनमें प्रमुख रूप से पानी के प्राचीर (1969), जल टूटता हुआ (1969), आदिम राग (1970), सूखता हुआ तालाब (1972), बीच का समय (1976), बिना दरवाजे का मकान (1981), बीस बरस (1996), बचपन भास्कर का (2010) आदि तथा कई कहानी-संग्रह सहित अन्यापि विधाओं पर जैसे समीक्षा, ललित निबन्ध, यात्रावृत, डायरी, आत्मकथा, आलोचना, संपादन, संस्मरण, संचयन आदि पर उनका समान अधिकार हिन्दी साहित्य के साथ-साथ अपने समय व समाज के प्रति उनकी गहरी और अन्यतम प्रतिबद्धता को ही दर्शाता है। इतनी विधाओं में एक साथ अपने पाठकों के बीच में चर्चित होने के बावजूद उनके ही अनुसार उनकी 'प्रथम और समकालीन प्रीति कविता' है।

वर्ष 2015 का देश का प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार उनके काव्य-संग्रह 'आग की हँसी' को दिए जाने का अकादमी द्वारा हाल में लिया गया फैसला हिन्दी साहित्य से जुड़े रचनाकारों एवं उनके पाठकों के लिए एक चिर-प्रतीक्षित समाचार रहा है। उपरोक्त काव्य-संग्रहों की लम्बी फेहरिस्त में यूँ तो उनका सबसे पहला काव्य-संग्रह 'पथ के गीत' जो कि 1961 में प्रकाशित हुआ था, पर हिन्दी काव्य के क्षेत्र में उनका सफर 1940 के आस-पास ही प्रारम्भ हो चुका था। 'सरयू पारीण' नामक साहित्यिक पत्रिका के 1941 के जनवरी अंक में उनकी पहली कविता 'चाँद' प्रकाशित हुई थी। मिश्र जी के लम्बे काव्य-यात्रा की सबसे बड़ी खास बात यह है कि वह कविता को अपने साथ लेकर नहीं चले, बल्कि, बड़े ही सरलता और सच्चेपन से कविता के साथ चलते रहे। दूसरे शब्दों में कहें तो उनका रचना-कर्म किसी वाद अथवा सैद्धान्तिक पूर्वाग्रह का शिकार न होकर उन्मुक्त निर्झर नदी-सा प्रवाहमान रहा है।

आकाशवाणी दिल्ली से 'साहित्यिकी' के अन्तर्गत प्रसारित एक साक्षात्कार के दौरान इसी बात को आगे बढ़ाते हुए वह कहते हैं, ''मैंने कविता से लेखन आरम्भ किया था

और उसके साथ चलता रहा। समय के साथ बदलाव आते रहे। वस्तु में और अभिव्यक्ति में नयापन आता रहा। और आज जब मैं इस स्थिति में हूँ कि बहुत कुछ कर नहीं सकता हूँ, यानी, लम्बे उपन्यास नहीं लिख सकता हूँ, लम्बी कहानियाँ नहीं लिख सकता हूँ, तो भी कविता लिखता हूँ। कविता भी और कविता के रूप में मुक्तक भी।... कहानियों, निबंधों में भी कविता की उपस्थिति दिखाई पड़ती है। जहाँ कहीं आवश्यकता होती है वहाँ कविता दखल देती है। अनेक उपन्यासों में, कहानियों में या निबन्धों में जहाँ आन्तरिक सत्य का चित्रण करना हुआ, प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करना हुआ, कविता वहाँ पर आ जाती है। और कविता का भाव, कविता की भाषा, कविता के प्रतीक वहाँ पर दिखाई पड़ते हैं। तो मैं समझता हूँ मेरी केन्द्रीय विधा कविता ही है।''

हिन्दी कविता जैसे-जैसे समय के साथ आगे बढ़ती है, वैसे ही मिश्र जी का काव्य भी। और आज नयेपन, ताजगी और विविधताओं से भरा-पूरा कविताओं का उनका रचना-संसार पाठकों के समक्ष है। यह ही एक मूल कारण है कि सतत प्रकाशित हो रहे उनके काव्य-संग्रहों में पहले संग्रह से लेकर अब तक के संग्रहों में दोहराव की अथवा एक समय के बाद वरिष्ठ कवियों में पायी जाने वाली ठहराव की स्थिति नहीं बन पाती है। इसी बात को रेखांकित करते हुए स्मिता मिश्र 'रामदरश की काव्य-यात्रा' के आमुख में कहती हैं कि मिश्र जी का पहला संग्रह *'पथ के गीत'* छायावादी प्रभाव के दौर की कविताओं का है। जो 1946 से 1951 के दौरान लिखी गयी थी। सन् 1950 के बाद नयी कविता का दौर प्रारम्भ होता है। और 1962 में प्रकाशित हुई 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' में प्रगतिवादी दृष्टि के साथ वह नयी कविताओं की ओर आगे बढ़ रहे दिखायी पड़ते हैं। 1969 में भारतीय ज्ञानपीठ से उनका तीसरा संग्रह 'पक गई धूप' प्रकाशित हुआ। सन् 60 के बाद के समय को मोहभंग का समय यदि मानें तो 1969 के उनके संग्रह में मूल्यों के टूटने से उत्पन्न पीड़ा की अभिव्यक्ति को स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है। 1977 में प्रकाशित 'कंधे पर सूरज' उस समय घटित आपातकाल की कुरूपता पर चोट करती हुई आशा और विश्वास सहित अन्य सकारात्मक प्रवृत्तियों से भरी दिखायी देती है।'' (पृष्ठ 5-7)

'पथ के गीत' पर छायावादी प्रभाव की बात करें तो संग्रह की कविताएँ मुख्यतः कल्पनाशीलता, अनुभूति, निरूपण, स्वच्छंदता आदि विशेषताओं से युक्त हैं। संग्रह में उदाहरण के लिए कई गीत जैसे—'चल रहा हूँ', 'अभय जीवन', 'रात की पपीहरी', 'उनकी आँखें', 'फागुनी रात', 'पावस गीत', 'मन डूबा सन्नाटे में', 'जाड़े में', 'सरसों का वन', 'पक्षी', 'फागुन आया', 'मेरी राह न बाँधो', 'तहाँ भिनसारे हैं', 'जिन्दगी की राह पर' देखे जा सकते हैं। इसी संग्रह से प्रकृति का मानवीकरण करती ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं—'टेसू दहके ये डालों में/जग जलता लाल गुलालों में/मधुकर रस का चुम्बन करते/धँस-धँस कुसुमों के गालों में'' (पृष्ठ 95)।

पर, इसी संग्रह में कुछ कविताएँ सामाजिक चेतना के सुरों को भी मुखर करती हैं। उदाहरण के लिए—''फूल प्राणों का चढ़ाते स्वप्न की शव-साधना में/बलि चढ़ाते मनुज की पाषाण की अराधना में/लूटते हो आबरू की आब चाँदी के करों से/प्यास को बन्दी बनाया नग्न भूखी वासना में।'' (पृष्ठ 59)

'पथ के गीत' के पश्चात प्रकाशित 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' को समीक्षकों ने मिश्र जी के काव्य-व्यक्तित्व के विकास की दूसरी सीढ़ी माना है। इस संग्रह में अधिकतर नयी कविताएँ हैं। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी होने के साथ जिस प्रकार से नयी कविता में अनुभूतिजन्य नये मूल्यों को कथ्य के रूप में प्रस्तुत करने की विशिष्टता होती है उसे संग्रह की अनेक कविताओं में महसूस किया जा सकता है। 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ', 'बन्द कर लो द्वार', 'शाम', 'नींव के पत्थर', 'दौड़ने लगा पानी झरझर', 'देहाती टीसन', 'निशान', 'विदा', 'भटक रहा खानाबदोश सा', आदि उनमें उल्लेखनीय हैं। 'निशान' शीर्षक से एक कविता में अति भौतिक उपलब्धियों के बीच में भी मनुष्य किस प्रकार संवेदनाओं को बचाये रखने की जुगत में होता है देखा जा सकता है। कवि कहता है—''हाँ यह मकान बढ़कर/तिमंजिला-चौमंजिला हो गया/सीमेंट सूख कर कड़ी हो गयी/लेकिन उस दिन/तुमने जो मजाक-मजाक में/गीली सीमेंट पर/मुलायम पाँव रख दिया था/उसका निशान ज्यों का त्यों है।'' (पृ. 50)

सातवें दशक के शुरुआत में 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' आयी तो इसी दशक के अन्त तक 'पक कई धूप' काव्य-संग्रह आ गया था। दोनों नयी कविता के दौर के संग्रह रहे और दोनों ने ही उनके रचना-कर्म को एक दिशा दी। इस दौरान वे मार्क्सवादी दर्शन से भी प्रभावित हुए। और इस संबंध में एक स्थान पर लिखते हैं—''नयी कविता से जब मैं जुड़ा तब मैं मार्क्सवादी दर्शन अपना चुका था। अपने गाँव और समाज से प्राप्त मेरे सामाजिक अनुभव को एक ठोस विचार-दृष्टि प्राप्त हो गई थी।... कविताएँ लिख रहा था जिनमें मार्क्सवादी दृष्टि अंतर्व्याप्त थी। इस संबंध में दो बातें स्पष्ट करना चाहूँगा। एक तो यह कि मैंने मार्क्सवादी दर्शन को वस्तु के रूप में नहीं अंतर्दृष्टि के रूप में अपनाया, इसलिए मेरी कविताओं पर मार्क्सवाद हावी नहीं हुआ।... दूसरे मैंने मार्क्सवादी आलोचकों और कवियों द्वारा निर्धारित वस्तु जगत में अपने को कैद नहीं होने दिया, व्यक्ति और समाज की अन्य अनेक वास्तविकताओं और अनुभवों के प्रति अपने को खुला रखा।'' ('मेरी काव्य-यात्रा', पृष्ठ 07)

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मिश्र जी की रचनाएँ वाद या झण्डाबरदारी से मुक्त हैं।

उनके पहले प्रमुख तीन संग्रहों, जिससे उनके काव्य-यात्रा की दिशा तय होती है, के बाद प्रकाशित होने वाले बीस से भी अधिक काव्य-संग्रह 'समय साहचर्य से उपजी' कविताओं के संग्र हैं। उनके रचना-संसार में छन्दमुक्त और छन्दयुक्त दोनों प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। अभी के उनके संग्रहों में छन्दमुक्त कविता की अधिकता दिखती है। जो सम्भवतः आज के यथार्थ को कविता के साथ समरस करने हेतु कवि के लिए आवश्यक हो।

दुष्यंत के प्रभाव में जब ग़ज़ल का एक दौर शुरू हुआ तब जो पूर्व में कभी-कभी ग़ज़लें कहते रहते थे उन मिश्र जी के हिन्दी ग़ज़लों के अब तक पाँच ग़ज़ल-संग्रह 'बाजार को निकले हैं लोग', 'हँसी ओंठ पर आँखें नम हैं', 'तू ही बता ऐ जिन्दगी', 'हवांएँ साथ हैं' तथा '51 ग़ज़लें' प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मिश्र जी की ग़ज़लों की बात चलते ही लोग खुद-ब-खुद सन् 1985 में कही ये पंक्तियाँ गुनगुनाने लगते हैं—''बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे,/खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे।/किसी को गिराया न खुद को उछाला,/कटा जिन्दगी का सफर धीरे-धीरे।/ जहाँ आप पहुँचे छलाँगे लगाकर,/वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे।/पहाड़ों की कोई चुनौती नहीं थी,/उठाता गया यों ही सर धीरे-धीरे।/गिरा मैं कहीं तो अकेले में रोया,/गया दर्द से घाव भर धीरे-धीरे।'' ('बाजार को निकले हैं लोग', पृष्ठ 54)

उपरोक्त ग़ज़ल में मनुष्य की जीवटता और क्रियाशीलता जैसी विशेषताओं को शेरों में इतने सलीके से पिरोया गया है कि हर पाठक या श्रोता खुद को इन पंक्तियों से जुड़ा हुआ पाता है। उनके द्वारा कहे ग़ज़लों का भाव-संसार बहुत विस्तृत है। उनमें अनावश्यक भाषाई चमक-दमक से दूर स्वाभाविकता के साथ स्पंदित करने की अद्भुत क्षमता है। यहीं ग़ज़ल 'हँसी ओंठ पर आँखें नम हैं' संग्रह में एक बार पुनः प्रकाशित हुई। इस ग़ज़ल को यदि कवि की कालजयी ग़ज़ल कहा जाए तो तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। नरेश शांडिल्य के शब्दों में कहें तो मिश्र जी की हिन्दी ग़ज़लें ''चमत्कृत नहीं स्पंदित करती हैं।'' ग़ज़ल की ''बनी-बनाई परिभाषा के ढर्रे में कैद होकर लिखना पसन्द नहीं करते। वे अपने मूल स्वभाव में बसी सहजता और स्वच्छन्दता के बल पर ही ग़ज़लों से आगे बढ़े हैं।'' (पृष्ठ 23)

उनके कई काव्य-संग्रहों में लम्बी कविताएँ भी हैं। जिसमें से 'मनाएँ क्या दीवाली हम', 'पर विद्रोही कब सुनता है' ('पथ के गीत'), 'आत्महत्या से पहले' ('बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ'), 'समय देवता', 'फिर वही लोग' (पक गई है धूप), 'साक्षात्कार' (कंधे पर सूरज), आदि उल्लेखनीय हैं। लम्बी कविताओं के रचना-विधान पर चर्चा करते हुए नरेन्द्र मोहन अपनी पुस्तक 'लम्बी कविता के आर-पार' (2015) में मिश्र जी की 'फिर वही लोग' को प्रमुखता से लेते हुए कहते हैं, ''फिर वही लोग' में स्थितियों में छिपे व्यंग्य को पकड़ने और उसकी विसंगति को उद्घाटित करने का प्रयत्न है। इस कविता की विधायक टेक है—''फिर वही लोग जा रहे हैं इस सड़क से।'' यह इस कविता की प्रारंभिक पंक्ति है और इसी से समापन भी हुआ है। इस टेक के गिर्द अन्य भावों, विचारों और विवरणों की परिधि तानी गई है। लोग और सड़क के तनावपूर्ण संयोजन द्वारा विसंगति के अच्छे चित्र उभरे है—''यह सड़क देख रही है कब से/कि इस पर से आदमी नहीं/केवल जुलूस गुजरे हैं.... हाँ आज फिर जुलूस जा रहा है/इसमें वे ही लोग शामिल हैं/जो कल दूसरे जुलूस में थे।'' इस ढंग से विन्यास के माध्यम से विवरण भी अर्थवान बन गए हैं।'' (पृष्ठ 30)

मिश्र जी स्वयं भी लम्बी कविताओं की रचना-प्रक्रिया पर एक स्थान पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि छोटी कविताएँ अनुभूतिजन्य हो सकती हैं। पर, लम्बी कविताओं में विचार की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ऐसी कविताएँ ''अनुभव के स्फुरण से नहीं, बल्कि चिंतन या विचार से पैदा होती हैं।'' कविता में उठने वाले प्रश्न, अनुभव बिम्बों की एक शृंखला, जीवन-दृष्टि, बहुआयामी जीवन-अनुभव ये सब मिलकर ही एक विराट चित्र खींचते हैं।'' ('मेरी काव्य-यात्रा', पृष्ठ 10)

लम्बी कविताओं में 'समय देवता' और 'साक्षात्कार' भी समीक्षकों के बीच चर्चित रही हैं। इन कविताओं में उनके द्वारा जीवन व समाज के यथार्थ को उकेरने के लिए प्रयोग किए गए काव्य-बिम्बों में बनावटीपन नहीं है। अपितु, समाज, देश, समय और परिवेश से जुड़े कड़ुवे सच को रचनात्मकता व सजीवता के साथ प्रस्तुत करने के लिए एक सहज माध्यम के रूप में उभर कर आए हैं। उनकी प्रतिनिधि-रचनाओं में से एक 'समय देवता' में नाम-पट्ट का जूते के फटे तल्ले सा औंधा लटकना, चलते नंगे पाँवों में जलती सिगरेट का धँसना, साँस की आँच से शीशे का चिटकना, प्रकाश का हाँफना, बरसाती पौधों की तरह भूख का उगना, छतों पे चढ़ के रात का रोना, जंगलों से खाली दिशाओं का झाँकना, नकली भीड़, गलियों का थक के सोना आदि बिम्ब सामाजिक यथार्थ को दर्शाने में प्रयोग में लाए गए कुछ उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

वर्ष 2015 में विभिन्न संग्रहों में प्रकाशित उनकी 140 चुनिन्दा छोटी कविताओं का 'अपना रास्ता' नाम से सविता मिश्र द्वारा सम्पादित एक संग्रह प्रकाशित हो चुका है। जो 'संक्षिप्तता, समग्रता, एकाग्रता के साथ-साथ चिंतन और भाषा की विशिष्ट अन्विति' से युक्त कविताओं को अपने में संजोए हुए हैं। मिश्र जी की ''ये कविताएँ कम से कम बिम्ब एवम् प्रतीक द्वारा पुष्ट, सांकेतिक, सघन अर्थों से युक्त तथा दूर तक प्रहार करने वाली हैं।'' इनमें एक अलग ही कौंध है जो कविता के शीर्ष बिन्दु को पहचानते हुए सूक्ष्म स्तर पर यथार्थ की पहचान कराती है। (पृष्ठ 9-10)।

उम्मीद है कि लम्बी कविताओं का भी इस प्रकार से एक संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

आज उनके नवीनतम काव्य-संग्रहों में से एक 'आग की हँसी' विशेष रूप से साहित्यकारों और पाठकों के बीच में चर्चा में है। 2012 में प्रकाशित 53 कविताओं के इस संग्रह में एक छोटी-सी कविता है। जिसमें तथाकथित अभिजात वर्ग के लोगों में व्याप्त अहंमन्यता को निशाने पर लेते हुए आम आदमी के पक्ष को बड़े ही रोचकता के साथ कविता में संजोया गया है। कविता में अभिजात लोग हैं, बड़े लोग हैं। वे कहते हैं—आग चूल्हे से लगी है। आग प्रतीक है आम आदमी का। यानी आम आदमी देश को आग लगाता है। तो कवि कहता है—''जी नहीं/चूल्हे की आग से तो/गरम-गरम रोटियाँ निकलती हैं/... और धीरे-धीरे आदमी की हँसी बन जाती हैं/आप जरा आईना देखिए श्रीमान्/आपकी शीतल शालीन हँसी से/कैसी धीमी-धीमी आग फूट रही है/और धीरे-धीरे/अपनी लपेट में ले-ले रही है दिशाओं को महाज्वाला बनकर/फिर भी आपकी माया है कि/लोग समझते हैं/ आग चूल्हे ने लगायी है/आपकी माया कितनी हसीन है मायाधर।'' (पृ. 09)

इस काव्य-संग्रह में कुछ मुक्तक और दो गीत 'हरसिंगार' और 'कितना अच्छा लगता है' जहाँ एक ओर कवि की हिन्दी साहित्य के एक प्रमुख गीतकार की छवि को पाठक के मन में फिर से ताजा कर जाती है, तो वहीं अन्य कविताएँ आज के जटिलतम यथार्थ को भी सहजता के साथ पाठक को सम्प्रेषित करने में पूर्ण रूप से सक्षम हैं। 'देवता', 'धरती', 'अँधेरे के विरुद्ध', 'अब नहीं आतीं चिट्ठियाँ', 'विश्वग्राम', 'धूप', 'पूरा देश तुम्हारा गाँव हो गया है', 'फूल', 'और एक दिन', 'पैसा हँसता है', 'खेत चरते हैं', आदि कुछ उल्लेखनीय कविताएँ हैं। इनमें 'अँधेरे के विरुद्ध' शीर्षक से लिखी एक कविता के माध्यम से वह आज के सत्तालोलुप राजनीतिज्ञों या ऐसे ही अन्य लोगों के अनेकों नकारात्मक विचारों और विमर्शों से बेहतर मात्र एक सकारात्मक विचार की महत्ता पर बल देते हुए कहते हैं—''दल बाँधकर/वे तेज-तेज स्वरों में चीखते रहे अँधेरे के विरुद्ध/और रह-रह कर खुद ही गिरते रहे बारी-बारी/अँधेरा और-और गहराता रहा/ और उन्हीं के भीतर पैठकर मुस्काता रहा/वह अकेला चुपचाप रहा सन्नाटे में/लेकिन चलते समय एक मशाल जला ली थी/वह अकेला नहीं था/... .... उससे कट-कट कर अँधेरा थरथरा रहा था/और वह धीरे-धीरे मुस्करा रहा था।'' (पृष्ठ 39)

इसी प्रकार एक अन्य छोटी-सी कविता 'देवता' में आज के समाज में व्याप्त धार्मिक कर्म-काण्डों, आडम्बरों आदि के सामने आदमी किस तरह से स्वयं और स्वयं से जुड़ी छोटी पर महत्त्वपूर्ण चीजों के महत्त्व को समझ पाता है की बात को कबिराई अन्दाज में कहने के साथ-साथ मनुष्य होने के महत्त्व को बड़े ही सहजता के साथ स्पष्ट किया है—''रंग-बिरंगे कीमती पत्थरों के घर में/ पत्थर के देवता सो रहे थे/लोग उन पर सिर पटक-पटक कर रो रहे थे/और माँग रहे थे न जाने क्या-क्या/मैं विरक्त भाव से घर लौट आया/और ज्यों ही रसोईघर में पहुँचा/चकले से आवाज आई/'अरे तुम कहाँ चले गए थे/ मैं तो यहाँ हूँ'।'' (पृष्ठ 37)

इस संग्रह में कुछ कविताएँ जैसे 'डायरी', 'फिर आ गया क्वार', 'चौराहा', 'हनुमान', आदि में आत्मकथ्यात्मक तत्त्व भी देखने को मिलता है। पर, भावों, विचारों, अनुभवों की सार्वभौमिकता और सर्वग्राह्यता बनी रहती है।

कुल मिला कर अपने समय और अपने परिवेश को निर्दोषभाव से परख करने की उनकी काव्य-प्रतिभा उनके सम्पूर्ण रचना संसार को पाठकों का प्रिय बना देती है। लगभग 91 वर्ष की आयु में सरलता के साथ अनुभूत समय को साहित्य के माध्यम से सम्प्रेषित करने की कला में मिश्र जी आज भी साधनारत हैं। विविधताओं से भरे, ताजगी लिए, नयेपन की ऊष्मा के साथ उनका हर एक काव्य-संग्रह उनके लम्बे साहित्यिक-यात्रा में मील के पत्थर साबित होते रहे हैं। भारत-भारती सम्मान, हिन्दी अकादमी शलाका सम्मान, सारस्वत सम्मान, दयावती मोदी कवि भोखर सम्मान, व्यास सम्मान और जाने अन्य कितने सम्मानों की कड़ी में हिन्दी का एक और अतिप्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार का जुड़ना उनका ही नहीं अपितु साहित्य-समाज, उनके पाठकों और उससे भी अधिक उनके समय और उनके परिवेश का सम्मान है।

संदर्भ—

- नरेन्द्र मोहन, 'लम्बी कविता के आर-पार', कानपुर, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स, 2015
- मिश्र, रामदरश, 'अपना रास्ता', सम्पादक सविता मिश्रा, नई दिल्ली, स्वराज प्रकाशन, 2015
- 'आग ही हँसी', नई दिल्ली, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, 2012
- 'दिन एक नदी बन गया', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1974
- 'बाजार को निकले हैं लोग', नई दिल्ली, विकास पेपरबैक्स, 1986
- 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ', अहमदाबाद, आस्था प्रकाशन, 1962
- 'मेरी काव्य-यात्रा', 'उस बच्चे की तलाश में', नई दिल्ली, नमन प्रकाशन, 2007
- 'साक्षात्कार'—'साहित्यिकी', आकाशवाणी दिल्ली, 22 जनवरी, 2014
- 'हँसी ओंठ पर आँखें नम हैं', दिल्ली, परमेश्वरी प्रकाशन, 1997
- मिश्रा, स्मिता, 'रामदरश मिश्र की काव्य-यात्रा', नई दिल्ली, नमन प्रकाशन, 2011
- शांडिल्य, नरेश, 'चमत्कृत नहीं स्पंदित करती हैं: डॉ. रामदरश की ग़ज़लें', 'साहित्य यात्रा', वर्ष 2, अंक 6, जुलाई-सितम्बर, 2015, पृ. 23-26
- शुक्ल, वेद मित्र, 'एक सहज पर अक्षरसफर का सम्मान', 'नेशनल दुनिया', 19 दिसम्बर, 2015, पृष्ठ 10

कक्ष संख्या 144, राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110015

रोमानिया में भारत और भारतीयता का रूमानी संसार

अनीता वर्मा

अनीता वर्मा सुपरिचित लेखिका व बुखारेस्ट (रोमानिया) में हिन्दी अध्यापिका हैं। इनकी रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

रोमानिया पूर्वी यूरोप का ऐसा देश, जो यूरोपियन यूनियन के झंडे तले जहाँ स्वयं को यूरोप का एक सदस्य देश स्थापित करते हुए संघर्षतरत है, वहीं दूसरी ओर अपने मूल्यों व अपनी जड़ों को मजबूती से पकड़े हुए भी है। जहाँ की पुरानी पीढ़ी आज भी भारत और भारतीयता को सम्मान की दृष्टि से देखती है वहीं नई पीढ़ी का आकर्षण बॉलीवुड, भारतीय परिधानों की तरफ जनून की हद तक। इन सबके बीच कुछ कम्युनिज्म व कुछ भारतीय अर्थव्यवस्था को आँकड़ों की दृष्टि से परखते हुए प्रोफेसर, अर्थशास्त्री व शिक्षाविद्। एक अजीब-सी कशमकश। एक तरफ भारत के प्रति सम्मान तो दूसरी तरफ अपने ही बिखरते मूल्यों व संस्कृति की चिन्ता।

रोमानिया की राजधानी बुखारेस्ट के बुखारेस्ट विश्वविद्यालय में जब पहले दिन हिन्दी विभाग के लाउरेंत्स्यु थैबान से परिचय हुआ तो बहुत उत्साह के साथ मैंने उनहें अपने व भारत के बारे में बताते हुए हिन्दी विभाग और छात्रों के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाही।

प्रोफेसर थैबान, जो कि अब सेवानिवृत्त हो चुके थे, उन्होंने मेरा परिचय हिन्दी विभाग में कार्यरत प्रो. सबीना पोपरलयान से करवाया। दुबली-पतली सी लड़की दिखती महिला ने बताया कि वह यहाँ पर हिन्दी विभाग में पिछले 15 वर्षों से हिन्दी पढ़ा रही हैं और वह भारत के दिल्ली विश्वविद्यालय में भी एक वर्ष हिन्दी पढ़ कर आयी हैं।

दोनों ही प्रोफेसर हालांकि अपने-अपने ढंग से हिन्दी भाषा और हिन्दी पढ़ने वाले छात्रों के लिए प्रयासरत थे पर बातचीत करते समय उनकी स्वयं की उदासीनता व नीरसता मुझे चिन्तित कर रही थी। उन्होंने बताया कि हिन्दी भाषा यहाँ द्वितीय भाषा के रूप में

ईवेंट >>

रोमानिया में भारतीयता के रूमानी रंग

भारतीय संस्कृति की कद्र पूरी दुनिया में किस कदर है, यह हाल ही में रोमानिया में आयोजित एक कार्यक्रम में देखने को मिला। पूर्वी यूरोप के देश रोमानिया की राजधानी बुखारेस्ट की विश्वविख्यात बुखारेस्ट यूनिवर्सिटी में सांस्कृतिक संध्या 'एक शाम भारत के नाम' का आयोजन किया गया। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के सहयोग से हिंदी अध्यापिका अनीता वर्मा व हिंदी पढ़ रहे रोमानियन छात्रों द्वारा इस कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

इस सफल आयोजन में भारतीय गीत, संगीत, साहित्य व परिधानों की मंच पर सफल प्रस्तुति की गयी। विदेशी छात्रों की हिंदी कविताओं, गीतों, नृत्य व भारतीय फैशन शो की प्रस्तुति ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। कार्यक्रम के प्रमुख अतिथियों ने इस कार्यक्रम की प्रशंसा करते हुए कहा कि इस प्रकार के आयोजन दोनों देशों के बीच पुल का काम करते हुए छात्र-शिक्षक प्रक्रिया को आसान बनाते हैं।

पढ़ाई जाती है पर साथ ही यह भी बता दिया कि छात्रों की कमी की वजह से बीच में कई बार हिन्दी विभाग को बन्द भी किया गया। जो छात्र प्रवेश लेते भी हैं उनमें से बहुत सारे कक्षाओं में नहीं आते क्योंकि अधिकतर छात्र कहीं-न-कहीं काम करते हैं। बहरहाल मुझे पहले ही दिन समझ आ गया कि यहाँ पर भी भारत की तरह हिन्दी संघर्षरत है और साथ ही कि यहाँ पर मुझे अकेले ही लड़ना है और लड़ाई बहुत मुश्किल है।

विश्वविद्यालय के छात्रों से लगभग एक सप्ताह बाद मिलना हुआ। द्वितीय वर्ष व तृतीय वर्ष के कुल मिलाकर लगभग सोलह छात्र। हालांकि आधिकारिक तौर पर संख्या बीस थी। यह पहले दिन की उपस्थिति थी जबकि प्रथम वर्ष में कोई भी छात्र नहीं क्योंकि उस वर्ष प्रथम वर्ष में कोई भी प्रवेश नहीं हुआ था। चिन्तातुर-सी जब विश्वविद्यालय से निकली तो समझ आया कि लड़ाई अभी इस स्तर पर ही नहीं है, बल्कि अभी और भी कई मोर्चों पर लड़ना है।

कड़ाके की सर्दी। पारा 17 डिग्री से भी कभी-कभी कम। सड़कों पर कई-कई फुट जमी हुई बर्फ और उस पर यह कि विश्वविद्यालय घर से दूर। जाना-आना लगभग दूभर। घर की स्थिति यह कि दसवीं मंजिल पर (सबसे ऊपर की मंजिल) पचास साल पुराना घर। और जब रात को तेज आवाजें जोर-जोर से चलती तो लगता कि भूतहा घर में डरावनी फिल्मों की सायं-सायं की बैकग्राउन्ड म्यूजिक चल रहा है।

पर इन सबके बीच बहुत कुछ सुखद भी। जब सुबह उठकर घर के अन्दर से दसवीं मंजिल से दूर-दूर तक बर्फ की सफेद चादर देखती तो उसे आँखों में भर लेना चाहती। घर के सामने बहुत बड़ा तिनेरेतुलीपयुई (Tineretuleui) पार्क जो कि एक बड़ा पिकनिक स्पॉट भी, जिसमें एक बहुत बड़ी झील तो बर्फ से जमी हुई और उस पर स्केटिंग करते गिरते-फिसलते बर्फ के गोलों से खेलते बच्चे। लगता कि यही तो जीवन है जो कठिन क्षणों को भी खिलखिलाहट से भर रहा है।

इन सबमें और भी बहुत कुछ धीरे-धीरे जुड़ता चला गया। कक्षा में जाने पर जब छात्र-छात्राओं से परिचय हुआ तो लगा कि यह दुनिया मेरी अपनी है जहाँ मैं इन लोगों के बीच स्वयं को इनसे जोड़ कर नेह का वो बंधन जोड़ सकती हूँ जो मुझे यहाँ की दुनिया से बाँधे रख सकता है। कक्षाएँ जोरो पर शुरू हो गई थीं। धीरे-धीरे नेह के बंधन बँध रहे थे। छात्र तेजी से हिन्दी भाषा सीखने लग गये थे। हम कक्षाओं में अब अक्सर हिन्दी गाने गाते थे। छात्रों की बालीवुड की दीवानगी अब मेरी सहायक बन गयी थी। ''एक दो तीन, चार पाँच छः सात'' माधुरी फेम गाने ने जहाँ उन्हें आसानी से गिनती सिखा दी, वहीं राजकपूर की चिरपरिचित दीवानगी का फायदा उठाते हुए कई गानों के माध्यम से उनके शब्द भण्डार में वृद्धि हुई। ''ऐ भाई, जरा देख के चलो, आगे भी नहीं, पीछे भी नहीं'' जैसे गीतों ने जहाँ उन्हें विपरीत शब्दों की हिन्दी शब्दावली से जोड़ा वहीं दूसरी तरफ रुमानियत से भरे कई गीतों का जब अनुवाद कक्षा में हुआ तो जैसे वातावरण गुनगुनाने लगा। मुझे भी लगने

लगा कि शब्द अब जैसे महक रहे हैं। मैं उन क्षणों को अधिक से अधिक मुट्ठियों में भरने लगी। बर्फ से सर्द हाथों में अब कविताओं व गीतों की तपिश आ रही थी। मौसम अब सुर्ख होने लगा था।

और इसी प्रकार कक्षाओं में अनुवाद करते-कराते कब मौसम बदल गया पता ही नहीं चला। सड़कों के बाहर की बर्फ अब पिघल रही थी और कक्षाओं में भी अब बसन्त आ गया था। अब छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। कक्षा में उनकी उपस्थिति भी एक सुखद अनुभव देने लगी। छात्रों की रुचि हिन्दी कक्षाओं में अब बढ़ चुकी थी।

हालाँकि मुझे एक रास्ता मिल चुका था पर व्यक्तिगत रूप से बहुत सारे कठिन पड़ाव अभी सामने थे। पहली समस्या तो बाजारों में व स्थानीय लोगों से भाषा की थी।

रोमानिया में बहुत कम लोग अंग्रेजी जानते थे। युवा पीढ़ी जहाँ अंग्रेजी के प्रति लालायित थी वहीं बुजुर्ग व मध्यम उम्र के लोग विदेशियों से बात नहीं करते थे और अगर करते भी तो जोर-जोर से रोमानियन भाषा में ही। बाजारों में सामान ढूँढने व रास्ता पूछने में बड़ी कठिनाई थी। टैक्सी हालांकि बहुत महंगी नहीं थी पर ड्राइवर भारत की तरह ही कई लम्बे रास्तों से घुमा-फिरा कर चमका दिये बिना कम पैसों में मंजिल तक पहुँचाता तो समझ आ जाता कि इससे पूर्व हम कितने ठगे गये। पर धीरे-धीरे जब बस व मैट्रो का रूट पता चला तो हल निकल आया। पब्लिक ट्रांसपोर्ट की बात करें तो बसें बड़ी ही आरामदेह और बसों में सिर्फ ड्राईवर व कार्ड मशीन। दिल्ली मैट्रो की तरह बस में चढ़ते ही आप अपना कार्ड पंच करें कितनी भी दूर जायें किराया उतना ही यानि कि डेढ़ लेई (लगभग 24 रुपये)। और इस सबके साथ सड़कों के बीचों-बीच ट्रॉम के रेल ट्रैक। कारों, बसों व लोगों की चलती आवाजाही के बीच सड़कों पर जब ट्राम चलती तो बड़ा ही सुखद व आश्चर्यजनक अनुभव होता।

और यूँ ही जिन्दगी रफ्तार पकड़ने लगी। कब तीन महीने बीत गये पता ही नहीं चला। एक महीने बाद परीक्षाएँ भी शुरू होनी थी। तृतीय वर्ष के छात्रों के जाने का समय आ गया था। मैं चाहती थी कि ये छात्र जाने से पहले किसी ऐसे कार्यक्रम का आयोजन करें जो इनके लिए यादगार अनुभव रहे। और बस कक्षाओं में बैठे-बैठे ही इसकी योजना बन गई। कई कविताओं के अनुवाद होने लगे। वन्दे मातरम् से लेकर राष्ट्रगान तक से उनका परिचय करवाया। वीडियो डाउनलोड किये। शब्दों का उच्चारण ऑडियो व मोबाइल फोनों के माध्यम से सिखाया। यहाँ तक हिन्दी गज़लों व पुराने गीतों के रुमानी संसार ने उन्हें अपने भीतर डुबो दिया। यह सब आसान नहीं था जो छात्र 'राजा' का उच्चारण 'रजा' करे उन्हें राष्ट्र, स्नेह, पितृ, गुण, जैसे शब्दों को सिखाना मुश्किल था। पर फिर भी त, ट, ड, ढ, ड, का उच्चारण कुछ हद तक उन्हें आना शुरू हो गया था।

सब तैयारी जो कि कक्षाओं में ही हुई थी और उसके लिए अलग से कोई भी स्थान विश्वविद्यालय में उपलब्ध नहीं था, की मंच प्रस्तुति के लिये अभ्यास हेतु स्थान चाहिये था। और भी कई समस्याएँ थीं जैसे कि भारतीय परिधान व खाना। पर तय कर लिया कि अपनी सारी साड़ियाँ, सूट व कुछ कपड़े इधर-उधर से इकट्ठे करूँगी। यह भी तय हुआ कि लगभग पचास लोगों के खाने की व्यवस्था भी मुझे ही करनी होगी क्योंकि भारतीय रेस्तरां जो कि संख्या में तीन थे और

बहुत महँगे थे। साथ ही स्वाद की दृष्टि से भी उन्हें पाँच में से दो अंक ही दिये जा सकते थे।

अब एक और विकट समस्या सामने आई। विश्वविद्यालय में कोई भी हॉल उपलब्ध नहीं था। यहाँ तक कि रात के आठ बजे तक (तीन हॉल) में कक्षाएँ चलती थी। पर दो दिन एक हॉल छः बजे से उपलब्ध था। सो तय हुआ कि वहीं पर आयोजन किया जाये और अपनी हिन्दी कक्षा जो कि ईराक के कक्ष में लगती थी, वहीं पर खाने का आयोजन किया जाये।

बहरहाल बहुत बार की हाँ और ना के बीच लटकता आयोजन बहुत सफल रूप से सम्पन्न हुआ। सब तरफ भारतीय परिधान, भारतीय गीत, कविता व नृत्य अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ छा गये। छात्र वन्देमातरम् के स्वरों में तल्लीन हुए पुराने नये फिल्मी गानों व परिधानों को लेकर जब मंच पर आते तो दर्शकगण व मुख्य अतिथि (भारतीय दूतावास के कार्यनियुक्त राजदूत श्री पार्था रे व अन्य अधिकारी व साथ ही विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रैक्टर, डॉ. लिवियो पापादामा) मन्त्रमुग्ध से उन्हें अभिभूत होकर देखते रह जाते।

और फिर भारतीय व्यंजनों की महक और मसालों की खुशबू से अभिभूत तृप्त से लोग जब घर जा रहे थे तो उनके चेहरों की चमक और भारत के

प्रति उनका सम्मान उनके शब्दों में व्यक्त हो रहा था। और मुझे और मेरे पति (जिनके सहयोग से मैं यह सब कर सकी थी) को अपने देश, अपनी संस्कृति पर गर्व हो रहा था।

बहरहाल अब धीरे-धीरे धुँध छँट रही है। कोशिश निरन्तर जारी है पर लगता है कि सफलता जरूर मिलेगी। बस में बैठे लोग जब किसी चर्च के सामने से गुजरती बस में सिर झुका कर अपने सीने पर क्रॉस के निशान बनाते हैं और मन में कोइ प्रार्थना बुदबुदाते हैं तो मुझे अपने देश के उन लोगों की याद आ जाती है जो मन्दिर के सामने से गुजरते हाथ जोड़ते हैं या गुरुद्वारा या मस्जिद दिख जाने पर सर ढक लेते हैं। लगता है कि हरदम सफर में हूँ और सफर अभी जारी है।

हिन्दी अध्यापिका, बुखारेस्ट (रोमानिया)

पर्यटन व संस्कृति का बेजोड़ संगम : उत्तराखण्ड

डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'

सुपरिचित लेखक मूलतः देहरादून निवासी हैं। इनकी रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित।

उत्तराखण्ड अपनी प्राकृतिक सुषमा, धार्मिक सहिष्णुता व आध्यात्मिक ऊर्जा के लिए पूरे विश्व में पहचाना जाता है। देश के सत्ताइसवें राज्य के रूप में उत्तराखण्ड 9 नवम्बर, 2000 को अस्तित्व में आया। 53,483 वर्ग किलोमीटर में फैला यह क्षेत्र 13 जनपदों में बँटा हुआ है। देवभूमि उत्तराखण्ड हिमवंत व शैल-शिखरों का सुरम्य प्रदेश है। यहाँ कुल क्षेत्र का आधे से अधिक क्षेत्र अर्थात् 35,394 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र वन क्षेत्र है। यहाँ के गगन चूमते शैल-शिखर चाँदी-सा चम-चम चमकता ताज पहने हिमालय, नीले आकाश की नीलिमा को अपने में समेटे अनेक सुदंरतम ताल जीवनी ऊर्जा का पग-पग संदेश देती परम पावन नदियाँ, दैवीय सौन्दर्य व दर्शन को अपने में प्रतिध्वनित करते देवतीर्थ व मीलों तक मखमली हरीतिमा का अकूत सौंदर्य समेटे हरे-भरे बुग्याल क्षेत्र नैसर्गिक पुष्प घाटियों जैव सम्पदा का जीवंत प्रमाण देते राष्ट्रीय उद्यान व मोहक हरियाली ओढ़े अध्यात्म दर्शन व तप-साधना के शरण स्थल हरियाले वन कालांतर से ही पूरे विश्व को अपने सौंदर्य दर्शन की प्रतीप्ति व अनुभूति कराने के लिए पलक-पांवड़े बिछाए सैलानियों, साधुओं, दरवेशों, पर्यटकों, तपस्वियों, ऋषि-मुनियों को प्रकृति के विराट सौंदर्य व देवत्व से साक्षात्कार कराने हेतु उत्सुक व लालायित रहा है।

ऐतिहासिक महत्त्व—देवभूमि उत्तराखण्ड के पुराणों में 'केदारखण्ड' के नाम से जाना जाता है। 'स्कंदपुराण' में उल्लेख मिलता है—

''खंडा पंचा हिमालयस्य,
कथिता नेपाल कूर्माचलौ,
केदारोऽथ जलंधरोऽथ,
रुचिर कश्मीर संज्ञोऽन्तिम।''
—(वेदव्यास, स्कंदपुराण)

इस प्रदेश को ब्रह्मावर्त, केदारखण्ड, मानसखण्ड तथा हिमवंत नाम से भी जाता है। लगभग पाँच-दस हजार वर्ष पूर्व आर्यों के राजा त्रित्सु का मध्य हेमवत पर शासन था। उत्तराखण्ड जो बब समेरु के रूप में जाना जाता था, इसी राज्य का हिस्सा था। आर्यों के भारत आने तथा सिंधु नदी के किनारे बसने से पूर्व यहाँ कोल, किरात, भील, खश, दरद, किन्नर, तंगण जैसी प्राचीन जातियाँ इसी क्षेत्र में निवास करती थीं। महाभारत काल में प्रतापी राजा सुबाहु की राजधानी ऋषिकेश मानी गई है। महाराज सुबाहू के पश्चात् तीसरी शताब्दी में यहाँ कुनिंद राज्य तथा इसकी समाप्ति के पश्चात् इस समूचे क्षेत्र पर खश राजाओं का अधिपत्य हो गया। इसके पश्चात् दो सौ वर्षों तक यहाँ कत्यूरी राजाओं की तेरह पीढ़ियों ने राज किया। पंद्रहवी शताब्दी के पश्चात् पँवार महाराजा अजयपाल ने अन्य छोटे रजवाड़ों पर विजय प्राप्त कर इस राज्य का विस्तार किया। अनेक गढ़ (52 गढ़) होने के 1510-1515 के बीच इस राज्य का नाम 'गढ़वाल' पड़ा। पँवार राजाओं के शासन के पश्चात् यहाँ गोरखा राजाओं तथा अंग्रेजों ने भी शासन किया।

पुरा काल में उत्तराखण्ड को स्वर्गभूमि, तपोभूमि, मानस केदारखण्ड तथा उत्तरपेध आदि नामों से जाना जाता था। जबकि गढ़वाल के तपोभूमि, देवभूमि, पांचालदेश, ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त तथा बद्रिकाश्रम आदि कई नाम होने के उल्लेख मिलते हैं। लेकिन उत्तराखण्ड शब्द का प्रयोग पहले-पहले 24 जनवरी, 1960 को उत्तर प्रदेश सचिवालय में मिलता है जिसे भारत सरकार ने तदुनंतर मान्यता दी व 9 नवम्बर, 2000 को उत्तराखण्ड प्रदेश देश के 27वें राज्य के रूप में अस्तित्व में आया।

धार्मिक महत्त्व—देवभूमि उत्तराखण्ड अपनी धार्मिक और आध्यात्मिक महत्ता के कारण भी विश्व के अनेक पर्यटकों, साधु-संतों व तीर्थयात्रियों की श्रद्धा का केन्द्र रहा है। यहाँ बदरीनाथ, केदारनाथ, यमुनोत्तरी तथा गंगोत्री जैसे विश्व प्रसिद्ध धाम ही नहीं बल्कि अनेक पौराणिक महत्त्व की गुफाएँ, कुंड व दर्शनीय सिद्धपीठ व तीर्थ मंदिर हैं जो ऋषि-मुनियों की कर्मस्थली व साधना के सलिल रहे हैं। बदरीनाथ के समीप की गणेश गुफा व व्यास गुफा को वेदों, पुराणों व महाभारत की रचना स्थली होने का गौरव प्राप्त है। कहा जाता है कि व्यास जी ने अपने प्रिय शिष्यों में पैल को ऋग्वेद, मन्यु को अथर्ववेद तथा वैशंपायन को यजुर्वेद की दीक्षा इन्हीं स्थलों पर दी थी। मरीची ऋषि के पुत्र कश्यप ऋषि की तपोभूमि बदरीनाथ के गंधमादन पर्वत पर ही थी, यही नहीं दुर्वासा ऋषि का आश्रम उत्तरकाशी, पतंजलि मुनि का आश्रम ब्रह्मपुरी (ऋषिकेश), भृगु मुनि का आश्रम केदारकांठा के निकट, महर्षि पराशर की कुटी यमुनोत्तरी

तथा कोटद्वार के निकट कण्व ऋषि का आश्रम, तथा प्रसिद्ध वैदिक ऋषि अत्रि का आश्रम गोपेश्वर मंडल से ऊपर सघन वन में होने के प्रमाण आज भी उपलब्ध हैं।

पंच बदरी—चर्चित पंच बदरियों में—अलकनंदा नदी के तट पर स्थित पहला विशाल बदरी, कर्णप्रयाग से 19 किलोमीटर की दूरी पर स्थित दूसरा आदिबदरी, पांडुकेश्वर नामक तीर्थ पर स्थित तीसरा योगध्यान बदरी जोशीमठ से 25 किलोमीटर दूर सुअई गाँव में स्थित, भविष्य बदरी तथा जोशीमठ से 8 किलोमीटर की दूरी पर अणिमठ नामक स्थान पर सबसे प्राचीन मंदिर वृद्धबदरी पाँचवे बदरी के रूप में प्रख्यात है।

पंच प्रयाग—इसी प्रकार अलकनंदा एवं भागीरथी के पावन संगम पर अवस्थित देवप्रयाग, मंदाकिनी तथा अलकनंदा के संगम पर नंदप्रयाग, अलकनंदा व पतित पावनी मंदाकिनी के संगम पर स्थित रुद्रप्रयाग, पिंडर तथा अलकनंदा के संगम पर स्थित कर्णप्रयाग तथा विष्णुगंगा तथा धौली नदी के संगम पर स्थित विष्णुप्रयाग प्रमुख पंच प्रयाग हैं जो धर्म व अध्यात्म की दृष्टि से अपना अलग महत्त्व रखते हैं। यद्यपि पुरा काल में चतुर्दश प्रयागों के अस्तित्व में होने के प्रमाण मिलते हैं।

पंच केदार—धार्मिक आस्था व आध्यात्मिक ऊर्जा प्रदान करने में पंच केदारों का अपना विशेष महत्त्व है। प्रथम केदार के रूप में विश्व प्रसिद्ध केदारनाथ धाम है जहाँ भगवान शिव के पृष्ठ भाग की पूजा होती है। यह देश के बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है। यह 3581 मीटर की ऊँचाई पर, विशाल ग्रेनाइट के शिलाखण्डों से निर्मित, परम पावनी मंदाकिनी के तट पर स्थित है। यह रुद्रप्रयाग जनपद में है। द्वितीय केदार भी रुद्रप्रयाग जनपद के गुप्तकाशी कस्बे से 32 किलोमीटर ऊपर 3298 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है, इसे मदमहेश्वर मंदिर के रूप में जाना जाता है। इसमें भगवान शिव की नाभि की पूजा होती है। तृतीय केदार 2134 मीटर की ऊँचाई पर चमोली जनपद के उर्गम गाँव में कल्पेश्वर धाम के रूप में स्थित है। यहाँ भगवान शिव की जटाओं की पूजा अर्चना की जाती है। चतुर्थ केदार के रूप

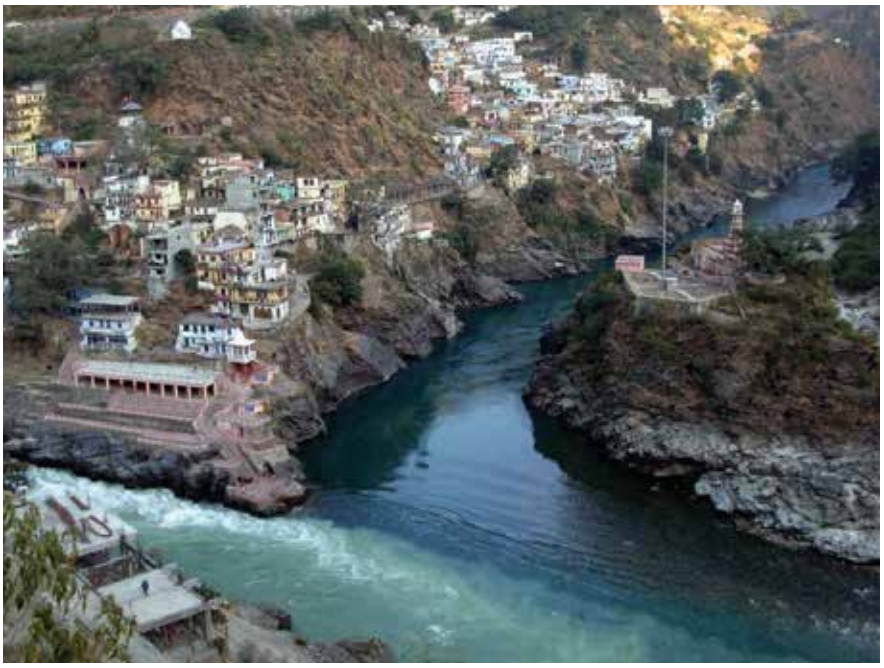

में रुद्रनाथ तीर्थ चमोली जनपद के गोपेश्वर कस्बे से 22 किलोमीटर दूर 2286 मीटर की ऊँचाई पर हिमाच्छादित शैलमालाओं व रमणीय उपत्यकाओं के मध्य स्थित है। यहाँ भगवान शिव के शैव रूप यानि मुख की पूजा की जाती है। पंचम केदार के रूप में तुंगनाथ तीर्थ रुद्रप्रयाग जनपद के चोपता चट्टी से साढ़े तीन किलोमीटर की पैदल यात्रा कर 3750 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ भगवान शिव की भुजाओं की पूजा-अर्चना की जाती है। यह मंदिर उत्तराखण्ड में सर्वाधिक ऊँचाई पर स्थित देव मंदिर है।

उत्तराखण्ड कुमाऊँ तथा गढ़वाल दो क्षेत्रों में बँटा हुआ है। गढ़वाल क्षेत्र के अन्तर्गत 7 जनपद अर्थात् हरिद्वार, देहरादून, चमोली, रुद्रप्रयाग, पौड़ी, टिहरी तथा उत्तरकाशी आते हैं। कुमाऊँ क्षेत्र के अंतर्गत अल्मोड़ा, बागेश्वर, चंपावत, पिथौरागढ़, नैनीताल तथा ऊधमसिंह नगर छः जनपद आते हैं।

गढ़वाल क्षेत्र के अन्य भी कई प्रमुख तीर्थ एवं दर्शनीय स्थल हैं जो चार धामों के अलावा श्रद्धा भक्ति व पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। बदरीनाथ क्षेत्र के प्रमुख तीर्थ व धर्मस्थलों में तत्पकुंड, पंचशिला, स्वर्गारोहिणी, गणेश गुफा, व्यास गुफा, हनुमान चट्टी, वसुधारा तीर्थ, पांडुकेश्वर, गरुड़ गंगा, द्रोणागिरि पर्वत, नागनाथ, वासुकिनाथ, वंशी नारायण आदि प्रमुख हैं जबकि केदारनाथ क्षेत्र के दर्शनीय स्थलों तथा तीर्थ मंदिरों में भीमशिला, हंसकुंड, रूपकुंड, वासुकि ताल, अमृत कुंड, पंचगंगा, कल्पनाथ, गौरीकुंड, कालीमठ, कार्तिक स्वामी, बसुकेदार, अगस्त्य मुनि, त्रियुगीनारायण आदि प्रमुख हैं। यही नहीं देवभूमि में अनेक चर्चित शिव मंदिर हैं जो अपनी आध्यात्मिक शक्ति एवं महिमा के लिए जगत प्रसिद्ध हैं। कुछ प्रमुख मंदिरों (शिव) में नीलकंठ, टपकेश्वर, कमलेश्वर, बूढ़ा केदार, विनसर, जागेश्वर, पाताल भुवनेश्वर, सोमेश्वर, वैजनाथ तथा हर की पौड़ी, मनसा देवी, चंडी देवी, भारत माता मंदिर, स्वर्गाश्रम, राम आश्रम, (झूला), दक्ष प्रजापति मंदिर, कालिका मंदिर, चंडिका मंदिर, वैजनाथ, नंदा देवी मंदिर एवं नैना देवी मंदिर आदि पर्यटन के प्रमुख केन्द्र के साथ-साथ श्रद्धा व भक्ति के प्रवेश द्वार भी हैं। प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में विदेशी पर्यटकों का यहाँ आना अपने इसी दिव्य व दैवीय स्वरूप को रेखांकित करता है।

सांस्कृतिक महत्त्व—किसी भी राष्ट्र व जाति या प्रदेश का मूल्यांकन उसकी सांस्कृतिक विरासत से किया जाता है। हिमालयी तथा भक्ति अध्यात्म आदि के स्रोत होने के कारण देवभूमि उत्तराखण्ड समूचे भारत के लिए ही नहीं अपितु समूचे विश्व

के पर्यटकों, चिंतकों, प्रकृति प्रेमियों, भक्तों, धर्मावलम्बियों, साधुओं, साधकों, फकीरों, दार्शनिकों व सत्य के अन्वेशियों की आस्था, जिज्ञासा व ज्ञान क्षुधा को शांत करने का अद्भुत स्रोत रहा है। उत्तराखण्ड की संस्कृति में समरसता की उदात्तता के दर्शन यत्र-तत्र होते हैं। देव अराधना के सृजन व साधना की अनुपम स्थली देवभूमि उत्तराखण्ड की वसुंधरा भौतिक रूप से महज उत्तराखण्ड की होते हुए भी धार्मिक, अध्यात्मिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक व दार्शनिक रूप से हर उस जिज्ञासु, अन्वेशी भक्त, साधक व प्रशिक्षणार्थी की है जो इस भूमि में आस्था का कमंडल व जिज्ञासा की धूनी रमाए अध्यात्मिक दिव्यता के अनुसंधान में समर्पित हैं। यहाँ के पौराणिक तीर्थ-मंदिर भारतीय संस्कृति के तप, त्याग, अहिंसा, श्रद्धा, भक्ति, पवित्रता व पारस्परिक सौहार्द के उत्कृष्ट प्रतीक हैं। पुरातन संस्कृति व 'वसुधैव कुटुंबकम्' की छाप यहाँ के जीवन मूल्यों व लोक परम्परा में कूट-कूट कर भरी हुई है। यहाँ का विकसित वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला व स्थापत्य के नायाब नमूने किसी भी संवेदनशील हृदय को अपने में आत्मसात करने में स्वयं सिद्ध हैं। श्रीनगर नरेश के दरबार के चर्चित चित्रकार व कवि मौलाराम की बेजोड़ कलाकृतियाँ (टिहरी व श्रीनगर में विद्यमान) कला की पराकाष्ठा का दिग्दर्शन कराती हैं।

उत्तराखण्ड प्रदेश के कुमाऊँ क्षेत्र की प्रमुख बोली-भाषा कुमाऊँनी है लेकिन इस क्षेत्र में अलग-अलग जनपदों तथा लघु क्षेत्रों में असकोटी, सौराली, सौर्याली, कुमप्याँ, गंगोली, दनपुरिया, चौगर्खिया, खसयर्जिया, पधंई तथा रौ-चौभेंसी आदि उप-बोलियों का भी प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार देवभूमि के दूसरे प्रमुख क्षेत्र गढ़वाल की मुख्य बोली (भाषा) गढ़वाली है लेकिन इसके अलग-अलग अंचलों व क्षेत्रों में श्रीनगरी, नागपुरिया, दसौल्या, राठी, लोहप्या, बधनी, सलाणी, मझकुमैप्या तथा गंगपारिया आदि उप-बोलियों का प्रयोग प्रचलन में है। इन दो बोलियों के अतिरिक्त यहाँ लोक संस्कृति के अनेक रंग लिए जौनसारी बोली भी जौनसार क्षेत्र में बोली जाती है। यही नहीं उत्तराखण्ड के वन क्षेत्रों में फैले गुर्जर (पशुपालक व पशुचारक) समुदायों की लोक संस्कृति भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती है।

देवभूमि उत्तराखण्ड की स्वर्गधरा उत्सव व तीज-त्योहारों की धरती है। कृषि बहुल क्षेत्र होने के नाते यहाँ के अधिसंख्य जन (स्त्री-पुरुष) कृषि पर ही निर्भर रहते हैं (यद्यपि अब नौकरी पेशा तथा देवभूमि से महानगरों की ओर पलायन करने वाले लोगों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।) खेती-किसानी व गृहस्थी में व्यस्त रहने के कारण अन्यान्य मनोरंजनों में शरीक न हो पाने की इनकी विववशता रहती है। किन्तु इन्हीं सब स्थितियों को देखते हुए पूर्वजों ने ऋतुपर्वों पर मेलों के रूप में उत्सव व समारोहों का आयोजन करने की प्रथा प्रारम्भ की होगी। यहाँ भारतवर्ष के अन्य मेलों की तरह होली, दीवाली, दशहरा, बैशाखी तो मनाए ही जाते हैं लेकिन इनमें लोकरंग की उपस्थिति से उत्सव की गरिमा दूसरे प्रदेशों की तुलना में कई गुना बढ़ जाती है। होली के दिनों में स्कूली बच्चों का होली से 10-15 दिन पूर्व से ही गाँव की अलग-अलग सीमाओं पर हर्षोललास के हुड़दंग में रंग डालना व आते-जाते बटाइयों से अबीर-गुलाल लगा पैसे माँगना, पैसा एकत्र कर होलिका दहन में नाचना-गाना व समूचे गाँव में अंतिम दिन म्यांठणक (आटा, दाल, चावल, सब्जी, मसाले, लकड़ी आदि की सामूहिक उघाई) कर सामूहिक भोज का आयोजन कर प्राप्त पैसों के उपहार बाँटना प्रमुख है। दीवाली में गाँव के पुरुष महिलाओं का मिलकर बर्त (धान के सूखे पुआल से बनी लंबी मोटी व लम्बी रस्सी) की प्रतियोगिता का आयोजन जी-भर भैलू (चीड़ की ज्वलनशील लकड़ी की लंबी मोटी तीलियों को बाँधकर जलाना व घुमाकर आपस में कलाबाजी से लड़ाना), खेलना झुमैला (सामूहिक नृत्य) खेलना व नाचना-गाना प्रमुख हैं। बसंत पंचमी, मकर संक्रांति, सावन व भादों का व्रत एत्वार्या (इतवार वाले व्रत) व्रत वासंती ऋतु के स्वागत में खेत-खलिहानों व जंगलों से तोड़कर लाए जै फ्योली पैंप्या म्वौऊ (खुबानी की किस्म) व बुरांश के रंग-बिरंगे फूलों की कुरुंजी (बांस की छोटी उलिया) भर-भर अति उत्साह के साथ गाँव के स्कूली बच्चों का गा-गाकर सूर्योदय से बहुत पूर्व सभी की देहरियों छितरना, मेले-त्योहारों में अपनी सगी सहेलियों को मिलने दूर-दूर जाना, गाँव के लम्बे चौड़े चौकों में भावनाओं के उत्कर्ष को दर्शाते झुमैलो (सामूहिक गीत-नृत्य) गा-गाकर, खुदेड़ गीतों की धुन पर नाच-नाच कर सबकी आँखें डबडबा व कंठ भर आना, नगराजा, नारसिंह जाप्य, बगड्वाल पनौं (पाँडव नृत्य), सिद्धवा आदि स्थानीय व ग्राम देवताओं की पूजा-अर्चना, ऊँची-ऊँची रमणीय उपत्यकाओं में अपने जीवन की पीड़ा के दुःख-दर्द के आशु महाकाव्य बो-बो कर आँसुओं से धरती का आँचल भिगोती आशु कवयित्रियों (घसेरियों) के मोहिनी संगीत से निस्तब्ध वन घाटियों का गुंजायमान होना निश्चित रूप से उत्तराखण्ड की लोक माटी की महानतम, अपूर्व व धनी सांस्कृतिक विरासत को प्रतिध्वनित करता है।

देवभूमि उत्तराखण्ड गीत, संगीत तथा लोकगीतों की उर्वर धरती है। प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य के बीच नैसर्गिक तरीके से उफनाते संगीत की निर्झरणियों का संग जब मानव हृदय से होता है तो आनंद की पराकाष्ठा के रूप में लोकनृत्य का उद्भव (जन्म) होता है। देवभूमि गढ़वाल के लोकनृत्यों में थड़्या, चौफला, झुमैलो, नाग, सिंधवा, ग्वरील, छपेली, झोड़ा, गमरा, तुलखेल, अड़ा आदि नृत्य यहाँ की सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध करते हैं। प्रमुख लोकवाद्यों में ढोल, दमाऊँ, मशकबाजा, रणसिंहा, भंकोरा, तुरही, चिमटा, डौरी, तखुली, हुड़की, धैसी आदि प्रमुख हैं। वाद्य यंत्रों में 'ढोल सांगर' का अपना सांस्कृतिक व अद्भुत ऐतिहासिक महत्त्व है। यहाँ के प्रिय भोज्य पदार्थों में दाल-भात, कोदा, झिंगोरा, बाड़ी, गहत, भट्ट, तोर-छेमा, माल्टा, संतरा, नारंगी, कागजी, काफल, तिमला, खैणा, बेड़ू, च्यू आदि प्रमुख हैं। यहाँ शिक्षा के लिए अनेक विश्वविद्यालय, वैज्ञानिक व तकनीकी संस्थान हैं। यहाँ का जनजीवन सरस, शांत, उद्यमशील व आदर्श परम्पराओं से ओत-प्रोत है। निश्चित रूप से धरती के स्वर्ग उत्तराखण्ड का विश्व में अपना बेजोड़ सांस्कृतिक महत्त्व है।

157, गढ़ विहार, फेस-1, मोहकमपुर,
देहरादून-248005 (उत्तराखण्ड)

ऐतिहासिक और दर्शनीय स्थल के संदर्भ में अजमेर का सांस्कृतिक महत्त्व

उर्मिला शर्मा

उर्मिला शर्मा इतिहास एवं हिन्दी साहित्य में स्नातकोत्तर, देश की विभिन्न हिन्दी पत्रिकाओं में सांस्कृतिक, शैक्षिक लेखों का प्रकाशन। इतिहास और शिक्षा पर दो पुस्तकें प्रकाशनाधीन। हिन्दी शिक्षण की कई राष्ट्रीय संगोष्ठियों में शोध पत्रों की प्रस्तुति।

भारत के सबसे विशाल प्रान्त राजस्थान के हृदय प्रदेश के रूप में चर्चित 'अजमेर' देश का एक ऐसा नगर है जहाँ सदियों से हिन्दू-मुस्लिम धर्म की समन्वित संस्कृति के दर्शन होते हैं। यह नगर अपने अतीत से ही सुन्दर समन्वयी विविध संस्कृति और गौरवशाली इतिहास के कारण विख्यात रहा है। विश्व की सबसे प्राचीन अरावली पर्वतमाला की गोद में बसा अजमेर इसी पर्वतमाला से प्रवाहित होती शीतल जलधाराओं से अभिसिंचित होकर पर्यटकों के मन को हरा-भरा बना देता है।

अनेकानेक तालाबों और पोखरों से प्राकृतिक रूप से सजी सँवरी यहाँ की प्रसिद्ध आनासागर झील पर जब इस नगर के प्रकाश की किरणें रात्रि को पड़कर झिलमिलाती हैं तब देशी-विदेशी पर्यटक इस नगर के सौन्दर्य को अपने कैमरों में कैद करने के लिए रात्रि में दौड़ते नजर आते हैं।

चन्द्रमा की ज्योत्स्ना में नहाई आनासागर की श्वेत छतरियों की झिलमिलाती आकृतियाँ यहाँ के मध्ययुगीन शासकों के युग की कलाप्रियता की कहानियाँ कहती है। अजमेर की यह आनासागर झील उत्तरी भारत की एकमात्र ऐसी सुन्दर और मनोरम झील है जिसके दर्शन कर इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध राजदूत सर टामस रो सहित लार्ड विलियम बैंटिग और इंग्लैण्ड की रानी मेरी ने अपने जीवन को धन्य माना था। अजमेर भारत देश का वह इतिहास प्रसिद्ध स्थल है जहाँ के अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने साम्राज्ञी संयोगिता से परिणय कर उसे इसी स्थल पर लाकर पवित्र प्रणयालाप किया था। भारतीय चौहान सम्राट विग्रहराज के नाटक हरिकेलि, महाकवि चन्दबरदायी की शौर्य कविताएँ, महाराणा कुम्भा की पदचापें और वीर योद्धा दुर्गादास राठौड़ के अश्वों की टापें आज भी इस नगर की सुदीर्घ वादियों में गूँजती हैं।

मुहम्मद गौरी, शेरशाह सूरी, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और आलमगीर औरंगजेब जैसे शहंशाहों से लेकन कर्नल जेम्स टाड जैसे इतिहासकार की स्वागत और आश्रय स्थली रहे अजमेर नगर ने भारत देश को भारतीय आर्य समाज के प्रतापी प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसे महान क्रान्तिकारी संत की अलौकिक सुगन्ध भी प्रदान की है।

पुरातात्विक, धार्मिक और पार्यटनिक स्थापत्य तथा गौरव गरिमा की दृष्टि से अजमेर एशिया के उन प्रमुख नगरों में से एक है जहाँ महान सूफी दरवेश ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती की विशाल दरगाह से हिन्दू-मुस्लिम एकता की विराट धारा विश्व भर में निरन्तर प्रवाहित होती है। ब्रिटिश युगीन भारतीय रजवाड़ों के राजकुमारों की शिक्षा का एकमात्र विद्यालय 'मेयो कॉलेज' भी इसी नगर में है, जो आज भी अपनी विशिष्टता तथा शैक्षिक स्तर के अनेक विदेशी पर्यटकों तथा विद्यार्थियों के आकर्षण का खासा केन्द्र है।

अजमेर नगर की सांस्कृतिक विरासत,रंग-बिरंगी परम्पराएँ, मनोहारी सैरगाह और हरी-भरी पहाड़ियों की विस्तृत श्रृंखला से निकलती शीतल जल की धाराएँ आदि सब कुछ मिलकर इस नगर में रंग भर देती है। मेहमाननवाजी के लिए अजमेर का शुद्ध देसी घी और आटे से बना 'सोहन हलवा' विदेशी पर्यटकों के मुख में ऐसी मिठास भर देता है जिसकी सुगन्ध और जायके से खींचकर सात समन्दर पार से वे इसे बार-बार मँगाते हैं। इस दृष्टि से यहाँ का पार्यटनिक और ऐतिहासिक महत्त्व कदापि नकारा नहीं जा सकता है।

राजस्थान के प्रथम साक्षर जिले के रूप में चर्चित अजमेर नगर 55.76 वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में बसा हुआ है। $26^0.27'$ उत्तरी अक्षांश एवं $74^0.37'$ पूर्वी देशान्तर पर स्थित यह नगर रेल मार्ग द्वारा दिल्ली से 378 कि.मी., मुम्बई से 982 कि.मी. तथा आगरा से 378 कि.मी. दूर है। राजस्थान की राजधानी जयपुर से यह नगर 138 कि.मी. दूर है, जो रेल और सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ है। इस नगर में पर्यटकों के ठहरने के लिए विश्वस्तरीय होटल व टैक्सियाँ उपलब्ध हैं। समुद्र तल से 486 मीटर की ऊँचाई पर बसे अजमेर नगर में घूमने का उपयुक्त समय वर्ष में अक्टूबर से मार्च माह तक होता है। अजमेर पहुँचने का सबसे निकटतम हवाई अड्डा जयपुर है।

अजमेर नगर की स्थापना चौहान क्षत्रिय राजा अजयपाल ने 7वीं सदी में की थी। इस स्थान के पर्वतीय (मेरू) क्षेत्र में स्थापित होने से इस नगर का प्राचीन नाम 'अजयमेरू' रहा। मध्ययुग में इसी परम्परा में यहाँ के प्रतापी शासक पृथ्वीराज चौहान हुए। जिनका साम्राज्य विस्तार दिल्ली तक था। इस नगर को भारत के चौहान क्षत्रियों की सबसे पहली राजधानी होने का इतिहास प्रसिद्ध गौरव भी प्राप्त है। बाद में अनेक मुगल सम्राटों ने इस नगर में अपने जीवन के सुन्दर समय को भोगा और राजनीति का केन्द्र बनाया। इस प्रकार ऐसी महत्त्वपूर्ण स्थली होने के कारण यह नगर 'राजपूताना का नाका' समझा जाता था। ब्रिटिश युगीन भारत में अजमेर मेरवाड़ा का क्षेत्र एक 'केन्द्रीय कमिश्नरी प्रान्त' के रूप में चर्चित था। उस सयम यह राजपूताना की समस्त रियासतों का मुख्यालय कहा जाता था। इस कारण ब्रिटिश भारत में इस नगर को 'राजपूताना की कुंजी' कहा जाता था, इस नगर के ऐतिहासिक और दर्शनीय स्थलों का परिचय इस प्रकार है–

तारागढ़ दुर्ग–इस दुर्ग का निर्माण चौहान राजा अजयपाल ने 7वीं सदी में इस नगर की सर्वोच्च पहाड़ी (मेरू) पर करवाया था, जिस कारण इसे 'अजेयमेरू दुर्ग' कहा गया। यह 2 कि.मी. के क्षेत्र में फैला हुआ ऐसा दुर्ग है जिसकी प्राचीरें पहाड़ी के अन्दर की ओर बनायी गयी हैं। इसकी प्राचीरों की चौड़ाई भी 20 फुट से ज्यादा है। इस दुर्ग का निर्माण टेढ़ा होने से यह सुरक्षा की दृष्टि से काफी सुदृढ़ है। इसमें पर्वत को काटकर पानी के प्राचीन टैंक बनाए गए हैं जिसमें प्रचुर मात्रा में जल रहता है। जल की प्रचुरता के कारण यहाँ अनेक कुएँ भी बने हैं जो आक्रमण के दौरान दुर्ग के अन्दर काफी लाभदायक होते थे। इसमें अनेक कुएँ ऐसे हैं जिनमें अन्न व अन्य खाद्य सामग्री का संकट काल में विपुल संग्रह किया जाता था। कुओं की अधिकता के कारण इसे

तारागढ़ दुर्ग (अजमेर)

उत्तरी भारत का 'जिब्राल्टर' भी कहा जाता है। इसे भारत का प्रथम पर्वतीय दुर्ग होने का गौरव भी प्राप्त है।

इस दुर्ग पर 11वीं सदी में मोहम्मद गजनवी ने आक्रमण किया था तथा यहाँ से वह घायल होकर लौटा था। सन् 1192 ई. के आस-पास इस दुर्ग पर पृथ्वीराज चौहान के भाई हरिराज का आधिपत्य हो गया था। 1195 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक ने इस पर अपना आधिपत्य जमाया। इस प्रकार यह दुर्ग लम्बे समय तक दिल्ली और गुजरात के शासकों की राजनीति का केन्द्र बना रहा। सन् 1505 ई. में मेवाड़ के राणा रायमल के कुंवर पृथ्वीराज ने इस दुर्ग पर अपना आधिपत्य जमाया और अपनी पत्नी तारा के नाम पर इसका नाम 'तारागढ़' रख दिया था। कालान्तर में मेवाड़, मारवाड़ से लेकर दिल्ली सल्तनत तक के शासकों ने इस दुर्ग को जीतने के लिए एक-दूसरे से युद्ध किए। अकबर से लेकर दाराशिकोह और औरंगजेब तक ने इस दुर्ग को अपनी केन्द्रीय सत्ता को मजबूत करने के लिए विजित किया था। इस प्रकार सन् 1720 ई. तक यह दुर्ग मुगल बादशाहों के आधिपत्य में रहा। बाद में यह मराठों एवं राठौड़ शासकों के हाथों में हाता हुआ सिन्धियां शासकों की ललचाई दृष्टि का केन्द्र बना।

इस दुर्ग में प्रवेश करने के लगभग 6 मार्ग हैं जो अत्यन्त दुर्गम और संकरे हैं। ये मार्ग शत्रुओं के लिए भुलभुलैया होते थे। इस दुर्ग की सुरक्षा के लिए 14 बुर्जियाँ हैं, जिनके आसपास विकट चट्टानें होने से यहाँ तक पहुँचना शत्रुसेना के लिए आसान नहीं था। दुर्ग में लगभग 11 फीट की ऊँचाई के 30 कलात्मक स्तम्भ यहाँ की स्थापत्य कला के सुन्दर उदाहरण हैं जिन्हें देखकर पर्यटक ठगे से रह जाते हैं। लगभग डेढ़ दशक पूर्व इस दुर्ग के ही निकट की पहाड़ी पर स्थापित की गई सम्राट पृथ्वीराज चौहान की प्रतिमा ने तो मानों तारागढ़ के सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है।

ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह–अजमेर नगर में विश्व भर के मुस्लिमों का मक्का के बाद द्वितीय श्रद्धा स्थल ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह है। ख्वाजा साहब भारत में सूफी परम्परा के महान दरवेश थे। उनका अन्तिम समय इसी नगर में व्यतीत हुआ और यहीं उनकी आरामागह है जिसे दरगाह कहा जाता है। वे 12वीं सदी के अन्त में इस नगर में आये थे और यहीं से पूरे देश में उन्होंने सूफी भक्ति साधना और सहिष्णुता का दिव्य

ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह (अजमेर)

संदेश दिया था। उनके कई चमत्कारी किस्से यहाँ प्रचलित हैं। अजमेर स्थित उनकी विशाल दरगाह संगमरमर से बनी हुई है। इसके ऊपर आकर्षक सुनहरा गुम्बद है। ख्वाजा साहब की मजार पर मखमल की गिलाफ चढ़ी हुई है। इसके चारों ओर चाँदी के कटघरे बने हैं। बस इसी स्थल पर चन्द लम्हें गुजारने की तमन्ना लिये देश-विदेश से जायरीन आते हैं और इन चमत्कारी महान दरवेश से निकटस्थ सम्पर्क स्थापित कर 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की मानवीय कल्पना में स्वयं को भूल जाते हैं। यही वह पवित्र स्थल है जहाँ मनुष्य-मनुष्य के बीच व्याप्त धर्म और जाति के सारे भेद समाप्त हो जाते हैं। यहाँ गुलाब के फूलों, चन्दन और अगरबत्ती एवं लोबान की महक उठती रहती है। ख्वाजा साहब की मजार का गुम्बद सुल्तान ग्यासुद्दीन ने बनवाया था जबकि इस पर नक्काशी का काम सुल्तान महमूद बिन नासिरूद्दीन के समय हुआ था। मजार का द्वारा माण्डू के बादशाह ने एवं कटहरा बादशाह जहाँगीर ने निर्मित करवाया था, इस मजार के द्वार पर अकबर द्वारा भेंट की हुई कलात्मक किवाड़ों की जोड़ी लगी हुई है, जो मध्ययुगीन कला का उत्कृष्ट नमूना है।

दरगाह में ही सुन्दर नक्कारखाना बादशाह शाहजहाँ ने लाल पत्थर से निर्मित करवाया था। इसके ऊपर अकबरी नक्कारें रखे हुए हैं। दरगाह में एक महफिलखाना भी है, जहाँ उर्स के दौरान सूफी कव्वालियाँ होती हैं। इसमें अति सुन्दर झाड़फानूस लगे हैं। इसका निर्माण 122 वर्ष पूर्व हैदराबाद के नवाब बशीरूद्दौला ने करवाया था। यहाँ एक सुन्दर एवं 15 फीट ऊँची लाल पाषाण की मस्जिद भी है जिसे अकबर ने बनवाया था। दरगाह परिसर में अकबर एवं जहाँगीर द्वारा भेंट की गई 2 देग भी हैं जिनमें 80 और 100 मन का उर्स के दौरान शुद्ध देसी घी से बना 'प्रसाद' (तबर्रूख) बनाया जाता है।

प्रतिवर्ष ख्वाजा साहब की दरगाह पर वर्ष की पहली रजब से 9 रजब तक विशाल उर्स मनाया जाता है, जिसमें देश-विदेश के हजारों श्रद्धालु और विविध धर्मों के परिवार भाग लेते हैं। उर्स के दौरान पूरा अजमेर नगर हिन्दू मुस्लिम एकता और मानवता की जीती जागती तस्वीर बन जाता है।

यहाँ ईश्वरीय आराधना करते हुए ख्वाजा साहब ने अपने जीवनकाल में दो पुस्तकें 'अनीसुल अरवाह' एवं 'गंजुल असरार' लिखीं। इनमें उनके उच्च आध्यात्मिक विचारों के दर्शन होते हैं। रहस्यवादी चिन्तन पर इन पुस्तकों को विश्व में उच्च कोटि का माना जाता है। ख्वाजा साहब शायर भी थे। उनकी शायरी का संकलन 'दीवाने-मुईन' नाम से है, जिसमें उनकी 250 शायरी को सम्मिलित किया गया है। उन्होंने अपने जीवन में अनेक सुन्दर उपदेश दिए जिनमें से एक यह भी है कि ''मानव के जीवन में सबसे अनमोल क्षण वे होते हैं जब वह अपनी स्वयं की इच्छाओं पर पूरी तरह काबू पा लेता है।''

आनासागर झील—आनासागर झील भारत के सुन्दरतम पर्यटन स्थलों में से एक है। अजमेर नगर के पर्यटक वैभव के विस्तार का बड़ा श्रेय

आना सागर झील (अजमेर)

इसी झील को जाता है। इसका निर्माण सम्राट पृथ्वीराज चौहान के दादा अर्णोराज चौहान ने सन् 1133 ई. में करवाया था। उन्होंने निकट के पुष्कर तीर्थ की चन्द्रा नदी के जल को यहाँ तक लाकर इस झील को लबालब किया था और इसके चारों ओर विशाल पक्की दीवार का निर्माण करवाया था। इस झील के कारण ही फिर अजमेर नगर का तीव्र विकास संभव हुआ।

इस सुन्दर झील के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर मुगल बादशाहों ने अजमेर को बड़ा महत्त्व दिया। मुगल बादशाह शाहजहाँ तो इस झील के सौन्दर्य पर इतना मुग्ध हुआ था कि उसने सन् 1637 ई. में इसमें चार कलात्मक छतरियाँ एवं एक खामंखा द्वार बनवाकर इसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा दिये थे। उसने इसके किनारे एक आलीशान बाग भी बनवाया था जिसे दौलत बाग (वर्तमान में सुभाष उद्यान) कहा गया। ब्रिटिशकालीन अधिकारी तो इस झील के दीवाने थे। उन्होंने यहाँ सायं व रात्रि में अपना समय आमोद-प्रमोद में व्यतीत किया। आज भी यह झील देशी-विदेशी पर्यटकों के लिये एक सुन्दरतम स्थल है। रात्रि में बिजली के रंग-बिरंगे प्रकाश से इस झील का स्वर्णिम सौन्दर्य दमक उठता है।

सोनीजी की नसियाँ—इस सुन्दर और स्वर्ण रंग से युक्त ऐतिहासिक नसियाँ का निर्माण सन् 1865 ई. में यहाँ के सेठ मूलचन्द नेमीचन्द सेठी ने करवाया था। उन्होंने इसमें जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) की मूर्ति भी स्थापित करवाई थी। इस विशाल नसियाँ के दो भाग हैं। इसमें नसियाँ वाले भाग में जैन धर्म के समस्त विधान एवं जैन तीर्थंकरों की बेशकीमती और इतिहास की दृष्टि से उत्तम मूर्तियाँ हैं। इसके द्वितीय भाग को स्वर्ण हॉल कहा जाता है। इसकी दीवारों और छतों पर शुद्ध स्वर्ण का ऐसा अद्भुत और सुन्दर कार्य है जिसे देखकर विदेशी पर्यटक तथा वास्तुविद् भी चकित रह जाते हैं। इसके लाल मंदिर के निर्माण में 400 किलो स्वर्ण धातु का प्रयोग किया गया था।

सोनीजी की नसियां (अजमेर)

इस हॉल के परिसर में जैन धर्म का 26 मीटर ऊँचा सुन्दर जैन मान स्तम्भ है। इस भवन में जैन पंचकल्याणक, तेरह द्वीप, सुमेरू पर्वत, आदि का निर्माण जीवन्तता से किया गया है। इस भवन का निर्माण दो मंजिला होने पर भी यह चार मंजिला दिखायी देता है। भवन के शीर्ष पर एक विशाल गुम्बद और 8 लघु गुम्बद हैं। इसके चारों ओर कलात्मक छतरियाँ बनी हुई हैं। गुम्बद एवं छतरियों के ऊपर स्थापित स्वर्ण कलश इसकी शोभा में द्विगुणी अभिवृद्धि करते हैं। इस स्वर्ण हॉल पर रात्रि के समय जब बिजली का प्रकाश चारों ओर से पड़ता है तो यह देवराज इन्द्र की स्वर्ण नगरी-सा लगता है।

राजपूताना म्यूजियम—ब्रिटिश सरकार ने सन् 1908 ई. में इस म्यूजियम की स्थापना यहाँ स्थित अकबर के किले में की थी। इसे राजपूताना म्यूजियम का नाम देकर इसका प्रथम अध्यक्ष प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता गौरी शंकर हीराचन्द ओझा को बनाया था। इस म्यूजियम में अजमेर सहित राजस्थान की अनेक रियासतों से प्राप्त दुर्लभ इतिहास सामग्री का सुन्दर प्रदर्शन किया गया है। यह म्यूजियम भारत के चन्द समृद्ध म्यूजियमों में से एक है जहाँ गुप्तकाल से लेकर निरन्तर 12वीं सदी तक की सुन्दर और दुर्लभ मूर्तियों का प्रदर्शन किया गया है। यहाँ कामाँ की वैवाहिक मूर्ति, चतुर्मुखी शिव, लिंगोद्भव शिवलिंग, शिव-पार्वती, सूर्य, त्रिमुखी विष्णु, हरिहर, लक्ष्मीनारायण, सूर्य पुत्र रेवन्त, सप्तमातृका, महिषासुरमर्दिनी, काली, जैन सरस्वती, गणेश, नागकन्या आदि की मूर्तियाँ शिल्प अध्ययन की दृष्टि से भारत में प्रसिद्ध हैं। यहाँ जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ भी बड़ी संख्या में हैं।

यहाँ के शिलालेख कक्ष में सर्वाति प्राचीन लेख वि.सं. 703 का है जो सम्राट शिलादित्य का है। यहाँ बालीग्राम का ईसा से 1400 वर्ष पुराना ब्राह्मी लिपि का शिलालेख मूलतः भारत देश में अब तक का सबसे पुराना शिलालेख माना जाता है। यहाँ 12वीं सदी का एक ऐसा भी शिलालेख है जिसमें विष्णु के दशावतारों का सुन्दर उल्लेख है। इसमें 33वें श्लोक के अन्तर्गत एक रोचक तथ्य यह है कि यहाँ सूर्यदेव को भगवान विष्णु का दायाँ नेत्र बताया है। यहाँ चौथी से पाँचवीं सदी के विभिन्न शासकों के दुर्लभ ताम्रपत्र भी प्रदर्शित हैं। यहाँ प्रदर्शित प्राचीन मुद्राओं में पंचमार्क, इण्डोग्रीक, इण्डोसीसानियन,

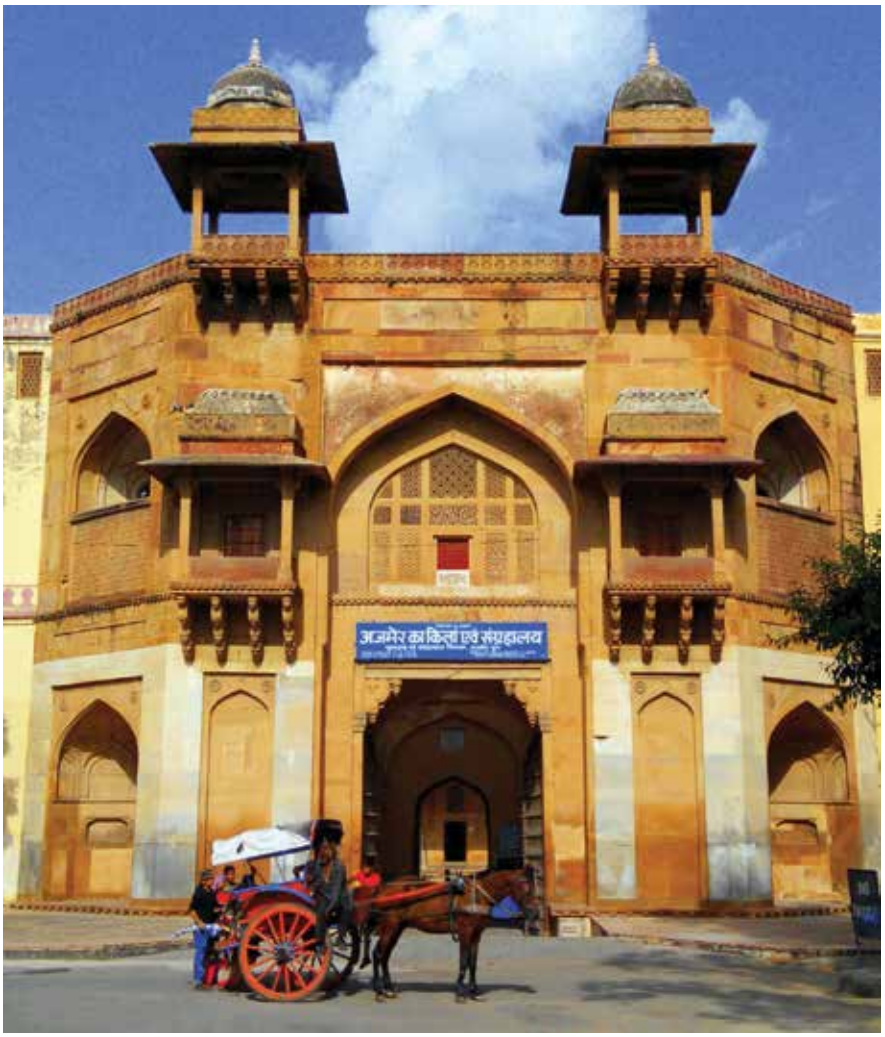

अकबर का किला (राजपूताना म्यूजियम), अजमेर

क्षत्रप, कुषाण और गुप्तकाल की स्वर्ण, रजत व ताम्र की मुद्राएँ देखने योग्य हैं। इनके साथ ही यहाँ मुगलों व पठान शासकों की मुद्राएँ भी प्रदर्शित हैं। यहाँ के चित्र-कक्ष में ऐसे दुर्लभ, प्राचीन और हस्तनिर्मित चित्र हैं जो देश के चन्द म्यूजियमों में ही होंगे। इनमें अकबर के नवरत्न बीरबल, बादशाह फर्रूखसीयर सहित अनेक भारतीय राजाओं के चित्र प्रमुख हैं। यहाँ की अस्त्र-शस्त्र दीर्घा में धनुष, तीर, तीरों की नोकें, भाले, तलवारें, ढाल, फरसा, कटार आदि हैं। एक अलग खण्ड में यहाँ 500 से अधिक पुरा सामग्री का प्रदर्शन किया गया है, जिसमें मोहनजोदड़ो से प्राप्त कई पुरा सामग्री भी है। यह म्यूजियम अकबर के किले में स्थित है। इसका निर्माण अकबर ने सन् 1570 ई. में करवाया था। इस किले के मुख्य द्वार का निर्माण बादशाह जहाँगीर ने करवाया था। वह प्रतिदिन इस द्वार के झरोखे में बैठकर आम जनता को दर्शन देता था और यहीं से न्याय करता था। इसी झरोखे से उसने 10 जनवरी सन् 1616 ई. को इंग्लैण्ड के सम्राट जेम्स प्रथम के राजदूत सर टॉमस रो को भारत देश में प्रथम बार व्यापार करने का फरमान (व्यापार प्रत्यय पत्र) जारी किया था। इस द्वार के शीर्ष पर स्थित दो सुन्दर कलात्मक छतरियों से अजमेर नगर का विहंगम दृश्य देखकर पर्यटक मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।

ढाई दिन का झौंपड़ा—यह मूलतः 12वीं सदी का प्राचीन विष्णु मंदिर था जिसे यहाँ के चौहान शासक बीसलदेव ने सन् 1153 ई. में कलात्मक रूप से निर्मित करवाया था। उसने इस मंदिर के साथ यहाँ 'सरस्वती कण्ठाभरण महाविद्यालय' बनवाकर इसके आसपास विशाल आयताकार बरामदे बनवाये थे। यह मंदिर तथा भवन उस युग में अपनी स्थापत्य कला एवं साहित्य साधना के कारण देश भर में विख्यात था। सन् 1192 ई. में मोहम्मद गौरी ने अजमेर पर आक्रमण किया। इस स्थान को पूर्णतया नष्ट करके यहाँ मात्र

अढ़ाई दिन का झौपड़ा (अजमेर)

मेयो कॉलेज (अजमेर)

ढाई दिन में एक मस्जिद का निर्माण करवा दिया था तभी से इसे 'ढाई दिन का झोंपड़ा' कहा जाने लगा। पुरातत्ववेत्ता कनिघम ने इस स्थान का सर्वेक्षण कर यहाँ हिन्दू स्थापत्य की अनेक सामग्री ढूँढ निकाली थी। यहाँ से प्राप्त पुरा सामग्री में अनेक देवी-देवताओं के साथ विविध नक्षत्रों, महीनों की सुन्दर मूर्तियाँ अब राजपूताना म्यूजियम में प्रदर्शित हैं।

मेयो कॉलेज—भारत देश का 'ईटन' कहे जाने वाले इस कॉलेज की स्थापना इस नगर में ब्रिटिश वायसराय गवर्नर जनरल लार्ड मेयो ने की थी। इस योजना का मुख्य सूत्रधार प्रसिद्ध ब्रिटिश दार्शनिक कर्नल वॉल्टर ने तब कहा था—''भारतीय युवा पीढ़ी, विशेषकर राजाओं के राजपुत्रों में, परिवर्तित होते वैश्विक परिवेश के अनुरूप भावनाएँ जाग्रत करने तथा उन्हें एक श्रेष्ठ व्यक्ति बनाने के लिए इस देश में 'ईटन' जैसी संस्था की आवश्यकता है, जो 'मेयो कॉलेज' के रूप में हमारे समक्ष है।'' इस कॉलेज में भारतीय रजवाड़ों के राजकुमारों को दक्ष प्राध्यापकों द्वारा हर प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। ब्रिटिश युगीन भारत में अजमेर के इस कॉलेज से प्रिन्स ऑफ वेल्स (किंग एडवर्ड सप्तम) इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने इसे 'पूर्व का ईटन' की संज्ञा दी थी।

मेयो कॉलेज का संग्रहालय दुनिया की शिक्षण संस्थाओं में बड़ा अद्‌भुत है। इस संग्रहालय में भारतीय और मिस्र की संस्कृति के प्राचीन अवशेषों को प्लास्टर ऑफ पेरिस की अनुकृतियों से जीवन्त रूप में सजाया गया है। यहाँ छठी सदी ईस्वी से 12वीं सदी के मध्य के भारतीय पुरा अवशेष देखने लायक हैं। यहाँ 17वीं, 18वीं सदी की हस्तनिर्मित पेंटिंग्स, फोटोग्राफ, भारत के विभिन्न कालखण्डों के सिक्के, विभिन्न पक्षियों के अण्डे, काष्ठ जीवाश्म, खनिज पदार्थ, विभिन्न पोशाकों के साथ कई प्रकार की वनस्पतियों के नमूने संग्रहित हैं, जिन्हें देखकर पर्यटक और शोधार्थी अपने आपको निजी अद्‌भुत संसार में खोया हुआ पाता है।

फायसागर झील—तारागढ़ दुर्ग के पश्चिम दिशा की अरावली पर्वतमाला की गहरी घाटी में अत्यन्त शीतल और मीठे पानी का प्राकृतिक झरना प्रवाहित होता है। जहाँ बैठकर पर्यटक स्वर्गिक आनन्द उठाता है। इस कारण इसे 'हैप्पी वेली' कहा जाता है। इस घाटी के प्रवेश पर बादशाह जहाँगीर ने अपनी बेगम अनिंद्य सुन्दरी नूरजहाँ के लिए एक खूबसूरत नूरमहल बनवाया था। हरी-भरी पर्वत श्रृंखला और सघन वृक्षावली के मध्य यह स्थल पर्यटकों को असीम आनन्द की अनुभूति करवाता है।

ऐतिहासिक तौर पर अजमेर नगर वह स्थल है जहाँ बादशाह शाहजहाँ के सबसे बड़े पुत्र दाराशिकोह का जन्म हुआ था। बादशाह अकबर भी अपने पुत्र सलीम की पैदाईशी इच्छा की मन्नत करने कई बार दिल्ली से अजमेर नगर स्थित ख्वाजा साहब ही दरगाह में आया था। इस नगर के निकट स्थित 'दौराई' उस इतिहास प्रसिद्ध स्थल के रूप में जाना जाता है जहाँ बादशाह शाहजहाँ के पुत्रों के बीच दिल्ली की सत्ता का संघर्ष आरम्भ हुआ था। इसी के कारण फिर सन् 1659 ई. को इसी स्थान पर औरंगजेब ने अपने ही भाई दाराशिकोह को परास्त कर दिल्ली का सिंहासन अपने नाम कर लिया था।

अजमेर समूचे राजस्थान में माध्यमिक शिक्षा की परीक्षा कराने वाला तथा राज्य स्तरीय प्रशासनिक अधिकारियों के साक्षात्कार लेकर उनके चयन करने वाला ऐसा नगर है, जहाँ भारत में सबसे पहले रेल के इंजन बनाए जाते थे। इस नगर क्षेत्र में विक्टोरिया टॉवर, सालारगाजी, बड़ापीर, अजयपाल, बीसलसर, नूरचश्मा, पृथ्वीराज चौहान की आराध्या चावण्डा माता, कोटेश्वर महादेव, बापूगढ़, बजरंगगढ़ आदि ऐसे स्थल हैं जो अपने आप में इतिहास, पर्यटन तथा प्रकृति की रमणीयता लिए हुए हैं। अतः जो भी पर्यटक एक बार यहाँ आता है वह यहाँ की रंग-बिरंगी संस्कृति और पर्यटन स्थलों में रमकर वापस आने का वायदा करके ही जाता है।

व्याख्याता—इतिहास, सेन्ट्रल एकेडमी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, कोटड़ा, अजमेर-305004 (राजस्थान)

विद्यापति की परिचयात्मक काव्य-यात्रा

सीताराम पाण्डेय

साहित्याचार्य, एम.ए. (संस्कृत), अवकाश प्राप्त अध्यापक, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड। कवि, कथाकार, समालोचक।

ललित लवंग लत परिशीलन,
कोमल मलय समीरे,
मधुकर निकर करम्बित कोकिल
कूजत कुंज कुटीरे।। (जयदेव)

साहित्य के समृद्ध लेखकीय परिदृश्य में बिहार के मिथिलांचल (बंगाल का भी कुछ भू-भाग शामिल) की सिक्त भूमि पर विद्यापति के पूर्व संस्कृत भाषा के उद्भट विद्वान एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार 'जयदेव' अपनी साहित्यिक रचनात्मक आलोक से विश्व के व्योम को विभाषित कर चुके हैं। उनका गीति-काव्य और भाषा की मधुरता दोनों ही अद्वितीय हैं। उन्होंने राधा और कृष्ण को नायक-नायिका मानकर सरस पदों की रचना की है। विद्यापति के पद भी 'जयदेव' के अनुकरण के आधार पर लिखे गए हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, ''जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पियूष-धारा, जो काल-कठोरता में दब गयी थी; अवकाश पाते ही मिथिला की अमराइयों में मैथिल कोकिल विद्यापति के कंठ से निःसृत हुई।''

''नव वृन्दावन नव-नव तरुगन,
नव-नव विकसित फूल।
नवल वसन्त नवल मलयानिल,
नव मातलि अलि कूल।
सखि हे, विहरथ नवल किशोर।''

विद्यापति की काव्य-धारा त्रिवेणी का संगम है। एक ओर उनकी वाणी में लोक-जीवन की

चेतना स्पन्दित है, तो दूसरी ओर उनके गीतों में मिथिला की युवतियों का प्रेम-पराग गुंफित है तथा उनके पदों में भक्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित है।

डॉ. शिव प्रसाद सिंह के अनुसार, ''एक ऐसा व्यक्तित्व, जो सौन्दर्य के भाव-लहरियों से स्पन्दित था। प्रेम की बाँसुरी की जड़ीभूत कारिणी माधुरी से प्लावित था, तथा जो विरह-चंपा की तीखी गंध से व्याकुल था।''

विद्यापति रससिद्ध कवि तो थे ही, त्रिभुवन-विजयी सौन्दर्य के अप्रतिम चितेरे भी थे। सौन्दर्य ही उनका दर्शन था तथा वही उनकी जीवन दृष्टि। वैसा अक्षय सौन्दर्य, जिसे जीवन भर अवलोकन करते रहने की अविरल इच्छा जाग्रत रहती है। अपने हृदय को दलित-द्राक्षा के समान निचोड़ कर अपने आराध्य के चरणों में समर्पित कर देने वाले कवियों में विद्यापति का स्थान आगे है।

''मिथिला-नरेश के राजपंडित विद्यापति ठाकुर ने बंगाल के महाकवि जयदेव की अमर-रचना 'गीत-गोविन्द' के पदों के शब्द-लालित्य और छंद योजना का अनुसरण करते हुए पहली बार लोक-भाषा (देसिल-बैयना) में पदों की रचना की, जिसकी भाषा पुरानी मैथिली थी। आधुनिक काल में विकसित पूर्वी भारत की लोक भाषा बंगला, उड़िया, असमिया और नेपाली का प्रस्थान-बिन्दु यही प्राचीन मैथिली है। इसे ब्रजबुलि भी कहते हैं। आज की इन सभी सुविकसित भाषाओं के आदि कवि के रूप में महाकवि विद्यापति ही प्रतिष्ठित रहे हैं। इन्हें परिवर्तीकाल में लोग 'अभिनव जयदेव' के नाम से पुकारने लगे थे।'' (डॉ. अहिल्या मिश्र)

इनके जिन शब्दों के परायण के पश्चात् उनके लिए मैथिल कोकिल विशेषण अनायास ही निकल पड़ा होगा। इनके उन्हीं पदों के परायण के पश्चात् साहित्य-कोकिल विशेषण भी सार्थक सिद्ध हो सकता है। महाकवि विद्यापति के कवित्व, संगीत एवं व्यक्तित्व विश्व के फलक पर फैला हुआ है। ऐसी स्थिति में उनके सांगीतिक राग और शृंगारिक अनुराग केवल मिथिला के दामन में उलझ कर रह जाए, यह निश्चित रूप से वैचारिक-संकीर्णता का सूचक माना जाएगा। अतः इन्हें साहित्य कोकिल से संबोधित करना उदार भावना का उत्कृष्ट उदाहरण होगा। सचमुच हिन्दी-काव्य-साहित्य के उपवन में भावनाओं की मृदु-बसन्ती बहार के उन्मादित सालसा-संगीत छेड़ने वाला, कोकिल विद्यापति ही थे।

'विद्यापति' बिहार प्रान्त में अवस्थित मधुबनी जिला (प्राचीन दरभंगा जिला) के अन्तर्गत विशफी नामक गाँव के निवासी थे। यद्यपि प्रामाणिक रूप से उनका जन्म सम्वत् नहीं जाना जा सका है, पर प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि संभवतः इनका जन्म 1362 ई. में हुआ था और पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक वे जीवित रहे होंगे।

'कीर्त्तिकला' विद्यापति की एक काव्य-पुस्तक है, जिसमें उन्होंने कीर्तिसिंह नामक राजा के समक्ष अपनी पहचान 'खेलनकवि' के रूप में प्रस्तुत की है। इससे यह सिद्ध होता है कि विद्यापति उनके बाल-बन्धु भी रहे होंगे। यदि इस पर विचार करें तो यह सिद्ध होता है कि इनका जन्म कुछ और पहले हुआ होगा। इसी आधार पर विद्वानों ने यह अनुमान किया कि विद्यापति ने अपने जीवन और जगत के प्रथम प्रकाश का साक्षात्कार 1360 ई. में ही किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह घोषित किया है कि सम्वत् 1460 में तिरहुत के राजा शिव सिंह के यहाँ तात्कालिक परिवेश में विद्यापति ने निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी थी—

''लोचन तुअ कमल नही मो सम
से जग के नही जाने
से फिर जाये लुकैलन्ह जल मएँ
पंकज निज अपमाने
मनहि विद्यापति सुनु वर जो
विनई सम लछमि समाने
राजा शिव सिंह सत्यनारायण
लखिमा देवी प्रतिमाने।।''

आदिकाल की धार्मिक चेतना को मैथिली कविता के अन्यतम विधायक विद्यापति ने श्रृंगारिक पर्यावरण दिया। इस काल-खण्ड की दरबारी कविता को साहित्येतिहासकारों ने वीरगाथात्मक घोषित किया है। लकिन रासो काव्य पम्परा में वीर और श्रृंगार की रसशीलता का अद्‌भुत समन्वय दीखता है।

विद्यापति के द्वारा कई ग्रन्थ लिखे गए हैं, जिनमें 'कीर्त्तिलता', 'कीर्त्तिपताका', 'पदावली' आदि प्रमुख रूप से परिदृश्य हैं। 'पदावली' उनके श्रृंगारिक एवं आध्यात्मिक पदों का संग्रह है। 'कीर्त्तिलता' एवं 'कीर्त्तिपताका' तिरहुत के राजा शिव सिंह और कीर्त्ति सिंह तथा रानी लखिमा देवी के आख्यानों पर आधारित है। क्योंकि विद्यापति उनके दरबारी कवि के रूप में अवस्थित थे।

कीर्तिलता—विद्यापति-रचित 'कीर्तिलता' में आश्रयदाता कीर्त्ति सिंह के यश का गान किया गया है। बिहार के दरभंगा जिले के अंतर्गत विसपी ग्राम विद्यापति का जन्म-स्थान था। महाराजा कीर्त्ति सिंह की दानशीलता, वीरता और राजनैतिक कुशलता का वर्णन इस काव्य में मिलता है। 'कीर्तिलता' चार पल्लवों (भागों) में लिखी गई है। विद्यापति कहते हैं कि देशी वचन सबको मीठे लगते हैं, अतः अवहट्‌ट (अपभ्रंश) में रचना करता हूँ। कीर्तिसिंह के वंश और पराक्रम के वर्णन से कथा प्रारम्भ होती है। कीर्तिसिंह के पिता राजा गणेश्वर को नवाब असलान ने छल से मार दिया था। कीर्तिसिंह ने अपने पिता का बदला लेने की भावना से असलान के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। इस युद्ध में कीर्तिसिंह विजयी हुए। उनका राज्याभिषेक हुआ। आशीर्वाद व मंगल-कामना के साथ काव्य समाप्त होता है। विद्यापति ने जौनपुर नगर का वर्णन बड़े सजीव ढंग से किया है। 'कीर्तिलता' में प्रेरणादायी कथन पर प्राप्त होते हैं—''जन्म मात्र से कोई पुरुष नहीं होता। पुरुष वही है जिसका मान हो, जिसमें धनोपार्जन की शक्ति हो, जो धर्म-परायण हो, आपत्ति-विपत्ति में दीन वचन न बोलने वाला हो।''

विद्यापति पदावली—विद्यापति द्वारा समय-समय पर गाए जाने वाले पदों का संग्रह ही 'विद्यापति पदावली' है। मिथिला में तो ये घर-घर में गाए जाते हैं। इन पदों को भिन्न-भिन्न भागों में रखा जा सकता है। कुछ पद प्रकृति-संबंधी हैं, तो कुछ पद स्तुतिपरक हैं। किन्तु अधिकांश पद राधाकृष्ण के प्रेम-संबंधी हैं। विद्यापति के गीतों की विशेषता है—'लोकाभिमुखता'। ये लोकजीवन से जुड़े हुए गीत हैं।

महाकवि विद्यापति श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि के विशेषज्ञ थे। उन्होंने प्रायः सभी विषयों पर अपनी लेखनी की प्रबुद्धता का परिचय दिया है। किन्तु, अपनी जिस ललित एवं श्रृंगारिक रचना के कारण वे भारत के एक सुप्रसिद्ध तथा संसार के सुविख्यात संगीतकार माने जाते हैं, वह है उनकी कोमलकान्त पदावली।

जीवन और जगत में जहाँ कहीं सौन्दर्य का समागम हुआ, उस पर कवि ने मुग्ध होकर अपने काव्य में उसे समाहित कर लिया और उसे जन-जन के कंठ का श्रृंगार बना दिया।

विद्यापति की भाषा उनके समय की प्रचलित मैथिली भाषा है। बंग भाषा वाले विद्यापति को अपनी ओर खींचते हैं। आज विद्यापति को मैथिली वाले हिन्दी से अलग कर दिया है, क्योंकि भाषा वैज्ञानिक मैथिली भाषा को हिन्दी से अलग मानते हैं और उसने यह कारण उपस्थित किया है कि यह मागधी से निकली हुई भाषा है, जो उचित भी है। उनकी 'कीर्त्तिलता' में आपको पुरानी मैथिली के और चिह्न मिलेंगे। उदाहरण के लिए विशेषण तथा क्रिया में स्त्रीलिंग का व्यवहार हुआ है। 'कृदन्त' के लिए 'न्ते' और 'न्ता' का प्रयोग किया गया है और पूर्वकालिक के लिए इ, ए, व्यवहार तथा स्वरों की सानुनासिका का कारण भी मिलता है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कमलचन्द्र सोगाणी आदि कुछ विद्वानों के अनुसार मैथिली भाषा 'अवहट्‌ट' (अपभ्रंश) से निकली हुई भाषा मानी जाती है।

जो भी हो, विद्यापति की भाषा बड़ी ललित है। सचमुच जो मिठास कोयल की 'कुहु-कुहु' में है, वही मिठास विद्यापति की प्रत्येक पंक्ति में है—

''चानन भेल विषय सर हे भूषण भेल भारी
सपने हु हरि नही आओल रे गोगुल गिरधारी

एक सर ठाढ़ि कदमतर रे पथ हेरथि मुरारी
हरि विनु हृदय दगध भेल हे, झामर भेल सारी।।''

विद्यापति को भाषा पर पूरा अधिकार था। मैथिली स्वयं मधुर भाषा है। परन्तु, विद्यापति ने इसके माधुर्य को और बढ़ा दिया है। शब्दों के चुनाव से इनकी भाषा में अपूर्व संगीतिका सहज ही आ जाती है। दूसरी बात यह है कि सर्वत्र उन्होंने भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। इनकी भाषा का प्रवाह और प्रभाव, दोनों ही अपना उच्च स्थान रखते हैं। उदाहरणस्वरूप इन पंक्तियों को उपस्थित किया जा सकता है–

''तोहरो बदन सम चाँद हो अथि नही,
कैयो जतन विधि केला
केकरा काटि बनाबल तन कै,
तयो तुलित नहीं भेला।।''

और भी–

''कखन हरब दुख मोर, हे भोला बाबा''
या
''सखि हे हमर दुखक नहीं ओर''

विद्यापति की भाषा की कोमलता भी अद्वितीय है। भाषा में तीन गुण होते हैं। ओज, प्रसाद और माधुर्य। विनय, अर्चना, प्रार्थना और अभ्यर्थना के लिए प्रसाद और माधुर्य गुण ही उपयुक्त हैं। अतः विद्यापति के पदों में इन्हीं गुणों का समावेश है। इसलिए आध्यात्मिक भाव, ललित भाषा में और भी प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं। गंगा की स्तुति में–

''बड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे,
छारइत निकट नयन बह नीरे
कर जोरी विनमओं विमल तरंगें,
पुनि दरसन होये पुनिमति गंगे।।''

ये पंक्तियाँ कितनी मार्मिक बन पड़ी हैं। इनसे ही और अनुमान किया जा सकता है। विद्यापति के अधिकांश पद श्रृंगारिक ही हैं। हाँ, इनमें कहीं-कहीं आध्यात्मिक भाव भी अनुगुंजित हैं।

विद्यापति के प्रायः अधिकांश पद श्रृंगार की दृष्टि से ही लिखे गए हैं। सर्वत्र उनका भक्त रूप ही सामने नहीं आया है। पदावली में राधा तथा अन्य गोपियों के साथ प्रेम-लीला का चित्रण किया गया है और यह चित्रण गेय पदों में हुआ है। उत्तर भारत में कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों की हिन्दी साहित्य में विद्यापति की प्रथम काव्यात्मक अभिव्यक्ति है।

परन्तु ऐसा नहीं समझ लेना चाहिए कि विद्यापति केवल कृष्ण का श्रृंगार रस या लीलाओं के चित्रण में उलझ कर रह गए हैं। जिस प्रकार सूरदास जी ने अपने सूर-सागर में कृष्ण के लौकिक और अलौकिक दोनों तत्त्वों की अभिव्यंजना की है, उसी प्रकार विद्यापति ने भी। सूरदास जी ने विनय और भक्ति के पदों में केवल कृष्ण को ईश्वर माना है। अन्य पदों में उनके प्रेमी तथा लौकिक पदों का उद्घाटन किया है। उसी प्रकार विद्यापति ने भी अधिकतर पदों में कृष्ण का चित्रण लौकिक नायक के रूप में किया है, परन्तु कुछ पदों में उन्होंने कृष्ण की केवल ईश्वर रूप में आराधाना की है–

''माधव, कत मोर करब बराई
उपमा तोहर करब ककरा हम
कहितहुँ अधिक लजाई।।''

जैसे पदों में कृष्ण को ईश्वर के रूप में उपस्थित किया गया है।

विद्यापति की भक्ति में उपास्य संबंधी उदारता है। उन्होंने जहाँ एक ओर राधा-कृष्ण की भक्ति की है, वहीं दूसरी ओर दुर्गा तथा उमा-शिव की भी। गंगा और सूर्य तक की भक्ति में, उनमें वैचारिक संकीर्णता नहीं दिखाई पड़ती है। सब की भक्ति समान रूप से करते थे। एक स्थल पर उन्होंने घोषणा भी की है–

''धन हर धन हरि, धन तब कला,
स्वन पीत वसन, स्वन बध छला।''

हरि को हर में हर (शंकर) को हरि (कृष्ण) में देखने वाले कवि विद्यापति ही हैं। उनका तो कहना है कि हरि ही कभी बघछला धारण कर शिव बनते हैं और शंकर ही कभी पीताम्बर धारण कर कृष्ण और विष्णु बनते हैं। इस प्रकार विद्यापति ने शैव और वैष्णव, दोनों के बीच समन्वयात्मक संबंध स्थापित करने की परिचेष्टा की है। उनकी नजर में शिव और विष्णु, दोनों एक ही है।।

परन्तु, खेद के साथ कहना पड़ता है कि आगे चलकर यह समन्वयात्मक दृष्टिकोण दूर छूटता चला गया और तुलसी के समय में तो शैव और वैष्णव, एक-दूसरे से भिन्न हो गए थे। दोनों एक-दूसरे पर अपनी-अपनी महत्ता प्रकट करना चाहते थे। किन्तु, बाद में तुलसी ने इन दोनों के बीच समन्वय स्थापित कराया।

परन्तु, प्रमुख रूप से विद्यापति शैव ही थे, वैष्णव नहीं। यह बात सर्वसिद्ध और सर्वमान्य है। वास्तव में उनके आत्मीय आराध्य भगवान त्रिनेत्र शंकर ही थे। तभी विद्यापति की भक्ति-भाव से प्रसन्न होकर, स्वयं शंकर भगवान उगना के नाम से सेवक के रूप में उनकी सेवकाई करते रहे। किन्तु, ज्योंहि विद्यापति ने अपनी पत्नी के समक्ष इस गुप्त रहस्य का पर्दाफाश किया, शंकर अतिशीघ्र अन्तर्ध्यान हो गए। इसी करण विद्यापति ने शंकर की जटा में विहार करने वाली गंगा को अपनी माता स्वीकार किया है।

श्रृंगार रस के सिद्धहस्त कवि विद्यापति की प्रवृत्ति श्रृंगार में जितनी रमी थी, उतनी अन्यत्र नहीं। परन्तु, विनय के पदों में जो मार्मिकता आ गयी है; वह अद्वितीय है। विद्यापति के शान्त-रस का चित्रण, तुलसी के शान्त रस से कुछ कम नहीं है। इनका शान्त रस, जो भी पद है, यद्यपि परिणाम में अधिक नहीं। किन्तु भाव, प्रेरणा और ऊँचाई में अधिकोन्नत अवश्य है।

आरा की नागरी प्रचारिणी सभा ने विद्यापति ठाकुर की गवेषणापूर्ण जीवनी के साथ उनकी रचनाओं का एक संग्रह 'मैथिली कोकिल विद्यापति' के नाम से निकाल कर, हिन्दी संसार को भी इन्हें अपने प्राचीन कवि-मंडल में उच्च स्थान देने के लिए बाध्य कर दिया। नहीं तो सिवाय मैथिली के अन्य हिन्दी भाषी

प्रान्तों में इनकी उतनी प्रसिद्धि नहीं थी। अब इस ग्रन्थ का पहला संस्करण समाप्त हो गया है और अब यह बहुत अलभ्य हो रहा है। मैथिल हिन्दी सभा को चाहिए कि इसका परिवर्द्धित दूसरा संस्करण शीघ्र ही निकाले और हिन्दी संसार को इसका अधिकाधिक रसास्वादन कराने का सुअवसर प्रदान करे।

जिस प्रकार विद्यापति ने अपनी बहुमूल्य काव्य-रचनाओं द्वारा प्रतिष्ठा पायी है, उसी प्रकार वे हिन्दी के प्रथम नाटककार भी कहे जा सकते हैं। क्योंकि आपने ही पहले-पहल 'पारिजात-हरण' और 'रुक्मिणी स्वयंवर' नामक नाटक लिखे थे।

आपके अनुकरण पर लाल झा ने 'गौरी परिणय', भानुनाथ ने 'प्रभावती हरण' और हर्षनाथ झा ने 'उषा हरण' आदि नाटक बाद में लिखे सही; परन्तु हिन्दी के सबसे सफल नाटककार कहलाने का सौभाग्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी को ही प्राप्त हुआ।

विद्यापति के बाद भी मिथिला में बहुत से कवि हुए, जिन्होंने अपनी कविता से साहित्य-प्रेमियों का अच्छा मनोविनोद किया। किन्तु विद्यापति के काव्य-सौन्दर्य का अभाव दिखा। इन कवियों में अधिकांश मैथिल ब्राह्मण ही थे।

विद्यापति के संबंध में किसी आलोचक का यह कथन, ''अभिसार की आड़ में भक्ति का सार कहाँ?'' बिल्कुल उपयुक्त और यथार्थ है। इनके शृंगारिक पद और आंचलिक संस्कारों (विवाह, उपनयन, मुण्डन आदि) के सभी गीत आज भी मिथिला की अमराइयों में अनुगुंजित हैं।

विद्यापति ने राधा और कृष्ण की प्रणय-क्रीड़ा की आड़ में नायक-नायिका के शृंगार, सौन्दर्य और रति क्रीड़ा का वर्णन खुलकर किया है। प्रस्तुत पद इसका ज्वलंत प्रतीक है—

''सरस वसन्त समय भल पाओल,
दखिन पवन बहु धीरे।
सपनेहु मुख बचन एक भाखिए,
मुख से दूरि करू चीरे।।''

ऋतुराज वसन्त की सरस-सुहानी बेला है। सौरभमय-मलय-समीर मन्द-मन्द से बह रहा है। कामातुर प्रियतम अपनी नबोढ़ा और लाजवन्ती लता की तरह सलोनी प्रियतमा के पास खड़ा हो, प्रेम की पुकार कर रहा है। वह कहता है कि—

''उठ री विकसित कुवलय नयने
नयन निमीलित खोल,
बिजित मदन मदनातुर प्रियतम,
पास खड़ा कुछ बोल।।''

वह अपनी प्रेयसी की रूप प्रशंसा करते हुए कहता है, ''आह! कितना सुन्दर मुख है तुम्हारा। जरा अपने चाँद सरीखे मुखारविन्द से दामन तो हटाओ। पर, तुम्हारा मुख तो, चाँद से भी श्रेयस्कर है।''

''पंकज तो पंकज मृगांक भी है
मृगांक री प्यारी।
मिली न तेरे मुख की उपमा
देखी वसुधा सारी।।''

कवि रूपसि रमणि के अप्रतिम, अनिंद्य, लावण्य, माधुर्य और सुकुमारता के समक्ष चाँद को भी फीका और निस्तेज पाता है। कवि कल्पनानयन पर चढ़कर सृष्टि के अणु-परमाणु का दिग्दर्शन करता है। इसलिए कि नायिका के मुख के सदृश मादकता, उज्ज्वल और सुन्दरता तथा आह्लादकता को अन्यत्र देख सके।

सृष्टि के दो सर्व सुन्दर वस्तु—चन्द्रमा और कमल—पर उसकी निगाहें पड़ती हैं। लेकिन चन्द्रमा और कमल का क्या मजाल कि वह प्रियतमा की सुन्दरता के तुल्य हो सके।

यह ठीक है कि विधाता ने सारी शक्ति व बुद्धि लगाकर विधु-मंडल का निर्माण किया। शायद इस आशय से कि वह नायिका की मुखाकृति का उपमान हो सके। उसे कई बार काट-छाँट कर नायिका के मुख की सुन्दरता के तुल्य बनाना चाहा, पर वह उसकी तुलना में नहीं आ सका।

''जन्म सिन्धु पुनि बन्धु विष,
दिन मलीन कलंक
तुअ (सिआ) मुख समता पाव किमि,
चन्द्र वापुरो रंक
कोक-शोक प्रद पंकज द्रोही,
अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही।
सिये मुख यदि पटतर दिन्हें होई
दोस बड़ अनुचित किन्हे।।''

ऐसी ही थी लखिमा देवी के आनन की अनुपम सुन्दरता और उसकी आँखें तो कमल को भी मात करती थी। कमल को अपनी खूबसूरती पर दम्भ अवश्य था। इसलिए कि विधाता ने उसे सर्व-सुन्दर अपनी सृष्टि में बनाया था। पर वह भी नायिका की आँखों की सुन्दरता के समक्ष टिक न सका और नत-मस्तक हो, घोर-अपमान के कारण ग्लानि और लज्जा से पंक में जा समाया—

''लोचन तु अ कमल नहीं मोसम,
से जग के नहीं जाने।
से फेरि जाये लुकैलन्ह जलमय
पंकज निज अपमाने।।''

वस्तुतः लखिमा देवी की सुन्दरता जगतपति विष्णु की अर्द्धांगिनी लक्ष्मी के समान है, जिनका वर्णन कवि कल्पनातीत है।

विद्यापति में अलंकारों की खोज करने की प्रवृत्ति नहीं थी तथा वे कोई चमत्कार भी उत्पन्न नहीं करते। परन्तु, उनके द्वारा जो भी कहा गया, वही चमत्कार कर देता है। उपमा, जहाँ-जहाँ आयी है, पाठकों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ गयी है।

विद्यापति ने जहाँ शृंगारिक एक से एक रचना की है, वहाँ उनकी भक्ति और आध्यात्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत पदों का भी अभाव नहीं है। अपने उपास्य माधव के रूप पर विद्यापति पूरी तरह रीझे और सम्मोहित दिखाई पड़ते हैं। ये ब्रह्माण्ड के सुन्दर से सुन्दर और कीमती से कीमती पदार्थ को भी अपने आराध्य कृष्ण की उपमा के योग्य नहीं समझते, इस सब में कोई न कोई दोष अवश्य देखते हैं—

''जओं सिरिखंड सौरव अति दुरलभ,
तओ पुनिकाठकठोरे

जओं जगदीस निसाकर तओं पुनि
एक ही पच्छ इजोरे
मनिक समान आन नहीं दोसर
तनिकर पाथर नामे
कनक कदलि छोटि लज्जित भय रह,
की कहु ठामहि ठामे।।''

अन्त में कवि अपनी तुलनात्मक दृष्टि-विस्तार से कृष्ण को अखिल ब्रह्माण्ड में अतुलनीय एवं अप्रतिम सौन्दर्यशील मानते हुए प्रेम और निश्छल भक्ति की अनन्यता का इजहार करता है–

''तोहर सरिस एक तो ही माधव
मन होइछ अनुमाने
सज्जन जन सओं नेह उचित थिक,
कवि विद्यापति भाने।।''

आध्यात्मिक धरातल पर आत्म-उद्घोषित कवि का प्रथम पद अपने आराध्य इष्टदेव श्रीकृष्ण के प्रति निवेदित समर्पण मूलक भक्ति-भावना एवं उसके हृदय-विराग का परिचायक है–

विद्यापति के जीवन में जब तक जवानी की मादकता छायी रही, जब तक कवि, यौवन की छलकती सौन्दर्य-सरिता में स्नान करता रहा और प्रेम रूपी आसव का पान करता रहा तथा राजमहल के वैभव-शृंगार की दुनिया में मशगूल रहा, स्वप्न में भी कभी यह नहीं विचारा कि यौवन की बाढ़ का पानी कभी भी समाप्त हो जाएगा तथा जीवन-सरिता के सारे रसस्रोत सूख भी जाएँगे।

''तातल सैकत वारि बिंदु सम,
सुत मित रमनि समाजे।
तोहे विसारि मन तोहे समर्पिलौं,
अब हम होयव कौन काजे।।''

आखिर कवि के जीवन में क्षण आकर ही रहा, जब कवि पश्चात्ताप एवं ग्लानि से भर उठा–उत्तुप्त बालुका-राशि में जिस प्रकार जल की बूँदें विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार पुत्र, सखा, स्त्री एवं समाज रूपी बालुका राशि में कवि ने अपने को विलीन कर दिया। अब उसे मुक्ति के लिए भगवान के गुणगान के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं सूझता। तब वह अनायास ही कातर स्वर में कह उठता है–''माधव, हम परिणाम निराशा।'' वह अपनी भूल को हृदय की समस्त निश्छलता एवं निष्कपटता के साथ स्वीकार करता है–

''जतने जतेक धन पाये बटोरलुँ,
मिलि-मिलि परिजन खाये।
मरनक बेरि हरि केओ नहिं पूछत,
करम संग चलि जाये।''

एकाएक उसे परमात्मा की याद आई और तब उसने प्रायश्चित का यज्ञ प्रारंभ किया और आत्मानुभूति की समिधा अर्ध्य के रूप में अपने को अर्पित करना प्रारंभ किया। आत्मा, परमात्मा के शाश्वत महत्त्व को समझने लगी।

वह कहता है, ब्रह्म और जीव का, सागर और लहर का जो संबंध है। वही संबंध आत्मा और परमात्मा का है। जिस प्रकार सागर से निकली लहरें पुनः सागर में ही विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार आत्मा, परमात्मा में विलीन हो जाती है।

''जावत जनम हम तुअ पद सेविलुँ,
मतिमय जुबती मेलि।
अमरित तेजि हलाहल पीयलुँ,
सम्पद विपदहि भेलि।।''

उक्त पद में विद्यापति के दैन्य निवेदन का प्रकर्ष दिखाई पड़ता है।

वस्तुतः यौवन में तो कवि कोमल-कान्त पदावलियों की रचना करता रहा। कामनियों के पायलों की झंकार में रस-राग की मदिरा का पान करता रहा। किन्तु अन्ततः पश्चात्ताप की प्रचण्डाग्नि में उसे सामान्य पुरुष की तरह स्वाहा हो जाना पड़ा। आज वह ईश्वर से अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना करता है–

''भनइ विद्यापति लेह मनिह गुनि,
कहिले कि जानि हम काज,
साँझक वेरि सेवकाई मँगइते,
हेरइते तुअ पद लाज।।''

उक्त पद में आत्मनिक्षेप है तथा कवि ने अपनी सम्पूर्ण हार्दिक भावनाओं को समर्पित कर मोक्ष प्राप्त करने हेतु ईश्वर से आत्मनिवेदन किया है–

विद्यापति अपने जीवन की सांध्य बेला में गंगा लाभ की आशंका से अभिभूत हो गए थे। उनकी प्रबल इच्छा कि उनका जीवनान्त गंगा माता की गोद में ही हो। अतः कर्मेन्द्रियों की अक्षमता के कारण पालकी पर सवार होकर माँ गंगा की गोद में महाप्रयाण के लिए प्रस्थान कर गए। किन्तु मार्ग में ही उनके प्राण प्रयाण करने हेतु कण्ठ में चले आए।

तब विवश विद्यापति अपने को असहाय जानकर मर्माहत हो गए और करुणाद्र भाव से गंगा को अपने समीप आने केलिए अभ्यर्थना करने लगे।

(हम विसफी से एतवा दूर अयलौ, अब प्राण कंठ धारि आवि गेल अइछ, आहाँ मैऽय भक एतवो दूर नइ आयव)।

कहा जाता है कि गंगा की धारा हर-हराती, भूमि को चीरती हुई उस पालकी के पास पहुँच गयी और अपनी हिलोरों से पालकी सहित विद्यापति को अपनी प्रवाहित क्षिप्र धारा में सिमट ले गयी। विद्यापति विलुप्त हो गये और पुत्र को जीवनन्तमें माँ की ममतामयी गोद मिल गयी।

आज भी वहाँ गंगा की धारा दो भागों में विभक्त है और उक्त घटना का प्रत्यक्ष साक्ष्य 'विद्यापति नगर' के नाम से आज भी वह स्थान अवस्थित है।

''कार्त्तिक धवल त्रोदशी जन,
विद्यापति क देह अवसान।''

**मोहल्ला-रामबाग चौरी, पोस्ट-रमना,
मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार)**

श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्यात्मक अवदान

डॉ. अनुपम कुमार

युवा लेखक-समीक्षक डॉ. अनुपम कुमार दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से पीएच.डी. एवं लगभग पाँच वर्षों तक मेवाड़ यूनिवर्सिटी (नोएडा) में हिन्दी के प्राध्यापक तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इनकी रचनाएँ प्रकाशित। श्रीलाल शुक्ल पर केन्द्रित 'श्रीलाल शुक्लः एक पुनर्मूल्यांकन' पुस्तक प्रकाशित। इन दिनों लेखन में सक्रिय हैं।

श्रीलाल शुक्ल स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित व्यंग्यकार हैं। आधुनिक अर्थों में व्यंग्य, व्यंग्य लेखन का उदय एवं विकास भारतेन्द-युग से हुआ है। स्वतंत्रता-पूर्व व्यंग्य-लेखन की गद्यात्मक परम्परा यहीं से आरम्भ होती है। ऐसे व्यंग्य की शैली आदिकालीन, भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कवियों, जैसे—कबीर, तुलसी, सूर, केशव, घनानंद आदि में भी मौजूद है। इसका स्वरूप काव्यात्मक है। भारतेन्दु युगीन व्यंग्य राजनीतिक भूमिका निभाता है, द्विवेदी युगीन व्यंग्य नैतिक और शुक्ल युगीन व्यंग्य साहित्यिक एवं सांस्कृतिक भूमिका निभाता है। श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य इन तमाम भूमिकाओं को निभाते हुए अपनी प्रखरता को प्राप्त करता है। उनका व्यंग्य हमारे यथार्थ की ऐसी अभिव्यक्ति है जो व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, कथनी और करनी के बीच के अंतर को प्रमाणिक रूप से हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। उनके व्यंग्य की सबसे बड़ी विशेषता तत्कालिकता और संदर्भ से लगाव है। ऐसे में श्रीलाल शुक्ल का कथा-साहित्य और निबंध दोनों व्यंग्यात्मक माँझे से लवरेज हैं, जिसमें उनके प्रमुख उपन्यास 'राग दरबारी' का व्यंग्यात्मक कलेवर विशिष्ट एवं

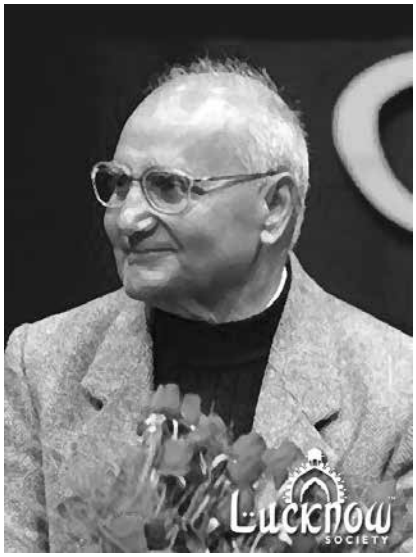

अनूठे प्रयोग के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होता है। इसलिए यह उपन्यास सर्वाधिक बिक्री वाले साहित्य की श्रेणी में शामिल है।

गरीबी की चरम सीमा को भोगते हुए संपन्नता की सीढ़ी चढ़ने वाले श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्यात्मक शैली दोनों ही परिस्थितियों में सुकून तथा अपनेपन से अपरिचित ही रही है। अपने साहित्य की व्यंग्यात्मक मानसिकता समझाते हुए वे इतना भर कहते हैं—''मेरा एक पैर गरीबी के खेमे में है जिसे मैं जीवन के पूर्वार्द्ध में जान चुका हूँ और दूसरा पैर सम्पन्नता के खेमे में है जो मेरे पास-पड़ोस में दिखाई देता है। मैं उन दोनों में से किसी भी खेमे में सुकून और अपनेपन का अनुभव नहीं कर पाता हूँ।'' शुक्ल का यह कथन उनके साहित्यकार की भीतरी बेचैनी एवं अभावग्रस्त परेशानी का प्रमाण है। यह आर्थिक अभाव का परिणाम नहीं है, अपितु यह आज की छद्म सम्पन्नता के विरुद्ध है। जीवन-जगत की विभीषिकाएँ तो उनकी अपनी थी हीं, प्रशासकीय नौकरी में आने के बाद प्रशासन का छद्म भी उनके सामने खुलने लगा। अपने व्यंग्य लेखन के शुरुआत की जानकारी देते हुए वे कहते हैं कि ''एक दिन आकाशवाणी के एक नाटक का रोमांटिक धुआँधार झेलने में अपने को बेकाबू पाकर और लगभग हिंसात्मक विद्रोह करते हुए मैंने 'स्वर्णग्राम और वर्षा' नामक लेख लिखा... मेरे व्यंग्य लेखन की यही शुरुआत थी।'' प्रशासकीय नौकरी में आने के बाद लेखकीय संवेदना को प्रतिष्ठान-परस्ती से बचाने की नयी चुनौती उनके सामने थी। इस संदर्भ में उनका कथन है कि ''मेरे जैसा लेखक, जिसकी शुरुआत ही व्यंग्य और तीखे लेखन से हुई हो, इस तरह के पलायन से अपने को बहुत दिन तक फुसला नहीं सकता, क्योंकि ऐसे लेखन के पीछे सामाजिक जीवन की जिस क्वालिटी का आदर्श है, वह आसानी से मुझे छोड़ने वाला नहीं है। किसी व्यवस्था पर प्रत्यक्ष चोट करना मेरा मंतव्य हो न हो, पर इस एहसास से कि चाहने पर भी उस पर चोट नहीं की जा सकती, मेरे लेखन पर एक अस्पष्ट पर निश्चित क्रूर ग्रह की छाया पड़ने लगती है।'' 'राग दरबारी' में इस दुविधा के दर्शन हो जाते हैं।

श्रीलाल शुक्ल बाहरी प्रतिबंध के प्रति आंतरिक दुविधा तथा दोनों के बीच तालमेल बिठाने की विवशता में दृढ़ निश्चयी होकर व्यंग्यात्मक शैली का चुनाव करते हैं, क्योंकि सामाजिक जीवन का आदर्श उनके प्रतिबंधों से कहीं अधिक प्रबल है। यही कारण है कि वे

अपनी व्यंग्यात्मक मानसिकता को पराश्रित नहीं होने देते हैं। प्रबुद्ध लेखकों की तरह आयातित अनुभवों की अभिव्यक्ति का दंभ नहीं भरते, बल्कि चारों ओर के परिवेश से प्राप्त स्वानुभूति की ईमानदार अभिव्यक्ति करते हैं। स्वतंत्रता संग्राम का आदर्श, राष्ट्रीय संकल्प तथा मानवीय उदात्तता स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही एक जबर्दस्त नकलीपन एवं लाघव ग्रंथि की चपेट में आ गए। परिणामस्वरूप मानव समाज की परिणति 'सामाजिक जानवर' के रूप में हुई। शुक्ल अपने व्यंग्यों में इन्हीं सामाजिक जानवरों के क्रिया-कलापों का विश्लेषण करते हैं।

आधुनिक व्यंग्य का सर्वाधिक विवादास्पद पहलू उसका साहित्यिक स्वरूप रहा है। कतिपय आलोचक उसे 'विधा' अथवा 'शैली' के दायरे में समेटने का प्रयास करते हैं। इस पर श्रीलाल शुक्ल का मंतव्य है कि व्यंग्य कोई एक स्वतंत्र विधा नहीं है। उन्होंने अपने इस विचार को 'अज्ञेय : कुछ राग कुछ रंग' के एक व्याख्यान में स्थापित करने की चेष्टा की है। वे कहते हैं कि ''व्यंग्य विधा नहीं, अभिव्यक्ति की शैली है, ज्यादा से ज्यादा एक उपविधा। व्यंग्य की परिभाषागत अलग पहचान करना कठिन है। व्यंग्य महत्त्वपूर्ण विधा है या नहीं, इस बहस में न पड़कर अपने कथ्य को अच्छी तरह व्यक्त करना ही ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। जब शब्द अपना अर्थ खो रहे हैं, तब अभिधा में बात कहने की तुलना में व्यंग्य का प्रयोग ज्यादा सार्थक और प्रभावी होगा। व्यंग्य का कार्य मुख्यतः आलोचनात्मक है, जो चारों ओर से जीवन का बारीकी से निरीक्षण करके उसकी खामियों को उजागर करता है। यह वस्तुतः एक सुशिक्षित मस्तिष्क की देन है और पाठक के स्तर पर भी सुनिश्चित प्रतिक्रिया की माँग करता है। वह पाठक को गुदगुदाने के लिए नहीं बल्कि किसी विसंगति या विडंबना के उद्घाटन से उसके संपूर्ण संस्कारों को विचलित करने की प्रक्रिया है। व्यंग्य लेखन की कोई निश्चित भाषा नहीं है। व्यंग्य की भाषा अपनी विविधता के कारण लोकप्रिय होती है। व्यंग्य का प्रयोग अभिधा के सहारे नहीं किया जा सकता बल्कि शब्दों का बहुआयामी प्रयोग व्यंग्य को पैना बनाता है।'' शुक्ल के कथा-साहित्य में ऐसे ही व्यंग्य की क्षमता, स्पष्टवादिता और दृढ़ता का दर्शन होता है। यह शुक्ल की इस अंतर्निहित मान्यता का प्रमाण है कि साहित्य उनके लिए वाणी-विलास भर नहीं है, वह एक गंभीर दायित्व के निर्वाह का माध्यम है।

श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं में व्यंग्यात्मक शैली एक जटिल प्रक्रिया से गुजरती है। यह शैली तटस्थ होकर अनुभूति को अभिव्यक्ति नहीं देती है बल्कि समाज के हित-अहित का प्रश्न पैदा करते हुए, समाज में दिखती हुई बुराइयों के प्रति लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए, इन बुराइयों को लाने के लिए जिम्मेदार कारण को प्रस्तुत करती है। इसलिए उनका व्यंग्य सापेक्षिक होने के साथ ही सत्ता एवं समाज का शासीन प्रतिपक्ष है। बुनियादी सारतत्त्व और सरोकार के लिहाज से शुक्ल व्यंग्य को अपना मूल स्वर बनाते हैं और दुनिया में निरंतर बदलाव के कारण एक बेचैनी एवं व्यापक असंतोष को स्वर देने का उद्देश्यपूर्ण कार्य करते हैं। जिस स्तर पर हमारे सामाजिक संबंध अर्थ-केन्द्रित और मूल्य दृष्टि व्यावहारिक हो रही है, उसी स्तर पर हमारा चरित्र विरोधाभासी और जीवन अधिक संश्लिष्ट होता जा रहा है। आदमी की भीतरी और बाहरी आवश्यकताओं में फर्क पैदा हो रहा है, यानी समाज तेजी से विडंबना और विद्रूपता की ओर बढ़ रहा है। इन परिस्थितियों में शुक्ल के लिए यह एक संकट बिन्दु है क्योंकि उन्होंने मनुष्य के विचार और व्यवहार में फर्क इसी से जुड़े चरित्र और व्यवहार के अंतर के रचना में रूपायित किया है। पुनः उन्होंने गंभीर अंतर्दृष्टि और सोच को भी प्रस्तुत करने का सराहनीय कार्य किया है।

श्रीलाल शुक्ल के हास्य-व्यंग्य निबंधों एवं कथा-साहित्य से स्पष्ट होता है कि उनके व्यंग्य संसार के दो छोर हैं। एक तरफ उसमें कोमल नरम हास्य की परतों के सहारे पाठक को गुदगुदाते हुए समकालीन समाज की विसंगतियों पर कटाक्ष है, तो दूसरी ओर उसमें व्यंग्य की क्रमशः तीखी होती हुई धार से व्यापक व्यवस्था के दूर-दूर तक फैले प्रकट व छद्म पायों को, उनके घातक षड्यंत्रों को बेनकाब करने का सामर्थ्य भी है। उनकी व्यंग्य यात्रा भी उनकी रचना यात्रा के साथ-साथ अधिकाधिक विश्लेषणपरक और खीझ भरी होती गयी है। यह खीज उदात्त से हास्यास्पद या बेतुका तक उनकी सर्जनात्मक क्षमता की थाह लेने का अवसर देती है। मूलतः श्रीलाल शुक्ल की दुनिया धूल, धक्कड़, गर्द, गुबार, ईंट, पत्थर, कूड़े-कचड़े में धँसी हुई है। इस बेडौल अनगढ़ दुनिया में उन्होंने लघुता की महागाथा लिखने के कई सार्थक प्रयत्न किए हैं। कलात्मक नवाचार और परिष्कार उनका सरोकार नहीं है। तमाम व्यंग्यात्मक चुहल और छेड़छाड़ के बीच शुक्ल मूल्य क्षय की ट्रेजडी से अंजान नहीं हैं। उनकी कथा का देशज ठाठ वस्तु, रूप और भाषा सभी स्तरों पर प्रकट होती है। उनकी जड़ें परंपरा में हैं पर विकास का वास्तविक आधार है—भयानक चुनौतियों से घिरा समय और समाज। यह वह जटिल, उलझा एवं गडमड समय और समाज है जिसमें अति परिचित भी रहस्यमय है। अत्यंत ज्ञात भी संदिग्ध है। हमारे समय की खबरें जितना बताती हैं, वह कम डरावनी नहीं है। पर वे जो छिपाती हैं वह भी कम खौफनाक और कम त्रासद नहीं है। एक सर्जक लेखक के रूप में इस गुमनाम अँधेरे में धँसना श्रीलाल शुक्ल के साहस का ही नहीं, व्यंग्यात्मक समझ का भी प्रमाण है। उनके लिए व्यंग्य सामाजिक आलोचना भी है। इसलिए उनके लिए व्यंग्यात्मक शैली में गद्य लेखन प्रोजेक्ट की तरह है जो लंबी तैयारी की माँग करता है।

श्रीलाल शुक्ल का दौर उस समय का है जब नेहरू मॉडल का दिवास्वप्न छाया हुआ था।

लेकिन उन्होंने स्वयं को किसी भी प्रकार के रोमांटिक आशावाद की आग्रहशील भूलभुलैया अथवा भ्रांतियों से दूर रखा है। उनकी रचना-प्रक्रिया तमाम दबावों से लड़ते हुए असंपृक्त बनी रहती है। उत्साह और परिणाम दोनों दृष्टियों से उनकी रचनाएँ अधिक क्रियाशील हैं। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि विभिन्न व्यवस्थाओं की विद्रूपताओं के प्रति उनका विद्रोही स्वर मोहभंग की ओर गतिमान होता है। स्थापित आदर्श एवं बनी-बनाई मान्याताएँ उन्हें मंजूर नहीं हैं। हमेशा नयापन और क्रियाशीलता की खोज उन्हें व्यंग्य के माध्यम से जीवन-मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा देते रहते हैं।

श्रीलाल शुक्ल पर हमेशा यह आरोप लगता रहा है कि उनका व्यंग्य हास्य के साथ-साथ गुदगुदाता ज्यादा है, समस्या का हल नहीं देता है। वस्तुतः उनका व्यंग्य हास्य-विरोधी नहीं है। वह उनके व्यंग्य को अधिक मनोरंजक और स्वीकार्य बनाता है। किंतु हास्य जिन परिस्थितियों में उत्पन्न होता है उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। हास्य और व्यंग्य की सृजनात्मकता में जो सामाजिक दायित्व का बोध है वह उसे हल्की-फुलकी मनोरंजन का विषय नहीं रहने देता है। शुक्ल अपने अनुभव को विस्तृत फलक में ही हास्य और व्यंग्य के सहारे जीवन की विद्रूपताओं को वाणी देते हैं। हास्य को जीवन में अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए शुक्ल हास्य का मानवीकरण करते हुए इसकी आवश्यकता की बहुत ही मुकम्मल तस्वीर उकेरते हैं। पर चाहे हास्य का यह भारतीय परंपरागत स्वरूप हो, चाहे फ्रायड का दृष्टिकोण जो हास्य की जड़ में द्वेष की भावना को प्रधान मानता है। श्रीलाल शुक्ल के यहाँ हास्य और व्यंग्य मानव और समाज की कमजोरियों की भर्त्सना नही करता, उनको एक ऐसी रोशनी में प्रस्तुत करता है कि वे कमजोरियाँ जीवन की एक अविभाज्य, लगभग एक अनिवार्य अंश जैसी दिखने लगे। वह कुछ ऐसा आभास देता है जैसे जीवन उन कमजोरियों की ही वजह से ज्यादा आकर्षक हो गया है।

श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य सामाजिक सच का व्यंग्य है। जन-जन की व्यथा-वेदना का व्यंग्य है। अपने चारों ओर के यथार्थ को शुक्ल सहज, सरल एवं देशी शैली में व्यक्त करते हुए जनभाषा को कुशल अभिव्यक्ति देते हैं। राजनीति संचालित व्यवस्था की पोल खोलते हुए अवाम के संत्रास को वाणी प्रदान करते हैं। वे समाज के विभिन्न क्षेत्रों में पल रहे ढोंग, ढकोसलों तथा आडंबर पर अत्यंत ही सरस किन्तु धारदार शब्दों में निर्मम प्रहार करते हैं। उनके व्यंग्य की भाषा किसी फ्रेम में बँधी हुई निश्चित भाषा नहीं है। उनके व्यंग्य की भाषा बदलती रहती है। वस्तुतः श्रीलाल शुक्ल व्यंग्यका प्रयोग अभिधा के सहारे नहीं करते बल्कि शब्दों के बहुआयामी प्रयोग द्वारा व्यंग्य को पैना बनाते हैं।

वैचारिक स्तर पर आम आदमी की खोज आधुनिक चिंतन व्यवस्था का मुख्य बिंदु है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया में व्यक्ति एक प्राणी के रूप में महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि वह एक चलता-फिरता हाड़-मांस के अलावा एक 'वोट' भी है। वोट की राजनीति में आदमी के मानवीयता की हत्या भी होती है। इस हत्या के बाद भी आम आदमी की खोज क्यों हुई, यह एक हैरानी की बात है, जबकि सड़कों, फुटपाथों, गली-कूचों में, हाट-बाजार में, मेलों और सिनेमाघरों में, जिधर नजर दौड़ाइए उधर ज्यादातर आम आदमी ही दिखाई पड़ता है। वह बराबर हमारी नजर के सामने है, फिर भी उसकी तलाश जारी है।

राजनीतिक स्तर पर आरंभिक समाज राजा, प्रजा, सामंत और दास के वर्गों में बँटा हुआ था। यहाँ व्यक्ति मनुष्य न होकर 'प्रजा' होता है, जिसका उद्देश्य राज्य की इच्छा तक सीमित होता है। इस समाज में व्यक्ति तो है लेकिन आम आदमी नहीं है, क्योंकि सामाजिक जीवन में आम आदमी का जो सामूहिक स्तर पर आत्म-निर्णय का अधिकार है वह उसे उपलब्ध नहीं है। आम आदमी बहुत ही अस्पष्ट और धुँधला है, जिसे ठीक ढंग से पहचाना नहीं जा सकता है। इसलिए एक उलझी हुई ऐतिहासिक प्रक्रिया के अंतर्गत धीरे-धीरे समाजवाद की प्रतिष्ठा हुई और पूरे सामाजिक तंत्र में आम आदमी का चेहरा बार-बार उभर कर स्टेज पर आने लगा। पर उसी के साथ यह एहसास भी होने लगा कि बहुत जगहों पर समाजवाद या तो सिर्फ नारे की तरह या मुखौटे की तरह इस्तेमाल हो रहा है और उसके प्रभाव से स्टेज पर आम आदमी का चेहरा जो बार-बार सामने आता है, वास्तविक चेहरा नहीं है, वह भी एक मुखौटा ही है। जिसे श्रीलाल शुक्ल ने व्यंग्यात्मक लहजे में स्थापित करने की प्रतिबद्धता प्रस्तुत की है।

श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य कथा और व्यंग्य निबंधों का गद्य एक जैसा है। इस अर्थ में वे भारतेन्दु की परंपरा के सच्चे उत्तराधिकारी हैं, जिनकी व्यंग्य विनोद वृत्ति ने कथा को निबंध के निकट और निबंध को कथा के निकट ला दिया है। यह वह परंपरा है जिसमें बालमुकुंद गुप्त, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और शिवपूजन सहाय आते हैं। व्यंग्य लेखन की प्रतिभा ने शुक्ल को उपन्यास रचना की ओर प्रेरित किया था। उनके भीतर व्याप्त बतरस , किस्सागोई, औपन्यासिक प्रतिभा ने उन्हें व्यंग्य लेखन के भावुक रहित खिलंदड़पन और मुक्त विनोद में इस तरह रमने का आकर्षण पैदा किया जो आगे चलकर मनुष्य के लप्पुता की गाथा सीखने के काम आ सके। जिंदादिली के साथ यथार्थ के जटिल रूपों की आलोचनात्मक समझ ने श्रीलाल शुक्ल को व्यंग्य से सर्जनात्मक काम लेने की शक्ति दी है। व्यंग्य कथाएँ मिलकर एक जटिल औपन्यासिक संसार बना सकती हैं, इसका प्रमाण उनका कथा साहित्य है।

एफ-एफ-2, के-एच नं. 835, बालाजी अपार्टमेंट,
उपकार कॉलोनी, बुराड़ी, दिल्ली-110084

कामतानाथ की रचनाशीलता 'काल-कथा' के संदर्भ में

धर्मपाल सिंह

युवा लेखक धर्मपाल सिंह इग्नू से हिन्दी में एम.ए. तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इनकी समीक्षाएँ प्रकाशित होती रही हैं।

दो खंडों में विभाजित कामतानाथ का उपन्यास 'कालकथा' भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के उस हलचल भरे दौर की कहानी है, जो प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के आस-पास शुरू होकर 31 दिसम्बर,1929 की मध्यरात्रि को लाहौर में रावी नदी के तट पर संपन्न कांग्रेस अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में पूर्ण स्वराज की माँग की घोषणा पर समाप्त होती है। अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं को अपने आप में समेटे आजादी की लड़ाई का यह दौर भारतीय इतिहास का अविस्मरणीय अध्याय है। इसलिए कामतानाथ ने इन ऐतिहासिक तथ्यों के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों के ताने-बाने को प्रस्तुत किया है। कामतानाथ ने परंपरागत ढाँचे को तोड़कर काल-कथा में इतिहास को पुनर्जीवित करने की कोशिश की है। यह उपन्यास नए एवं पुराने सभी परंपराओं को समग्र जीवन के साथ समेटे हुए हैं।

'काल-कथा' में भारतीय यथार्थ को विविध ढंग से विभिन्न स्तरों पर चित्रित किया गया है। इस उपन्यास ने कथ्य और शिल्प की नई जमीन तोड़ी है और इक्कीसवीं शताब्दी के लिए बहुत ही समृद्ध परंपरा विकसित की है। यह उपन्यास जीवन-संघर्ष से उपजा

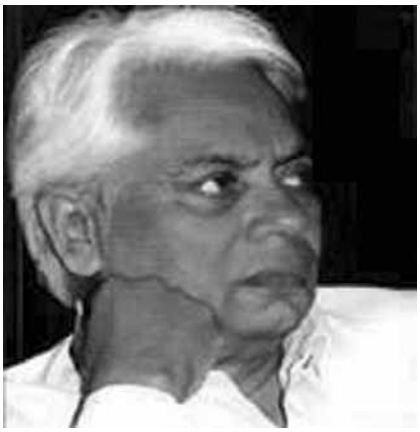

हुआ जान पड़ता है। इसलिए यह समग्र रूप में समाज का दुःख-दर्द, आम आदमी का संघर्ष, अनेक स्तर पर आदमी को आदमी बने रहने की प्रेरणा, जीवन के संघर्ष में मजबूती से खड़े रहने का शऊर सभी मौजूद है। यही कथ्य काल-कथा को अनुपम कृति बनाती है।

काल-कथा में कामतानाथ के अनुभव व्यक्त हुए मिलते हैं। वास्तविकता यह है कि हर लेखक अपनी रचनाओं में अपने जिए हुए को दोहराता है। इसलिए काल-कथा में कामतानाथ के अनुभव, उनके द्वारा सुनी हुई बात, बचपन की याद एवं अनुभव की व्यापकता सभी घुले-मिले लगते हैं। उन्होंने उपन्यास में वास्तविक जिन्दगी को हर पात्र में अंजाम देने की कोशिश की है, जिसमें उन्हें सफलता भी मिली है। 'काल-कथा' में प्रत्येक पात्र की अपनी डायनामिक्स है, जो एक खास दूरी तक चलने के बाद अपनी गति स्वयं प्राप्त कर लेते हैं। जिसे कामतानाथ पात्रों की शर्तों पर तैयार करते हैं।

दुर्जनखेड़ा के दरिद्र लोगों का जीवन हो या लखनऊ में नवाबी शान से रहने वाले उच्च, मध्यवर्गीय लोगों का जीवन, कामतानाथ उसका चित्रण करने के लिए ब्योरों की बारीकियों में जाते हैं और इसलिए पात्रों और परिस्थितियों को सजीव रूप में उभार पाते हैं। मध्यवर्गीय जीवन के तो वे मास्टर चित्रकार लगते हैं। मुंशी रामप्रसाद और खान अब्दुल गनी दोनों के परिवारों से संबंधित तमाम लोग मध्यवर्गीय हैं। उनमें से कुछ उच्च मध्यवर्गीय हैं तो कुछ निम्न-मध्यवर्ग के। कामतानाथ मध्यवर्ग के इन दोनों ही तबकों को बखूबी जानते हुए मिलते हैं और बड़ी सहजता से उनकी कहानी कहने में जुट जाते हैं। यही कहानी 'काल-कथा' उपन्यास की जान है। यह कहानी न सिर्फ पठनीय है बल्कि भारतीय मध्यवर्ग के बारे में कामतानाथ की समझ, संवेदना और सूक्ष्म अवलोकन क्षमता को भी सामने लाती है। जन जीवन के ऐसे चित्रण से अतीत के एक कालखंड को सजीव व जीवंत रूप में प्रस्तुत कर देना कामतानाथ की बौद्धिक परिपक्वता का परिचायक है। वस्तुतः 'काल-कथा' अपनी कमजोरियों एवं कमियों के बाद भी एक श्रेष्ठ उपन्यास है।

जैसे उपन्यास समग्र जीवन की विधा है, वैसे ही 'काल-कथा' भी समग्र मध्यवर्गीय जीवन की कथा है। पूरे उपन्यास में एक सपने की

अभिव्यक्ति है, आकांक्षा का संघर्ष है, भविष्य का चेहरा है और कुल मिलाकर अपने समय के प्रश्नों की प्रक्रिया के बीच जूझते व्यक्ति का जीवन है। इसलिए 'काल-कथा' रचे-गढ़े गए उत्तरों का संसार न होकर अपने समय की विरूपताओं के विरुद्ध चेतना पैदा करता है। पुनः 'काल-कथा' उन सूक्ष्म घटनाओं को प्रत्यक्ष करने का कार्य करता हुआ मिलता है, जिनसे मनुष्य का जीवन बनता है।

'काल-कथा' एक निश्चित कालखंड में बँधा ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें कामतानाथ उस समय को समझने के लिए ऐतिहासिक शक्तियों की पड़ताल करने की कोशिश करते हैं, जो उस समय के इंसानी जीवन को प्रभावित कर रही थी। यह उपन्यास ऐतिहासिक घटनाओं का लेखा-जोखा मात्र नहीं है बल्कि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों की गंभीरता से पड़ताल करता है। इतिहास की उन शक्तियों को उजागर करता है जो राष्ट्र के निर्माण का निमित्त होती हैं। इस प्रकार कामतानाथ की रचनाशीलता का कैनवास बहुत बड़ा है।

'काल-कथा' में प्राचीन भारतीय परंपरा के जीवंत तत्त्वों का समावेश हुआ है। साथ ही उसमें अपने युग के जन-जीवन की समग्रता की अभिव्यक्ति मिलती है। वस्तुतः 'काल-कथा' में कामतनाथ ने राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक विसंगति को उजागर कर सर्वांगीण जीवन के उच्चतम आदर्श को व्यक्त किया है। अपने युग के मूल्य और तत्त्व को 'काल-कथा' में शब्दशः व्यक्त किया गया है। स्वाधीनता की भावना, राष्ट्र प्रेम, अहिंसा आदि कुछ मूल्य उस समय के जीवन में परिवर्तन ला रहे थे, जिसने सामाजिक ढाँचे को एक नयी दिशा प्रदान की। उस समय के सामाजिक जीवन में परिवर्तन की तीन शक्तियाँ सामने मिलती हैं—पहला तो यह कि मनुष्य स्वभाव से ही परिवर्तनशील प्राणी है और उसकी सक्रिय चेतना उसे निरंतर एक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर परिचालित करती रहती है। दूसरा तत्त्व था—क्रिया-प्रतिक्रिया का। चिन्तन या सर्जना की कोई नयी लहर पैदा होती है तो कुछ अरसे तक वह अपना विकास करती रहती है। फिर एक स्थिति ऐसी भी आती है जब नये संचरण की क्षमता के अभाव में वह अपने आपको दोहराने लगती है। ऐसी अवस्था में आ जाने पर जिस धारा की प्रतिक्रिया होती है और उसके विरोध में या उसके समकक्ष सर्जना की एक नई पद्धति की उद्‌भावना की जाती है। जीवन में परिवर्तन का तीसरा कारण था—नवीन स्थितियों का प्रभाव। नवीन स्थितियों का जन्म आंतरिक, भौतिक या राजनीतिक विकास पर आधारित था। साथ ही बाह्य शक्ति या सत्ता के आगमन से भी उसका जन्म हुआ था।

'काल-कथा' मध्यवर्गीय जीवन की गाथा है। हमारे देश का मध्यवर्ग न इतना कमजोर है, न छोटा। सच्चाई यह है कि हम सभी पिछले सौ सालों से इसी वर्ग में आते रहे हैं। मध्यवर्गीय विडंबनाएँ ऊँचे सपने रखने और विदेशों में पढ़ने से बढ़ जाती हैं। वास्तविकता यह है कि एक अजीब चूहा-दौड़ है नीचे से ऊपर, गाँव से शहर, ऊपर से विदेश जाने की।

पढ़े-लिखे मध्यवर्ग का शायद ही कोई घर हो जहाँ से कोई न कोई यूरोप या अमेरिका में जाकर न बस गया हो। दो एक साल में उनमें से कुछ थोड़े समय के लिए लौटते हैं और देश की दुर्व्यवस्था और दयनीय अवस्था पर आँसू बहाकर लौट जाते हैं। कामतानाथ ने 'काल-कथा' में तहफ्फुज के माध्यम से इसी भावना को बताने का प्रयास किया है। ''कोई चार-पाँच साल बाद तहफ्फुज गाँव आ रहे थे। विलायत से लौटने के पश्चात् उन्हें गाँव बहुत ही गलीज जगह लगने लगा था। गाँव क्या पूरा हिन्दुस्तान ही उनकी निगाह में किसी दोजख से कम नहीं था।'' इन सबके लिए जिम्मेदार हम खुद हैं। असहयोग आंदोलन के समय विदेश जाते थे और पढ़ने के लिए एवं व्यवसाय करने आज भी लोग विदेश जाते हैं। विदेशों की चकाचौंध देखकर अपना वतन ही उनहें दोजख लगने लगता है। इससे बड़ी विडंबना मध्यवर्गीय समाज की क्या हो सकती है?

कामतानाथ ने मध्यवर्गीय जीवन की व्यथा के साथ-साथ 'काल-कथा' में दो परिवारों के बीच पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते मानवीय संबंधों को हिन्दुओं और मुसलमानों की गंगा-जमुनी संस्कृति के रूप में व्यक्त किया है। 'काल-कथा' का सबसे सबलतम पक्ष यह है कि हिन्दू और मुसलमानों के अलग-अलग और साझा उत्सवों, जन्म-मृत्यु और विवाह-वर्षगाँठ आदि के अवसरों, आपस में मिलने-जुलने और साथ बैठकर खाने-पीने के प्रसंगों तथा आड़े वक्त में एक दूसरे के काम आने के प्रयासों के बड़े सुंदर मार्मिक और प्रेरक चित्र, मध्यवर्गीय जीवन की जीवंतता को 'काल-कथा' में जीवंत कर देते हैं। इन दोनों संप्रदायों के अपने-अपने रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, खेल-तमाशे, अदब-कायदे आदि भी इतने सजीव और सूक्ष्म रूप में चित्रित हुए हैं कि लगता है 'कामतानाथ' दोनों के जीवन से सरोकार रखते हैं। प्रकृति समाज, मनोविज्ञान और मानव व्यवहार के सूक्ष्म ब्योरों का चित्रण करते हुए साधारण लोगों के सुख-दुख पूरी सहानुभूति के साथ व्यक्त करने में कामतानाथ जी की सधी हुई कलम कमाल कर गयी है।

'काल-कथा' में दलित चेतना को राजनीतिक संदर्भ में जोड़कर कामतानाथ ने उनकी शक्ति को वर्तमान के सामने उजागर करने का प्रयास किया है। सच्चाई यह है कि दलितों को स्वतंत्रता के इतिहास में हमेशा हाशिए पर छोड़ दिया जाता है, लेकिन कामतानाथ उन्हें केन्द्र में लाए हैं। जिसके लिए उपन्यास के फ्लैप पर लिखा है—''तत्कालीन राजनीतिक स्थितियों की गंभीरता से पड़ताल करता इतिहास की उन शक्तियों को तो यह उपन्यास उजागर करता ही है जो राष्ट्र के निर्माण का निमित्त होती है, साथ ही वह हमारे सामने प्रस्तुत करता है उस युगीन जीवन और उन सबाल्टर्न चरित्रों की झाँकी जो इतिहास की उन शक्तियों के वाहक होते हैं।'' इस प्रकार कामतानाथ ने निम्न जातियों में जातियों के आधार पर अपने संगठन बनाने और जनतांत्रिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा जगायी जिससे सारा देश एकता के बंधन सूत्र में बँध सके।

कामतानाथ के भाषाई औजार बहुत सटीक और पैने हैं। संपूर्ण उपन्यास में पात्र दूसरों के साथ खड़ी बोली में बात करें, चाहे अंग्रेजी, बांग्ला या पंजाबी में, आपस में प्रायः अवधी में ही बात करते हैं। यही कारण है कि वे अपने परिवेश में गहरे में जुड़े हुए, जीते-जागते, वास्तविक और आकर्षक चरित्रों के रूप में सामने आते हैं। उनके संवादों में लोकभाषा की सहजता, स्वाभाविकता, जीवंतता और कहीं-कहीं खड़ी बोली से अधिक अभिव्यक्ति क्षमता दर्शित होती है। ऐसे भी खड़ी बोली बोलने वाले पात्र के बीच एक दूरी होती है या यूँ कहें अभिजात्यता होती है। अतः इससे बचने के लिए कामतानाथ ने अवधी का प्रयोग किया है। अतः भाषा के स्तर पर 'काल-कथा' में आंचलिकता का रूप झलकता है, जो क्षेत्रीय पहचान की सबलता का परिचायक है। वस्तुतः कामतानाथ की रचनाशीलता 'काल-कथा' के माध्यम से मध्यवर्गीय मनुष्य की यातना और विक्षोभ को अपनी जुबान देने का जोखिम उठाती है।

द्वारा शिव कुमार सिंह (नेताजी) सेवानिवृत्त रेलकर्मी
आदर्श ग्राम सिमरिया (दिनकर नगर),
पोस्ट-सिमरिया, जिला-बेगूसराय-851126 (बिहार)

कवि घाघ की कहावतों में कृषि विज्ञान

अशोक मनोरम

हिंदुस्तान दैनिक में पत्रकार। कृषि विज्ञान में स्नातक डिग्री। दिल्ली विश्वविद्यालय के दक्षिण परिसर में पत्रकारिता में अध्यापन।

खेती किसी भी देश की जान होती है। खेती यानी जनता की भूख को शांत रखने का उपाय। पर जब हम खेती-किसानी के द्वारा बगैर प्रकृति को समझे फसलों की बुवाई करते हैं और हमारी फसलें मारी जाती हैं तो अकाल का सामना करना होता है। कृषि अगर सही समय पर, सोच-समझ कर की जाए तो लहलहाती फसलें मिलेंगी और हमारे खलिहान अन्न से भरे रहेगे।

कृषि विज्ञान एक ऐसा विज्ञान हे, जिसमें यंत्र और तंत्र के साथ प्रकृति को समझने की जरूरत होती है। प्रकृति को तभी समझा जा सकता है, जब हमें पूर्व के अनुभव से रू-ब-रू कराया जाए। लोक कवि घाघ की जितनी कहावतें हैं, उनमें कृषि और प्रकृति कूट-कूट कर भरी हुई है। अगर इन अनुभवों का लाभ उठाएँ तो हमारी कृषि और कृषक दोनों खुशहाल हों। आइए घाघ की कुछ कहावतों पर नजर डालें।

''उत्तम खेती मध्यम बान,
निखद चाकरी भीख निदान।''

अर्थात् खेती मनुष्य के उत्तम कार्य है, वाणिज्य मध्यम कार्य है, नौकरी नीच कार्य और भिक्षाटन करना अति नीच कार्य है।

खेती कैसे की जाए, इन बातों को उजागर करती कुछ पंक्तियां देखी जा सकती हैं—

''हर बहै ताँ अपनहुँ बही,
नहीं बही तँ बैसलो रही।
जँ पूछी हरवाहा कहां,
बिया बूनब बेकाज वहां।''

जो गृहस्थ खेत में खुद हल जोतता है, उनकी खेती अच्छी होती है और जो हलवाहा के साथ घूमता रहता है, उनकी खेती भी अच्छी होती पर जो हलवाहा के साथ नहीं घूमता है, उसकी खेती मध्यम होती है। लेकिन जो व्यक्ति हल के साथ नहीं घूमता, मेढ़ पर भी बैठना नहीं चाहता और हर बात घर से ही पूछता है कि आज कितना जोता गया है, तो उतना बीज बो देना चाहिए। इनकी खेती अच्छी नहीं होती है। इससे अच्छा कि बटाई लगा दी जाए।

खेती करने वाले किसानों की नजर हमेशा मेघ और वर्षा पर रहती है। जो किसान अनुभवी है, वे तो बादलों का रुख देखकर अपनी फसलें बोते हैं—पर जिनको यह समझ में नहीं आता कि कब, क्या, कैसे किया जाए कि फसल अच्छी हो, उन्हें घाघ की कहावतों में वर्षा, मेष और दिन-तिथि-नक्षत्र को देखना चाहिए।

''आगे रवि पीछे चलै, मंगल जो आषाढ़।
तो बरसो अनमोल ही, पृथ्वी आनन्दै बाढ़।।''

यदि आषाढ़ मास में सूर्य आगे की राशि में मंगल पीछे हो, तो वर्षा बहुत होगी। पृथ्वी के लोग आनंद से रहेंगे।

''दूर मांडरी लग जल,
लग देखने गेल रसातल।
चंद्र मांडरी में देखी तारा,
वर्षा होय मसरा धारा।।''

अर्थात् सूर्य अथव चंद्र के चारों ओर यदि मंडल अथवा गोलाकार वृत्त दिखाई पड़े, तो जल्दी वर्षा होगी या पास देखा जाए, तो वर्षा रसातल चली जाएगी। यानि वर्षा नहीं होगी। चाँद वाले मेघ में यदि तारा दिखाई पड़े, तो बहुत वर्षा होगी।

''आगे मेघा, पीछे भान
बरखा होवे ओस-समान।''

आगे मेघ हो और पीछे सूर्य हो, तो ओस के समान वर्षा होगी।

''रातुक चकमक दिनुक छाया,
कहै 'घाघ' जो वर्षा गया।।''

अर्थात्, बरसात की रात्रि में तारा (मेघ नहीं हो) दिखाई पड़े, आकाश स्वच्छ रहे तथा दिन में आसमान में मेघ छाया रहे, तो वर्षा नहीं होगी।

''बिफे-शुक्र की बादरी, रहे शनिश्चर छाय।
कहे घाघ सुनु भाडरी, बिन बरसे नहिं जाए।''

बरसात में बृहस्पति या शुक्र को यदि मेघ लगा (छाया) रहे और शनिवार को मेघ लगा हुआ ही दिखाई पड़े, तो वर्षा अवश्य होगी।

''जेठ पूर्णिमा रात में,
मेघ भयानक होय।
किछु-किछु पछवा संचरै,
महा वृष्टि कर सोय।''

अर्थात्, जेठ पूर्णिमा रात में मेघ बहुत वर्षा करे और कुछ पछुवा हवा भी चले, तो वर्षा बहुत होगी। इसमें संदेह नहीं।

''जेठ पूर्णिमा दिन में, पक्षी लोटे धूर।
कहे घाघ तेहि वर्ष में, वर्षा हो भरपूर।।''

अर्थात्, जेठ पूर्णिमा दिन में यदि गौरेया पक्षी धूल में खूब लोटे, तो उस वर्ष बहुत वर्षा होगी।

घाघ की उपयुक्त कहावतें जहाँ यह बताते हैं कि किस दिन वर्षा होगी और किस महीने में क्या होगा? किसानों को अपनी फसलें बोने के लिए पहले यह पता होना चाहिए कि इस बार धान की फसल होगी कि नहीं।

''आषाढ़े बदि एक आकाश,
गाजे बिज्जु वायु परकाश।
तौ खेती करहू मति कोई,
सावन भादो सूखा होई।।''

अर्थात्, कृष्ण पक्ष एकादशी में आकाश में हवा, मेघ, बिजली इत्यादि हो, तो आगामी सावन-भादों में बहुत कम वर्षा होगी। आगे वर्षा की स्थिति इस तरह की रहेगी—

''जै दिन जेठ बळे पुरवाई,
तै दिन सावन धूरि उड़ाई।।''

अर्थात्, जेठ में जितने दिन पुरवा हवा चले, सावन में उतने ही दिन पानी न बरसे, यह निश्चय है।

घाघ की कहावतों पर अगर गहरी नजर डाली जाए तो पता चलता है कि मौसम विज्ञान के क्षेत्र में घाघ का अनुभव बेजोड़ है, आइए कुछ और कहावतें देखें।

''ढेले ऊपर चिल जौं बोले,
गली-गली में पानी डोले।।''

यानि यदि चील ढेला पर बैठकर बोले, तो इतना पानी होगा कि गली-गली पानी भर जाएगा।

''भादव चारि ओ आसिन चारि,
अंत आदि आठ जोड़ि विचार।
'कहे डाक' केराव क वपना,
कोठी भरि-भरि राखव अपना।''

यानि यदि भादों चार दिन शेष रहे और आश्विन चार दिन बीता रहे, तो इन्हीं आठ दिनों में केराव (मटर) रोपने से बहुत उपज होती है।

''जा घरि रहयि बिच्छक सूर,
ता घरि बोआयब जब मसूर।''

अर्थात् जिस समय वृश्चिक राशि में सूर्य रहें तो उसकी समय जौ और मसूर की रोपनी होनी चाहिए।

खेती-किसानी में जहाँ अनुभव की बातें काम आती हैं, वहीं कुछ इस तरह की सीख की भी जरूरत होती है, जिससे समाज/परिवार में भलाई की बातें समझाई जा सकें।

''घर बैसल जे बनवथि बात,
देह में बल्ला ने पेट में भात।
नित्यहिं खेती दो सांझ गाय,
जे नहीं देखथि तेको जाए।।''

अर्थात्, जो खेती नहीं करते हैं, केवल घर में बैठकर बात करते हैं, वे एक दिन जरूर दुःखी होते हैं और जो प्रत्येक दिन खेती और दोनों शाम गाय की देखभाल नहीं करते हैं, उन्हें हमेशा हानि होगी।

अब आइए, जानें कि खेती करने के तरीके क्या हैं जो घाघ ने अपनी कहावतों में कही हैं—

''आषाढ़ रोपी तान वितान,
सावन रोपी बसि कम धान।
भादो रोपी ककोड़वा बान,
तीनों काटी एक समान।।''

यानी आषाढ़ मास में एक हाथ पर धान रोपिए, सावन मास में एक-एक बित्ता पर धान रोपिए, भादो मास में एक-एक मुट्ठी पर धान रोपिए, तो तीनों मास धन एक समान ही अगहन में काटिए। उपज बराबर होगी।

आगे देखिए—

''आगे गेहूं पीछे धान,
बाको कहिये बड़ा किसान।
दश बाहां का माड़ा,
बीस बाहों का गांड़ा।।''

अर्थात् जो किसान धान से पहले गेहूँ की खेती करता है, वही बड़ा किसान है। गेहूँ की खेती को दस बार और कुशियार के खेत को बीस-बीस बार जोतना चाहिए। (कुशियार यानी मटर का खेत)।

अच्छी उपज के लिए घाघ ने किसानों को सलाह दी है—

''खेती करें खाद से भरें,
सौ मन कोठिला में ले घरें।''

इसका अर्थ हुआ, यदि आप खेती करते हैं, तो खाद-गोबर से जमीन को पाट दें, इससे अवश्य बीघा में सौ मन उपज होगी।

खेती-किसानी से जहाँ हमें अन्न मिलते हैं, वहीं वायु विज्ञान से यह पता चलता है कि हवा किस ओर कैसे बहती है, तो उसका प्रभाव क्या होता है। इन बातों को भी बड़ी गहरी सूझबूझ के साथ घाघ ने अपनी कहावतों में जिक्र किया है—

''सावन पछिय, भादव पुरवा,
आसिन बहै ईशान।
कातिक कंत्ता सिकियों न डोलै,
कतकए राखब धान।।''

अर्थात् यदि सावन मास में पछुवा हवा चले और भादो मास में पुरवा बयार चले तथा आश्विन में उत्तर-पूर्व हवा चले और कार्त्तिक में कोई हवा न चले तो धान की उपज अच्छी होगी।

''सावन पछुअवा बह दिनचारि,
चुल्हिक पाछां उपजै सारि।
बरिसै रिमझिम निस-दिन बारि,
कहिगै वचन डाक परचारि।।''

अर्थात् सावन में यदि चार दिन भी पछुवा बयार चले, तो दिन-रात वर्षा हो। नीचे के खेत का कौन सा हिसाब, ऊपर के खेत में भी, जिसमें धन नहीं होता है, उसमें भी धान अवश्य होगा।

घाघ कवि की विशेषता यह है कि पारिवारिक जीवन से उदाहरण लेकर वे खेती की बातों को समझा देते हैं।

''आवत नहिं आदर किए,
जात न दीन्हैं हस्त।
ये दोनों तबही गये,
पण्डित ओ गिरहस्त।।''

यानि, आषाढ़ के आर्द्रा नक्षत्र में, जो बरसात का आदि नक्षत्र है, वर्षा नहीं हुई तो धान नहीं उपजेगा। जिस तरह से पंडित के आने पर आदर नहीं होने से तथा जाते समय कुछ विदाई नहीं देने से पंडित दुःखी हो जाते हैं। उसी तरह आर्द्रा और हस्त नक्षत्र में वर्षा न होने से गृहस्थ को भी दुःखी होना पड़ता है।

आज के किसान अगर घाघ की इन वायु-विज्ञान से संबंधित कहावतों को नोट कर लें और इसके कहे अनुसार ध्यान से हवा-वर्षा के रुख को देखें तो हो सकता है कि उन्हें आज भी अन्यों से ज्यादा अपनी फसलें उपजाने में मदद मिले।

''कार्त्तिक द्वादशी मेघा दीशै,
ताहि दिशा आषाढ़ै बरसै।
अगहन पंचमी मेघ घटा,
भरि सावन में कौन मिटा।
पूस अमावस मेघा कारा,
बरिसै भादव घोड़ा धारा।
माघक सप्तमी मेघ बदरिया,
चारों मास बहै जल धरिया।
ई सब जौं ने एको देखाय,
मेघ रसातल में चल जाय।
कहहिं 'डाक' सुनु भड्डूरी,
मानुष कूपहिं पैसि नहाय।।''

कार्त्तिक की किसी द्वादशी अन्हरिया या अंजोरिया में जिस दिशा में मेघ लगा दिखाई पड़े, उस दिन में आषाढ़ मास में वर्षा होगी। इसी तरह अगहन पंचमी में यदि मेघ रहे, तो सावन में बहुत जलवृष्टि होगी। यदि पूस की अमावस्या में मेघ लगा दिखाई पड़े, तो भादों में अवश्य वर्षा होगी। इसी तरह यदि माघ की सप्तमी में मेघ रहे तो चारों मास (आषाढ़, सावन, भादो, आश्विन) में अवश्य वर्षा होगी। यदि यह सब मेघ कार्त्तिक इत्यादि मास में दिखाई न पड़े, तो मेघ रसातल में चला जाएगा अर्थात् वर्षा नहीं होगी। 'डाक' का कहना है कि लोग कूप में स्नान करेंगे। इसमें संदेह नहीं।

आगे देखिए–

''जौं अशरेसा गुमकी लावै।
मघा निराबै चारू पावै।।
जौ पुरवा पुरवैया पावै।
सुखले नदिया वान बहावै।।''

अर्थात् यदि आश्लेषा नक्षत्र में गरमी हो तथा मघा नक्षत्र में हवा नहीं चले, तो चारों नक्षत्रों में वर्षा होगी और यदि पूर्वा नक्षत्र में पूर्वा बतास चले, यदि नदी सूखी रहे, तो उस नदी में इतना पानी आ जाएगा कि नाव चलने लगेगी।

घाघ एक ऐसे कवि हैं, जिन्होंने अपने अनुभव के आधार पर कृषि विज्ञान, वायु विज्ञान तथा कैसे खेती की जाए, यह बखूबी बताया है। यदि उनकी कहावतों को ध्यान से पढ़ा जाए तो आज भी किसानों को बुरे समय का सामना नहीं करना पड़ेगा। उन्हें पहले ही पता चल जाएगा कि किस मौसम में क्या स्थिति रहेगी, प्रकृति कैसी होगी और हवा-पानी व धूप के रुख से वे जान जाएंगे कि कब खेतों में बीज डालना चाहिए, कब पानी डालना चाहिए।

**आर.जेड.-81, ब्लॉक-एक्स, न्यू रौशनपुरा,
पपरावट रोड, रिलायंस फ्रेस की बगल वाली सड़क,
नजफगढ़, दिल्ली-110043**

लक्ष्मी की प्रतीक है—विश्व की आदिमुद्रा कौड़ी

प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा

वरिष्ठ लेखक प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा पिछले साठ वर्षों से लेखन में सक्रिय।कहानी, व्यंग्य, नाटक सहित विभिन्न विधाओं में लेखन। एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। पूर्णकालिक लेखन।

हमारे लिए आज यह बात पढ़ने और सुनने में आश्चर्यजनक लग सकती है, मगर है यह सत्य कि मानव समाज ने जब वस्तु-विनिमय के स्थान पर मुद्रा को विनिमय का आधार बनाना शुरू किया, तब उसने सबसे पहले कौड़ी को ही मुद्रा के रूप में स्वीकार किया था। किसी भी प्रकार के मौसम से अप्रभावित, लाने व ले जाने में सुविधाजनक, मजबूत और देखने में आकर्षक पदार्थ के रूप में मानव ने कौड़ी को सहज रूप में स्वीकार कर लिया।

प्राचीन काल में मुद्रा के रूप में कौड़ी के प्रचलन के बारे में अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। श्री भास्कराचार्य द्वारा रचित ग्रन्थ 'लीलावती' में मुद्रा के रूप में कौड़ी का उल्लेख किया गया है। उस समय दक्षिणा के रूप में ब्राह्मणों को कौड़ी देने की चर्चा की गयी है। यह भी मान्यता है कि सर्वप्रथम भारत में ही कौड़ी को मुद्रा के रूप में मान्यता मिली और इसके बाद विश्व के अन्य देशों ने इसे मुद्रा के रूप में स्वीकार किया।

हमारे यहाँ बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मुद्रा के रूप में कौड़ी का स्पष्ट प्रचलन रहा। उस समय दिल्ली तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में एक पैसा 16 कौड़ियों के बराबर था। देश के अन्य क्षेत्रों में कौड़ी का मूल्य और भी कम था। उदाहरणार्थ आगरा में एक पैसे में 50 कौड़ियाँ आती थीं। उत्तरी भारत के कुछ क्षेत्रों में छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों को तत्कालीन मुद्राओं के लिए इस प्रकार रटाया जाता था, ''चार कौड़ी का एक गंड़ा—दो गंड़े की एक दमड़ी—दो दमड़ी की एक छदाम, दो छदाम का एक धेला और दो धेले का एक पैसा।'' उस समय एक रुपया 60 पैसे का होता था। विश्व के अन्य अनेक देशों में भी लम्बे अरसे तक कौड़ी को मुद्रा के रूप में स्वीकार किया जाता रहा। मार्कोपोलो ने तेरहवीं शताब्दी में चीन में मुद्रा के रूप में कौड़ी का प्रचलन देखा था। अमेरिका में भी इसे मुद्रा के रूप में प्रयोग में लाया जाता था। यूनान की देवी वेनिस पर शताब्दियों से भेंट के रूप में कौड़ियाँ ही चढ़ायी जाती रही हैं। वेस्टइंडीज में चर्च-निर्माण में लगे मजदूरों को उनके पारिश्रमिक के रूप में 360 लाख कौड़ियाँ दी गयी थीं। वहाँ पर एक हजार कौड़ियाँ एक डालर के बराबर मानी जाती थीं। स्याम मं 3500 कौड़ियों का मूल्य एक टिक्किल के बराबर होता था। युगांडा में एक हजार कौड़ियों का मूल्य वहाँ के एक रुपये के बराबर माना जाता था। ईव जनजाति के लोग मुर्दे के साथ काफी सारी कौड़ियाँ भी दफनाते थे, ताकि मृतक की तरफ यदि किसी का कोई ऋण बाकी हो तो वह उन कौड़ियो से उसे वसूल करते।

मुद्रास्फीति के आधुनिक दौर में चवन्नी, अठन्नी के सिक्कों का ही कोई विशेष मूल्य नहीं रहा, तब बेचारी कौड़ी को कौन पूछे। जब हमारे यहाँ विनिमय मुद्रा के रूप में सिक्कों का आविष्कार हो गया तो उन सिक्कों की तुलना में कौड़ी का मूल्य बहुत कम रह गया था। संभवतः इसी कारण कौड़ियों से संबंधित हमारे यहाँ अनेक प्रकार के मुहावरे प्रचलित हो गए। उदाहरणार्थ दो कौड़ी का आदमी, कौड़ी कौड़ी को मोहताज, कौड़ियों के दाम खरीदना, कौड़ी कौड़ी करके माया जोड़ना, कौड़ी के तीन बिकना, फूटी कौड़ी भी नहीं होना आदि। इन मुहावरों में कौड़ी को सबसे कम मूल्य का पदार्थ माना गया है। ये मुहावरे उस समय से चले आ रहे हैं। फिर भी लम्बे अरसे तक अन्य सिक्कों के साथ ही कौड़ी भी विनिमय-मुद्रा के रूप में प्रचलित रही। फिर भी भारत तथा शेष विश्व की कुछ जनजातियों में आज भी सीमित रूप में कौड़ी को मुद्रा के रूप में स्वीकार किया जाता है। सांस्कृतिक और पारंपरिक रूप में तो सम्पूर्ण विश्व में तथा विशेषतः भारत में कौड़ी का महत्त्व और उसके प्रति सम्मान अब भी यथावत बना हुआ है।

हमारे यहाँ कौड़ी को लक्ष्मी का प्रतीक मानकर अनेक स्थानों पर उसका पूजन किया जाता है। दीपावली के दिन लक्ष्मी-पूजन के लिए भी घी का जो दीपक जलाया जाता है, उसमें एक कौड़ी को बत्ती के साथ घी में रखने की परंपरा देश के अनेक क्षेत्रों में है। इस कौड़ी को अगले दिन दीपक से निकालकर पूजा जाता है तथा उसे वर्ष भर सुरक्षित रखा जाता है। यह मान्यता है कि यह पवित्र कौड़ी सुख और सौभाग्य देने वाली होती है।

गोवर्धन-पूजा के लिए गोबर से जो आकृति बनायी जाती है, उसमें भी आँखों के स्थान पर सामान्यतः कौडियाँ ही लगायी जाती हैं और बाद में उन्हें पवित्र धरोहर के रूप में सुरक्षित रखा जाता है। विजयदशमी के दिन उत्तरी भारत के अधिकांश गाँवों में कुंवारी कन्याएँ मकान की बाहरी दीवारों पर गोबर से देवी की आकृतियाँ बनाती हैं और उन्हें कौड़ियों से सजाकर उनका पूजन करती हैं। बंगाल में लक्ष्मी-पूजा के समय एक ऐसी टोकरी रखी जाती है, जो कौड़ियों से सजी होती है तथा जिसके अन्दर भी कौड़ियाँ ही भरी होती हैं। इसे लोखी झापायी (लक्ष्मी की टोकरी) कहते हैं तथा इसका पूजन भी किया जाता है। देश के अनेक भागों में कौड़ी का पृथक् देवी के रूप में भी पूजन किया जाता है। महाराष्ट्र में तुलजा देवी के पूजन में कौड़ी को विशेष महत्त्व दिया जाता है। वहाँ के पुजारी तथा भक्त कौड़ी के आभूषण धारण करते हैं तथा देवी पर कौड़ियाँ ही चढ़ाते हैं। अनेक स्थानों पर मन्दिरों में शंख के साथ कौड़ी रखने की परंपरा भी बड़े पैमाने पर है।

कौड़ी का शिव से भी संबंध है। शिव के शृंगारों में कौड़ी भी शामिल है। शिव की बँधी हुई जटाओं की आकृति कौड़ी से मिलती-जुलती है। कौड़ी को संस्कृत में 'कपर्दिका' कहा जाता है और शिव की जटाजूट का एक नाम 'कपर्दिक' भी है।

कौड़ी को सुख-सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है। इसीलिए विवाह के समय वर-वधू के हाथों में जो कंकण बाँधे जाते हैं, उनमें कौड़ी भी आवश्यक रूप से पिरोयी जाती है। आन्ध्र प्रदेश में दुलहन की विदायी के समय उसका पिता उसे एक टोकरी देता है, जिसमें अन्य अनेक वस्तुओं के साथ ग्यारह कौड़ियाँ भी होती हैं। मान्यता है कि ये कौड़ियाँ ससुराल में दुलहन के सुख-सौभाग्य की रक्षा करती हैं। इस टोकरी को वहाँ 'जगथिपेडी' कहते हैं। उड़ीसा में भी इसी प्रकार पिता द्वारा दुलहन को कौड़ी भेंट करने की प्रथा है। असम की जनजातियों में दूल्हा स्वयं अपनी दुलहन को एक बड़ी कौड़ी भेंट करता है, जिसमें सिन्दूर भरा होता है। दुलहन पर्व, त्योहारों पर इस सिन्दूर का उपयोग करती है। राजस्थान में धन-त्रयोदशी के दिन जलाये जाने वाले दीपक में महिलाएँ एक कौड़ी डालकर उसका पूजन करती हैं तथा बाद में वर्ष-पर्यन्त उसे अपने पास सुरक्षित रखती हैं। उनकी मान्यता है कि इससे उनका सुख-सौभाग्य सुरक्षित रहेगा। राजस्थान के ही कुछ भागों में विवाह-मंडप को कौड़ियों से अलंकृत करने की तथा दुलहन की वेणी में कौड़ी गूँथने की प्रथा है। पंजाब की दुलहनों की कलाई में कौड़ी बाँधी जाती है तथा असम की अहोम जनजाति में बुजुर्ग लोग दूल्हा दुलहन के कान के पास कौड़ियों को हिलाकर बजाते हैं।

अशुभ दृष्टि वाले लोगों से बचाने में भी कौड़ी को विशेष मान्यता प्राप्त है। बच्चों के गले में पड़े कंठहार की कौड़ी जनमान्यता के अनुसार उन्हें बुरी नजर से बचाती हैं। नये मकान तथा नये वाहनों को भी बुरी नजर से बचाने के लिए उन पर कौड़ी बाँधने की प्रथा देश के अनेक क्षेत्रों में हैं। गाय तथा बैलों के गलों में कौड़ियों की माला पहनाने का भी एक उद्देश्य उन्हें बुरी नजर से बचाना है। आभूषण के रूप में भी कौड़ियों का बड़ी मात्रा में उपयोग होता है। अनेक जनजातियों में नृत्य के समय अथवा सामान्य रूप में भी कौड़ियों से बने तरह-तरह के आभूषण पहनने की परंपरा है। यह भी मान्यता है कि कौड़ियाँ धारण करने से जादू-टोने का कोई असर नहीं होता। कुछ जनजातियों में कौड़ी को शौर्य का प्रतीक भी माना जाता है तथा शौर्य के स्तर के अनुरूप ही किसी व्यक्ति को विशिष्ट संख्या में कौड़ी धारण करने की अनुमति दी जाती है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी कौड़ियों का विशेष महत्त्व है। आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा पद्धतियों में कान, आँख, हृदय और पाचन संबंधी रोगों में कौड़ी का उपयोग किया जाता है। इसमें काफी अधिक कैल्शियम होता है। सर्प के विष के प्रभाव को समाप्त करने के लिए भी कौड़ी का उपयोग होता है। कौड़ी से अनेक प्रकार के खेल भी खेले जाते हैं।

कौड़ी का जन्म-स्थान समुद्र है। प्रशांत महासागर के गर्भ एवं छिछले क्षेत्रों में कौड़ियां प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती हैं। हमारे यहाँ ये कन्याकुमारी, लक्षद्वीप, रामेश्वरम तथा मालद्वीप में बहुतायत में मिलती हैं। कौड़ियों की बहुलता के कारण ही मालद्वीप को तो कौड़ियों का द्वीप कहा जाता है। उत्पत्ति की दृष्टि से यह कौड़ी एक समुद्री कीड़े का अस्थिकोष मात्र है। यह जलजीव, मोलस्का वर्ग के उपवर्ग गेस्ट्रीपोडा में आता है। इसे साइप्रिया कहते हैं, जिसका आकार गेहूँ के दाने से लेकर चार-पाँच इंच तक बड़ा होता है। फुलटन नाम की कौड़ी, एक विशेष प्रकार की मछली के पेट से निकलती है। विश्व भर में इस समय लगभग 160 प्रकार की कौड़ियाँ पायी जाती हैं, जिनका मूल्य उनके आकार तथा उपलब्धता पर निर्भर करता है। कुछ कौड़ियों का मूल्य तो एक करोड़ रुपए तक या उससे भी अधिक होता है। उच्च कोटि की कौड़ियों में प्रिंस ल्यूकोट्रोन, गहाटा, कल्ट वाकर्लेस तथा ब्रोडरिया विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनकी संख्या विश्व भर में गिनी-चुनी ही है। इसीलिए इनके मूल्य भी काफी अधिक हैं।

10/611, मानसरोवर, जयपुर-302020 (राजस्थान)

लोक जीवन में संगीत

डॉ. अनुपमा कुमारी

डॉ. अनुपमा कुमारी की रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। लेखन में सक्रिय।

भारतीय लोक जीवन में चारों ओर संगती की सतरंगी छटा छिटकी हुई है। लोक जीवन का प्रत्येक पल संगीत की मधुर रसधारा से ओतप्रोत है। संगीत की परम्परा अनादिकाल से मानव स्वीकारता रहा है। अतः मैं संक्षेप में संगीत की कुछ विशेषताओं का वर्णन करना चाहूँगी, जिसके कारण जीवन में संगीत का इतना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

मानव एक अनुभूतिशील एवं सौन्दर्यप्रिय प्राणी है। अपनी अनुभूति को दूसरों के सम्मुख करने की अभिलाषा रखता है। अपने आन्तरिक उद्‌गारों को सौन्दर्य एवं माधुर्य युक्त प्रस्तुतिकरण मानव का स्वभाव है। मानव जीवन का आधार 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' में से संगीत का जन्म सुन्दरम् से हुआ जो भावना की प्रेरणा है।

संगीत का आधार नाद है। नाद इतना सूक्ष्म व व्यापक है कि प्रकृति के कण-कण में इसकी सत्ता पाई जाती है। नाद के साथ ही प्रकृति का गुण है लय से युक्त होना। वर्षा की फुहारों में लय है। मन्द समीर लययुक्त है। कोयल, पपीहा, मयूर की गूँज लययुक्त होती है। अग्नि की लपटें लय से घटती-बढ़ती हैं। अतः प्रकृति का कण-कण स्वर व लय से युक्त होता है। जब प्रकृति स्वर ताल का सन्तुलन छोड़ देती है तो प्रचण्डता और विनाश परिलक्षित होता है। स्वर और ताल प्रकृति का गुण है और यही गुण संगीत का होता है। यही कारण है कि संगीत का प्रभाव प्रकृति के कण-कण पर अत्यधिक सूक्ष्म रूप से पड़ता है। इसलिए संगीत को अखिल विश्व की भाषा 'यूनिवर्सल लैंग्वेज' कहा गया है।

संगीत स्वर प्रधान है। संगीत का सौन्दर्य स्वरों की विशिष्ट योजना से उत्पन्न होता है जिसमें ध्वनि प्रवाह, ताल, लय, सन्तुलन होता है और यही गुण मानव जीवन पर अनुकूल प्रभाव का उदय करता है।

संगीत शब्द का अर्थ है 'सम्यग् रूपेण गीयते इति संगीतम्'। सब प्रकार से गाया जाए उसे संगीत कहते हैं। कल्लीनाथ के अनुसार यदि संगीत का अर्थ केवल गीत या गायन से लिया गया होता तो इसे संगीत न कहकर केवल गीत कहा जाता 'गीयते इति गीतम्'। अतः आचार्यों ने गीत शब्द के पूर्व सम उसपर्ग लगाकर इसे सर्वाधिक व्यापक बनाने का प्रयास किया है।

संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन व नृत्य तीनों का समावेश है। गायन का प्राण ताल है और ताल का आधार वाद्य है। गायक रस भाव में गाते समय मुद्राओं एवं आन्तरिक चेष्टाओं का प्रयोग करता है जो नृत्य के अभिन्न अंग हैं। अतः गायन में वादन एवं नृत्य का समाविष्ट होने के कारण संगीत में गायन प्रधान अंग माना जाता है।

संगीत का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक एवं विस्तृत है। संगीत मानव जीवन की अभिव्यक्ति है। मानव के समस्त भाव—वीर, रौद्र, कारुण्य, श्रृंगार, वीभत्स, भयानक, अद्‌भुत, हास्य, शान्त आदि सभी रसों की अभिव्यक्ति संगीत के द्वारा सम्भव है। जब गायक किसी भाव को स्वर व ताल के मध्य प्रदर्शित करता है तो भाव और रस तीव्रतम होने लगते हैं। तुरन्त ही रस की निष्पत्ति हो उठती है। अतः भावपक्ष और कलापक्ष दोनों का समन्वय संगीत में मिलता है। एक ओर कला, कला के लिए और दूसरी ओर कला, जीवन के लिए इस भाव का स्पष्टीकरण संगीत में मिलता है। कला पक्ष में कला की और भावपक्ष में जीवन की झाँकी दिखाई देती है।

भारतीय संगीत चाहे किसी भी शैली का हो, सभी गीत शैलियाँ सात स्वरों—सा-रे-गा-मा-पा-धा-नी—पर आधारित हैं। भारतीय मनीषियों ने इन सप्त स्वरों के रंग, प्रकृति व रस की विषद व्याख्या की हे।

'संगीत पारिजात' में स्वरों की व्याख्या करते हुए लिखा है—

''कमला भः स्वरः षडज ऋषभः पंजरः स्वरः हाटकामस्त गान्धारः कुब्दभो मध्यमः स्वरः।। पंचमस्तु स्वरः श्याो धैवतः पीतवर्ण युक् निषादः कर्वुरश्चेति स्वराणां वर्ण निर्णयः।।''

षडज-कमल जैसी आभा वाला (गुलाबी), ऋषभ, पिंजर (ताल वृक्ष) जैसे हरे वर्ण का, गन्धार—सोने जैसा (पीले रंग का), मध्यम—कुन्द (सफेद), पंचम स्वर—श्याम (काला), धैवत—पीले रंग का तथा निषाद—कर्बुक (इसके 6 अर्थ हैं—राक्षस, सोना, काला, बैंगन, रंग-बिरंगा पानी, खून), बहुरंग वर्ण का।

''स मौहास्ये च श्रृंगारे स्वरौ स्यातां तथा धनी पो वीभत्से तथा दैन्य भयानकरसे भवेत् रसे श्रृंगार केरिः स्याद्‌गान्धारो हास्य के पुनः।।''

षडज–हास्य रस, मध्यम–शृंगार रस, धैवत–वीभत्स रस और निषाद–करुण रस में पंचम–भयानक रस, ऋषभ–शृंगार रस तथा गन्धार–हास्य रस प्रधान है।इन विभिन्न रसों से युक्त स्वरों का जनरंजन के लिए प्रयोग संगीत का कारक है।

संगीत के इन्हीं गुणों के कारण आदि काल से मानव ने संगीत को अपने जीवन का अभिन्न अंग माना है। संगीत सुख के क्षणों में मानव के साथ हँसा है और दुःख के क्षणों में मानव के साथ ही रोया भी है।

आज के तनावग्रस्त व्यस्त जीवन की भागदौड़ में शहरी मानव संगीत से दूर होता जा रहा है या वह स्वयं संगीतमय न होकर अन्य माध्यमों के द्वारा संगीत सुनता व आनन्द लेता है। किन्तु हमारे लोक जगत में आजभी मानव हर पल संगीत के साथ जीता है। वह स्वयं ही कलाकार है और स्वयं ही श्रोता है। लोक जगत का संगीत सरल, सुग्राह्य, अकृत्रिम व स्वाभाविक है एवं स्वयं साध्य है। किसी विचारक ने कहा है 'सरलता स्वयं सौन्दर्य है'। लोक गीतकार बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण के स्वतः ही अत्यन्त भावपूर्ण संगीत–स्वर, ताल के साथ भी गाते हैं।

उसका गायन स्वान्तः सुखाय होता है और जो स्वान्त सुखाय है वही जग सुखाय बनता है।

आटे की चक्की की गड़गड़ाहट ग्रामीण महिला के मधुर स्वरों के साथ मिल कर वाद्य का रूप धारण कर लेती है। ढेकली चलाने वाले किसान पानी की सरसराहट और छपछप की ताल पर ही गा उठता है। गाड़ी हाँकने वाला व्यक्ति बैलों की घण्टियों और खुरों की आवाज के साथ अपना स्वर मिला लेता है। धोबी के कपड़ों की फटफट और बर्तन माँजने वाली स्त्री, बर्तन और चूड़ी की खनखनाहट को ही अपने गीत का माध्यम बना लेती है।

लोक जीवन में संगीत की स्वर रचना तथा शब्द रचना बहुत सरल व स्वाभाविक होती है। स्वर व शब्द का पूर्व सामंजस्य रहता है। नित नवीन भाव-स्वर लहरी के माध्यम से गूँजते, लोक जीवन में माधुर्य भरते रहते हैं।

लोक गीतों में व्यक्तिगत भाव का ही नहीं बल्कि समस्त लोक जीवन के भावों की झाँकी दिखाई देती है। लोक गीतों में मानवीय दुर्बलताएँ, प्रेम, प्रार्थना, क्रोध, सादगी, विवशता, विरह आदि मानव की अनिवार्य भावनाओं का बड़ा ही मार्मिक प्रस्तुतिकरण किया जाता है।

जन्म से मृत्यु पर्यन्त लोक जीवन संगीतमय रहता है। जन्म के पूर्व जात संस्कार, छठी, कर्णछेदन, नामकरण, अन्नप्राशन सभी संस्कारों को गायन वादन व नृत्य के मधुर वातावरण के मध्य सम्पन्न किया जाता है। विवाह की मांगलिक बेला में कितने ही दिन पूर्व गणेश स्थापना के साथ ही विवाह सम्बन्धी सभी कार्यों को संगीत से सजाया जाता है। बेटी की विदा की मार्मिक बेला में भी आँखों में आँसू लिए मधुर स्वर लहरियों से बेटी विदा की जाती है।

मानव जीवन का अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि भी रामनाम के उद्घोष एवं भजन कीर्तन के मध्य सम्पूर्ण होता है। लोक जगत, तीज-त्यौहारों को बड़ी धूमधाम से मनाता है। प्रत्येक त्यौहार का विशेष संगीत होता है। गणगौर में गणगौर गाई जाती है। तीज में हरियाली के गीत होते हैं। संध्या में संध्या के गीत गाये जाते हैं। अपनी परम्पराओं को लोक जीवन, संगीत के रस में डुबोकर बड़े ही मनोहारी ढंग से प्रस्तुत करता है। देवरानी, जिठानी, सास, ननद, देवर, भावज, नन्द-भौजाई, पति-पत्नी सभी रिश्तों को लोकगीतों में गाकर परिवार में आदर, प्रेम, छींटाकशी का मधुर वातावरण बनता है। लोक जीवन का रहन-सहन, खान-पान, प्राकृतिक वातावरण, सभी का वर्णन गीतों के माध्यम से किया जाता है।

लोक जगत का संगीत केवल आनन्द ही नहीं देता बल्कि यह लोक जगत का अलिखित इतिहास है जो पीढ़ी दर पीढ़ी समाज को उसके भूतकाल से परिचित कराता रहता है। देश पर विपत्ति के समय कथागीत पावड़े, वीर तेजाखी, नरसिंह आदि के गीत जगत को देश के प्रति कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करते हैं।

कम स्वरों के सामंजस्य के बावजूद लोक संगीत की विशिष्ट शैलियाँ भी हैं जिनमें भाव पक्ष के साथ कला पक्ष भी अत्यधिक प्रबल है। मिर्जापुर की कजरी, मारवाड़ की माँड, पूर्वी उत्तर प्रदेश का विदेसिया, बिहुला, आल्हा, भजन, गजल, दादरा, टप्पा, होरी, बिरहा, बारामासा आदि संगीत जगत में विशिष्ट स्थान रखते हैं।

लोक धुनों के प्रबल कलापक्ष को शास्त्रीय संगीत में ग्रहण कर रागों का भी निर्माण किया गया है। जैसे पहाड़ी, माँड, झिंझोटी, गारा, गुर्जरी, सोरठ, सौराष्ट्र, टक, गान्धारी, मुलतानी, भोपाली, बंग, भैरव, कन्नड़, काफी, जौनपुरी, वृन्दावनी आदि वास्तव में पहले लोक धुनें थीं।

चाहे शास्त्रीय संगीतज्ञ लोक संगीत के प्रति अनुदार रहें किन्तु लोक जीवन में संगीत की जो स्वाभाविक, प्राकृतिक व निरन्तर प्रथा है, वह अनादिकाल से लोक गजग तमें नित नवीन प्रेरणा, नवजीवन व माधुर्य प्रदान करती रहती है। आज भी ग्रामीण समाज दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद शाम को चौपाल में एकत्रित होकर नाच गाकर अपने सारे दिन की थकान दूर करके नवजीवन व नवउल्लास प्राप्त करते हैं। ग्रामवासी अपने नित्य के परिश्रम के साथ संगीत को जोड़कर अपनी श्रम शक्ति व आत्मबल बढ़ाते हैं और तनावमुक्त रहते हैं।

लोक जगत में भावात्मक तारतम्य स्थापित करने में संगीत एक साधन है। जो उन्हें हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, पारसी के आभास से ऊपर एक सौन्दर्यप्रिय स्नेह दिल मानव का रूप देता है। व्यक्ति-व्यक्ति में प्रेम सौहार्द की भावना भरता रहता है।

संगीत के शब्द–भाव, माधुर्य, सरसता, अकृत्रिम, कल्पनाशीलता जीवन के कठिन व मधुर दोनों पक्षों को सतरंगी प्रकाश से आन्दोलित करता रहता है। लोक जगत में संगीत को प्रारम्भ से आज तक प्रमुखता, अनिवार्यता से स्वीकारा जाता रहा है।

द्वारा श्री एल.डी. जोशी
मकान नं. 4, पॉकेट-ई, मयूर विहार फेज-1,
दिल्ली-110091

नालन्दा के संस्कृत अभिलेखों में दान का स्वरूप

डॉ. देवेन्द्र नाथ ओझा

लेखक संस्कृत के उद्भट विद्वान, दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग से पीएच.डी. हैं। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में लेख व समीक्षा का निरन्तर प्रकाशन। ''झारखण्ड के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन'' नामक पुस्तक से लोकप्रियता हासिल, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् से वित्त प्रदत्त पोस्ट डॉक्टरेल (पीडीएफ)।

'न अलं ददाति इति नालन्दा' अर्थात् जहाँ विद्या के क्षेत्र में अलं (समाप्ति) नहीं होता, वह नालन्दा है। यह $25^0 8'$ उत्तरी अक्षांश तथा $80^0 27'$ पूर्वी देशान्तर पर राजगीर से सात मील उत्तर में एवं बिहार शरीफ से सात मील उत्तर-पश्चिम में स्थित है।[1] साहित्यिक स्रोतों से नालन्दा के इतिहास की प्राचीनता छठी शताब्दी ई.पूर्व तक जाती है। बौद्ध ग्रन्थों, जैन ग्रन्थों, चीनी स्रोतों तथा तिब्बती स्रोतों में वर्णित नालन्दा के स्वरूप का पुष्ट प्रमाण वहाँ से प्राप्त अभिलेखीय साक्ष्य ही प्रस्तुत करते हैं। लगभग चौथी-पाँचवीं शताब्दी में कुमारगुप्त प्रथम (शक्रादित्य) द्वारा अपनी स्थापना से लेकर तेरहवीं शताब्दी में मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी द्वारा अन्त किए जाने तक नालन्दा देश-विदेश में अपने ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति एवं कला के लिए विख्यात था। इसकी ख्याति भारत के अलावा तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, बर्मा, श्रीलंका, जावा, सुमात्रा आदि देशों में भी समान रूप से विद्यमान थी। तेरहवीं शताब्दी में नालन्दा के विनाश के बाद लगभग छह शताब्दियों तक विस्मृति के गर्त्त में डूबे रहने के बाद 19वीं शताब्दी में नालन्दा के पुरावशेष प्रकाश में आए। अन्वेषण एवं पुरातात्विक उत्खनन के फलस्वरूप यहाँ से काफी संख्या में अभिलेखीय सामग्री प्राप्त हुई है, जिनके अध्ययन से नालन्दा की संस्कृति एवं उसकी ऐतिहासिकता पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है। यहाँ से प्राप्त अभिलेखीय साक्ष्यों में मुहरें, मुद्राछापे, मूर्तियों पर उत्कीर्ण लेख, शिलालेख तथा ताम्रपत्र लेख महत्त्वपूर्ण हैं।

यहाँ से प्राप्त अभिलेखों को चौथी से तेरहवीं शताब्दी के मध्य रखा जा सकता है। यहाँ से प्राप्त सभी अभिलेख संस्कृत भाषा में हैं। प्रारम्भिक अभिलेखों की लिपि गुप्तकालीन ब्राह्मी है, परन्तु बाद के अभिलेख गुप्तोत्तरकालीन ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्णित मिलते हैं। नालन्दा के संस्कृति अभिलेखों में 'दान' का स्वरूप क्या था? यह इस शोध-पत्र का केन्द्रीय विषय है।

वस्तुतः 'दान' की महिमा का वर्णन पुराणों में दृष्टिगोचर होता है, परन्तु स्मृतियों में इसका विशेष वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार के दान का वर्णन विष्णु तथा याज्ञवल्क्य स्मृतियों में भी उपलब्ध है। उसे (दान-पत्र) राजशासन की संज्ञा दी गई है। स्मृतिकारों ने ताम्र-पत्र पर राजशासन उत्कीर्ण करने का विधान किया है तथा राजमुद्रा से उसे प्रमाणित करने की चर्चा की है। बृहस्पति ने इस पर निम्न रूप से प्रकाश डाला है–

''यत्किंचित कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्षितः, अपि गोचर्म मात्रेण भूमि दानेन शुध्यति। स नरः सर्वदा भूपः यो ददाति वसुन्धराम्। भूमिदानस्य पुण्येन फलं स्वर्ग परंदर।।''

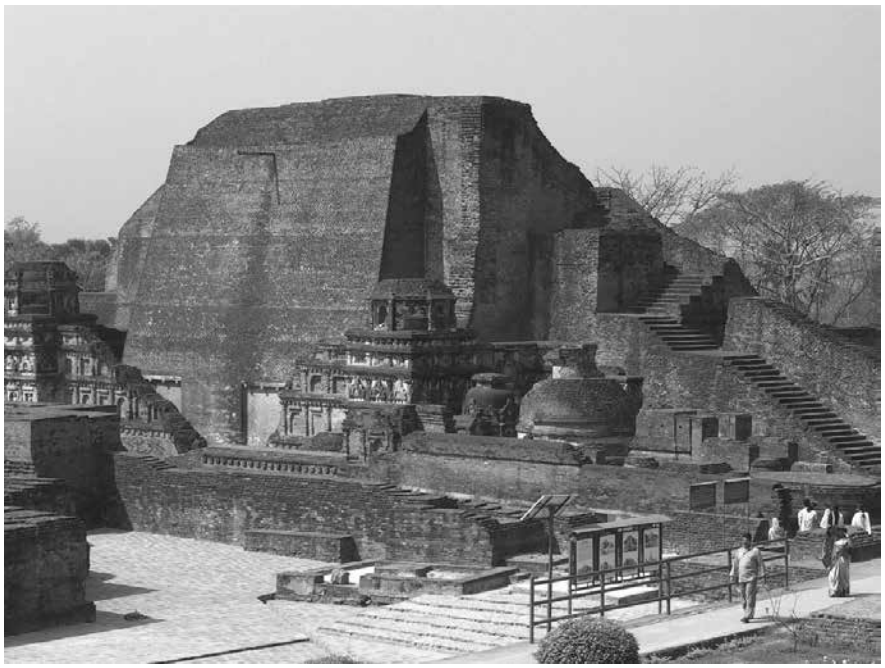

इस प्रकार विभिन्न धार्मिक कार्यों में भूमि-दान को अत्याधिक महत्त्व दिया गया है। राजा से प्रजा तक सभी ने पुण्य लाभ तथा स्वर्ग कामना से प्रेरित होकर भूमिदान को श्रेष्ठ समझा। अत्रि का कथन है—''शूलिपाणिस्तु भगवानाभिनन्दति भूमिदानम्'' अर्थात् भूमि अथवा पृथ्वी दान करने वाले को भगवान भी अभिनन्दन करते हैं। नालन्दा के संस्कृत अभिलेखों में दान के विषय में भी हमें महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यहाँ से प्राप्त समुद्रगुप्त के नालन्दा ताम्रपत्र अभिलेख[2] में अपने माता-पिता तथा अपने पुण्य वृद्धि के लिए जयभट्ट स्वामी को उपरिकर सहित अग्रहार (मंदिरों या ब्राह्मणों को दान में दी गयी भूमि) रूप में ग्रामदान दिये जाने का वर्णन मिलता है। इसके साथ ही इस अभिलेख में दान में दी गई भूमि में किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप न करने की बात भी कही गयी है अन्यथा दान सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन होगा।

पाल शासक धर्मपाल के नालन्दा ताम्रपत्र लेख[3] में धर्मपाल द्वारा एक ग्राम दान का विवरण मिलता है। इस अभिलेख में दान में दिये गये ग्राम तथा दान ग्रहण करने वाले व्यक्ति का नाम स्पष्ट नहीं है। परन्तु अभिलेख की 7वीं पंक्ति में दान लेने वाले व्यक्ति के पिता का नाम धर्मदत्त स्पष्ट रूप से पढ़ा जा सकता है। देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र लेख[4] के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सुवर्णद्वीप (सुमात्रा) के शैलेन्द्रवंशी शासक बालपुत्रदेव की दूत के द्वारा प्राप्त प्रार्थना पर देवपाल ने श्रीनगर भुक्ति (पटना डिविजन) के अन्तर्गत राजगृह विषय तथा गया विषय के पाँच गाँवों का दान दिया था। यह दान सुमात्रा के शासक बालपुत्रदेव द्वारा नालन्दा में बनवाये गये बिहार में रहने वाले भिक्षुओं के भरण-पोषण तथा हस्तलिखित बौद्ध धर्म ग्रन्थों के सम्वर्द्धन हेतु दिया गया था।[5] दानपत्र में राजगृह विषय के चार ग्रामों क्रमशः नन्दिबनाक, मणिवाटक, नटिका तथा हस्तीग्राम तथा गया विषय का एक ग्राम पालामक का उल्लेख है, जिसका राजस्व उपर्युक्त कार्यों हेतु निर्धारित किया गया था।[6] इन ग्रामों में से कुछ ग्रामों का उल्लेख नालन्दा से प्राप्त कुछ मुद्रा छापों पर भी अंकित है। इस प्रकार इस दानपत्र से विदित होता है कि पाल शासक देवपाल द्वारा सुवर्णद्वीप के शासक बालपुत्रदेव के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था।

नालन्दा से मूर्तियों पर उत्कीर्ण लेखों के अन्तर्गत आदित्यसेन के काल का सूर्य की मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख से यह ज्ञात होता है कि यह मूर्ति नालन्दा के महाग्रहार में स्थापित की गयी थी।[7] अग्रहार शब्द का प्रयोग देवताओं और ब्राह्मणों के नाम दिये जाने वाले दान का सूचक है। नालन्दा से प्राप्त अनेक मुद्राओं में अग्रहार शब्द का उल्लेख दान में प्राप्त ग्रामों के सम्बन्ध में हुआ है। इसी प्रकार देवपाल के तीसरे राज्यवर्ष का संकल्पित मूर्ति पर उत्कीर्ण लेख[8] में राजगृह विषय के अन्तर्गत स्थिति पुरिका ग्राम निवासी विसाखा का उल्लेख है, जिसने यह मूर्ति प्रतिष्ठापित की थी।[9] अभिलेख के अध्ययन से प्रतीत होता है कि दान देने वाली स्त्री विसाखा किसी महान योद्धा की पत्नी थी, जिसके पति ने देवपाल के तीसरे राज्यवर्ष में कलचुरियों को समाप्त करने के अभियान में भाग लिया था।

इस प्रकार यहाँ से प्राप्त संस्कृत अभिलेखों के अनुशीलन से यह निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दान का उद्देश्य नालन्दा के विहारों के संचालन हेतु या ब्राह्मणों को उनके बौद्धिक एवं शैक्षणिक विकास हेतु शासक प्रदान करते थे। दान प्रदान कर शासक अपने तथा प्रजा के कल्याणार्थ पुण्य का भी भागी होता था।

सन्दर्भ संकेत—

1. ब्रोडले, ए.एम., दी बुद्धिस्टिक रिमेंस ऑफ बिहार, भारती प्रकाशन, वाराणसी, 1979, पृ. 23
2. सरकार, डी.सी., इपीग्राफिया इण्डिका, 26, 1941-42, पृष्ठ 135-136
3. शास्त्री, हीरानन्द, नालन्दा एण्ड इट्स इपीग्राफिक मैटेरियल, 1942, पृष्ठ 77-78; उपासक, सी.एस., नालन्दा—पास्ट एण्ड प्रजेन्ट, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, 1977, पृष्ठ 171
4. उपासक, सी.एस., वही, पृष्ठ 173-176
5. घोष, ए., नालन्दा, अनुवादक—शास्त्री केदारनाथ, भारतीय पुरातत्त्व विभाग, नई दिल्ली, 1963, पृष्ठ 12-13
6. उपासक, सी.एस., वही, पृष्ठ 61
7. फ्लीट, जे.एफ., गुप्त इन्स्कृप्शनम इण्डिकेरम, कलकत्ता, 1888, पृष्ठ 208
8. उपासक, सी.एस., वही, पृष्ठ 172
9. वही, पृष्ठ 60

नं. 3/464, पैराडाइज अपार्टमेंट, रोहिणी, सेक्टर-18, दिल्ली-110089

ललित निबंध

मैं तुम्हारा पता नहीं जानता

डॉ. उमेश कुमार सिंह

लम्बे अर्से से लेखन में सक्रिय। चिंतनशील लेखक एवं निबंधकार। निबंधों का संग्रह प्रकाशित।

मैं तुम्हें जानता हूँ। खूब जानता हूँ। बखूबी जानता हूँ। कितना जानता हूँ... क्या कहूँ। इतना जानता हूँ कि कुछ कहते नहीं बनता। कुछ कह नहीं पाता। कुछ कहने में असमर्थ हो जाता हूँ।

किसी के बारे में जान लेने के बाद कुछ कहना कठिन हो जाता है क्या, मैं सोचता हूँ। हाँ, शायद हो जाता है। कभी-कभी लगता है, ठीक-ठाक जान लेने के बाद, ठीक-ठाक कह पाना बड़ा मुश्किल होता है। कुछ कहने में गलत कह जाने की, कुछ कम कह जाने की आशंका हमेशा असमंजस पैदा कर जाती है। मुझे लगता है, कुछ कहने की कोशिश हमेशा एक प्रक्रिया है, कुछ जानने की प्रक्रिया, कुछ समझने की प्रक्रिया, कुछ पाने की प्रक्रिया। वस्तु जगत में अथवा भाव जगत में किसी सत्य को उपलब्ध करने की प्रक्रिया में हम कुछ कहते सुनते चलते हैं। भाषा में अभिव्यक्त एक प्रक्रिया है, परिणाम नहीं है। भाषा मौन में धँसने का एक साधन है, मौन में पहुँचने का, मौन में शामिल हो जाने का एक साधन है। एक अनुभव, भाषा की तमाम बारीकियों और विलक्षणताओं से गुजरते हुए, हमें एक मौन में ले जाता है, रस में ले जाता है। मैं जानता हूँ, तुम एक मौन हो, महामौन हो।रस हो। रस की आश्रय हो। तुम्हारे होने में, तुम्हारे सम्मुख होने में वाणी हमेशा मौन हो जाती है।

तुम्हारा होना इतना रसमय है, इतना संगीतमय है, इतना उत्सवपूर्ण है, इतना आनन्दप्रद है कि क्या कहूँ। नहीं कुछ भी नहीं कह सकता। कुछ भी कहना व्यर्थ मालूम होता है। बिना अर्थ का मालूम होता है।

मैं हमेशा ही देखता हूँ तुम्हारा बखान करने में, तुम्हारा बयान करने में, तुम्हारे वजूद की व्यंजना करने में भाषा आशक्त हो जाती है। भाषा की सीमा उघर जाती है, उघार हो जाती है। अब कैसे बताऊँ कि भाषा को अपनी शक्ति समझने वाला मैं, शब्दों की सम्पदा को अपनी सामर्थ्य समझने वाला मैं, कितना व्यथित हो जाता हूँ। कितना विकल हो जाता हूँ। कितना बेकल हो जाता हूँ। लगता है मैं कितना अपदार्थ हूँ। अपनी अभिव्यंजना शक्ति पर गुमान रखने वाला मैं महसूस करता हूँ कि कितना तुच्छ हूँ। मुझे लगता है कि मेरा अहं कितना निरर्थक है और तुम कितनी अर्थवान हो। सारे शब्द तुमसे ही अर्थ पाते हैं। तुममें ही अर्थ रखते हैं। पता नहीं कैसे तुममें भाषा उत्सव का आयोजन रचती है। ध्वनियों के नृत्य का लास्य थिरकता रहता है। अर्थ की अपार सुगन्धि मचलती रहती है। तुम्हारी हर इंगिति में भाषा के सर्वथा नये-नये आयाम खुले दिखते हैं। मैं देखता हूँ तुममें भाषा को असीम समृद्धि देने की अपार शक्ति है।

मगर क्या बताऊँ? बड़ा अद्‌भुत है। बड़ा विस्मयजनक है। बड़ा अविश्वसनीय है। बड़ा ही असहज है। फिर भी तुम्हारे होने से वह रूप कुछ बड़ा सहज हो जाता है। बड़ा सहज ही हो जाता है। तुम्हारे सम्मुख होने पर अपनी असमर्थता पर अपनी अशक्तता पर तनिक भी खेद नहीं होता। थोड़ी भी व्यथा नहीं होती। उल्टे उत्फुल्लता ही होती है। कैसा लगता है, कैसे बताऊँ। लगता है जैसे एक अपूर्ण में सम्पूर्ण समाहित हो उठा है। अपूर्ण में सम्पूर्ण समाया आ रहा है। सम्पूर्ण भरता आ रहा है। सम्पूर्ण के भरते आने से अपूर्ण मिटता जा रहा है। अपूर्ण सम्पूर्ण बनता जा रहा है। अपने मिटने का आनन्द, अपने मिटने का उत्सव, अपने न होने की उत्फुल्लता केवल और केवल तुम्हारे होने में ही, तुम्हारे सम्मुख होने में ही मैंने जाना है।

तुम्हारा होना अद्‌भुत होता है। अपूर्व होता है। तुम्हारे होने से सारे अभाव दूर हो जाते हैं। कोई रिक्तता, कोई कमी पास नहीं फटकती। तुम्हारे होने से कोई ताप, किसी भी तरह का उत्ताप उपजता ही नहीं। जब तुम होती हो कोई संताप नहीं होता। कोई भी संत्रास, तुम्हारे होने में नहीं होता। तुम्हें देखकर कोई चाह नहीं उपजती। सारी चाहें जैसे तुम्हारे में, तुम्हारी उपस्थिति में, विलीन हो जाती हैं, समाहित हो जाती हैं। तुम्हें देखकर ही मैंने जाना है कि सारी कामनाएँ अपूर्णता की उपज होती हैं। अपूर्णता का आलोड़न ही चाहें उत्पन्न करता है। चाहें ही चित्त को उन्मथित करती हैं। चित्त के उन्मथित होने से ही उत्ताप पैदा होता है। उत्ताप ही हमारे जीवन को संताप देता है। संताप मनुष्य जीवन के लिए अभिशाप है। वही हमारी चेतना को मलिन कर देता है। उत्तेजना ही हमारी चेतना को मानवीय धरातल से नीचे गिरा देती है। हम गिर जाते हैं। हमारा पतन हो जाता है। हमारा पराभव हो जाता है। पराभूत चित्त प्यास से भर जाता है। अतृप्ति में भटकने लगता है। एक अबूझ खालीपन में भयानक बुभुक्षा दर-दर उसे बिलबिलाने को मजबूर बना देती है। मगर तुम्हारा होना ऐसा अलौकिक है कि क्या कहूँ। तुम्हारे होने में एक असीम तृप्ति, चित्त को इतनी भर देती है कि वह अचल हो जाता है। थिर हो जाता है। कोई चाह रह ही नहीं जाती। तुम्हारे होने से कुछ के भी होने का भान नहीं

होता। जैसे सबकुछ तुम्हारे में ही है। तुम्हारे में ही भरा है। तुम्हीं सबकुछ हो। मैं भी तुम्हारे में ही हूँ। तुम भी हमारे में ही हो। तुम्हारे होने में जैसे मैं और तुम मिट जाते हैं। तुम्हारा होना एकात्म का बोध होना है, जैसे।

अब मैं कैसे कहूँ कि तुम कौन हो। बहुत कोशिश करता हूँ,मगर हार जाता हूँ, हर बार। हजार-हजार तरकीबें ढूँढता हूँ, मगर बेकार। भाषा की वीथियों की परिक्रमा करते-करते थक जाता हूँ, मगर बात नहीं बनती। एक-एक शब्द को पूरी उपासना से, आराधना से, अर्चना से उठाता हूँ मगर वे हाथ नहीं आते।

मैं कहना चाहता हूँ कि तुम प्रेम की प्रतिमूर्ति हो, विग्रह हो, देवि हो! तुम प्रेममयि हो। प्रेम तुममें ही मूर्तिमान होता है। मगर कैसे कहूँ। तुम तो प्रेम की जननी हो। प्रेम तुझसे पैदा होता है। तुम प्रेम को पैदा करती हो, तुमसे पैदा होकर प्रेम जगत में प्रसारित होता है। तुमसे ही प्रेम पैदा होकर जगत में व्याप्त होता है। जगत को व्याप्त करता है। तुमसे ही पैदा होकर प्रेम प्राणियों की प्यास को दूर करता है। अतृप्ति का, उत्ताप का, संताप का शमन करता है। तुम पूर्णता का प्रसाद बाँटती हो।

तुम्हारा अस्तित्व सौन्दर्य का अपूर्व अधिष्ठान है। तुम्हारे सौन्दर्य में सम्मोहन की अकूत शक्ति है। सम्मोहन क्या होता है, यह तुम्हें देखकर ही मैंने जाना है। मैंने जाना है सम्मोहन द्वैत के दलन का देवता है। सम्मोहन सृष्टि में दो के भाव को मिटाने का आश्रय है। वह दो के भाव के कारण व्याप्त होने वाली दूरी को मिटा देता है। वह भिन्नताओं को हटाकर अभिन्न कर देता है। भिन्न-भिन्न को अभिन्न कर देने का काम केवल सम्मोहन के ही बूते का है। इसी कारण मैंने जाना है कि सौन्दर्य वन्दनीय है, पूजनीय है। अपार्थिव है। दिव्य है। सौन्दर्य सृष्टि की चेतना में दिव्यता की प्रतिष्ठापना करता है। भव्यता को उद्भासित करता है।

सौन्दर्य हमारी चेतना को बाँधता है। वह हमारे चित्त की विचलनों को, फिसलनों को आलम्ब देता है, अवलम्ब देता है। वह हमारी भटकनों को केन्द्र देता है। सौन्दर्य एक केन्द्र है, प्रकृति की आदिशक्ति है जो अपने में खींच लेता है। खींचकर अपने से जोड़ लेता है। वह हमारे चित्त के समस्त विक्षोभों को अपने में समाहित कर लेता है, समवा लेता है। वह मोहित करता है, मुग्ध करता है। अपने में मुग्ध करके तमाम बंधनों से मुक्त करता है। वह चित्तशक्ति के तमाम बिखरे हुए विद्युतकणों को केन्द्रीभूत करके एक जगह संघनित कर देता है। इसी अर्थ में सौन्दर्य शक्ति को जाग्रित करने का सबसे सबल आलम्ब है। वह अनेक को एक में समन्वित करता है। जिसे हम तन्मयता कहते हैं, सौन्दर्य उसे अर्थ देता है। हमारी भाषा में जो तन्मय और तद्रूप जैसे शब्द हैं, उनके अर्थ मैंने तुम्हें देखकर तुम्हारे में ही पाया है।

मैंने अनुभव किया है कि जब मैं नहीं था तब भी तुम थीं। तुम्हारे से पहले तुम जैसा कोई नहीं था। तुम जैसा कुछ भी नहीं था। मेरा पक्का विश्वास है कि तुम्हें अपने समय में मैथिल कोकिल विद्यापति ने देखा था। उन्होंने तुम्हें पहचाना था, जाना था। तुम्हें पहचान कर जानकर तुम्हारे प्रसाद से ही उनका कण्ठ कोकिल कण्ठ की तरह स्निग्ध, मधुर और मोहक बन सका था। तुम्हारे रूप को उन्होंने अपरूप कहा है। अपूर्व कहा है। अपूर्व यानी जो पहले कभी नहीं था—कहीं नहीं था।

तुम चिरादिम हो। चिर पुरातन हो—परमपुरातन हो। मगर नहीं। केवल चिरपुरातन ही नहीं हो, चिरनवीन भी हो। तुम प्रतिक्षण संभव हो। तुम हर क्षण में संभव होती हो, संभूत होती हो, पैदा होती हो। तुम हर क्षण में होने से ही अपूर्व हो, चिरादिम हो, परमपुरातन हो और परम नवीन हो। हर क्षण में होने से ही अम्लान हो, अमरिलन हो, अव्यय हो। तुम हमेशा होती हो, मगर तुम्हारा व्यय नहीं होता। तुम हमेशा होती हो इसी से कभी अतीत नहीं होती। तुम कभी व्यतीत नहीं होती। जो कभी घटता नहीं, जो कभी व्यतीत नहीं होता, वही सुन्दर होता है। जो कभी बासी नहीं होता, हमेशा ताजा होता है, वही सुन्दर होता है, यह तुम्हें ही देखकर मैंने जाना है।

सौन्दर्य अखण्ड में होता है। खण्ड में नहीं। सौन्दर्य समग्र में होता है। सौन्दर्य की सत्ता समग्र सत्ता है। सौन्दर्य की सत्ता समाहारी सत्ता है। समग्र प्रकृति सौन्दर्य में बिम्बित होती है। समग्र प्रकृति का जहाँ समाहार होता है, वहीं सौदर्य होता है। सौन्दर्य का खण्ड नहीं है, न कालजगत में न वस्तु जगत में। काल के खण्ड जैसे भूत, वर्तमान और भविष्य में सौन्दर्य विभाजित होकर व्यंजित नहीं होता, वह काल के अनन्त प्रवाह में अस्तित्ववान होता है। सुन्दर कल भी था, आज भी है कल भी रहेगा। सम्पूर्ण वस्तु जगत की, हर चीज सौन्दर्य को उपलब्ध हो लेने के लिए चल रही है। हर चीज सौन्दर्य में समाहित होने के लिए अपना रास्ता तलाश रही है। सौन्दर्य ही सबके लिए काम्य है, सबके लिए प्राप्य है। तुम्हें भला कौन न चाहे। एक तुम ही हो जो अस्तित्व को सार्थक बनाने में सक्षम हो, समर्थ हो।

सौन्दर्य का सब पर अधिकार है। मगर सौन्दर्य पर किसी का भी अधिकार नहीं है। सौन्दर्य पर अधिकार करने की दुर्भलित लालसा जहाँ भी जन्मती है, उसके अस्तित्व का विध्वंस हो जाता है। तुम्हारे रूप सौन्दर्य को देखकर ही मैंने जाना है कि सौन्दर्य परम स्वतंत्र है। तुम परम स्वतंत्र हो। तुम्हारी स्वतंत्रता परम पवित्र है, परम पूजनीय है, इसलिए कि तुम्हारा दर्शन स्वतंत्रता को सुलभ कराने वाला है। तुम्हारा दर्शन अस्तित्व को सार्थकता प्रदान करने वाला है।

अक्षय सौन्दर्य की स्वामिनी, अखण्ड सौभाग्य को प्रदान करने वाली तुम्हें मैं क्या कहूँ। मेरे अस्तित्व की अधीश्वरी तुम्हें मैं क्या कहूँ? कौन-सा सम्बोधन तुम्हारे लिये ठीक होगा... मैं नहीं जानता। इसीलिए हमेशा कुछ कहते-कहते हिचक जाता हूँ। रुक जाता हूँ। मुझे लगता है, गलत सम्बोधन से पुकारने से अच्छा है कि सम्बोधनहीन छोड़ दूँ। कहो, कैसा रहेगा? आखिर करूँ भी तो क्या?

मैं थक-हार जाता हूँ। जतन करते-करते मगर तुम अँटती ही नहीं किसी सम्बोधन में। हर सम्बोधन तुम्हारे वजूद से छोटा पड़ जाता है। तुम्हारे माप का, तुम्हारे वजन का कोई सम्बोधन अभी तक शायद बना ही नहीं, सो लाचारी है। तुम्हें संबोधनहीन छोड़ देने में अपनी अक्षमता का अफसोस तो होगा। मगर गलत सम्बोधन देकर तुम्हारे मूल्य को, तुम्हारे

महत्त्व को, तुम्हारी महत्ता को न्यून करने की ग्लानि तो न होगी।

जबसे तुम्हें देखा है, जाना है, पहचाना है—कुछ और देखने की, जानने की, पहचानने की जरूरत ही नहीं रह गई है। पता नहीं वह कौन-सा दिन था, अब तो नहीं मगर इतना जरूर याद है कि उसके बाद का हर दिन उसी एक दिन में समाहित हो गया है।

जब मैंने तुम्हें नहीं देखा था, जानता था कि नील गगन की गहराई सबसे अधिक होती है। जब तुम्हें देखा तो जाना कि नहीं निःसीम नभ की अथाह नीलिमा से भी अधिक तुम्हारी आँखें गहरी हैं। इनमें पीयूषवर्षी मेघों का मेला लगा रहता है, इन्द्रधनुष के रंगों की छटा सजती रहती है और चंचल चपला की चमत्कृत कर देने वाली कौंध भी छिपी रहती है। अनन्त मौन में मुखरित मंगलगान की झंकृति मैंने तुम्हारी आँखों में हमेशा देखी है। पहले मैं जानता था कि चाँदनी की शीतलता नीरव रजनी में आकाश से उतरती है, मगर मैंने देखा कि जो शीतलता तुम्हारे मुख-मण्डल से उतरती है, उसे देखकर ज्योत्स्ना लजा-लजाकर छिप जाने को विकल हो उठती है। नहीं, वैसी शीतलता और कहीं भी नहीं है। पहले मैं जानता था कि अमृत केवल स्वर्ग की सम्पदा होती है। वह केवल देवताओं के लिये ही सुरक्षित उनकी थाती है। मगर तुम्हारे अधरों से फूटने वाले शब्द जिस सुधा की वर्षा करते हैं, वह मर्त्यलोक के मनुष्य-जीवन को अमर बना देते हैं। स्मृति को अमिट कर देते हैं। वह मनुष्य के सौभाग्य के लिए उज्ज्वल उपहार है, अनलिखा इतिहास है। फिर यह इतिहास मैं पढ़ने लगा। पहले मैं जानता था कि कविता कवियों के कण्ठ से फूटती है मगर तुम्हें देखकर मैंने जाना कि कविता तुम्हारे हृदय के उद्रेक से छलकती है। वह तुम्हारी ही साँसों की सुरभि से अपनी लिपि ग्रहण करती है। सारा काव्य सरस्वती के लास्य का परिणाम है, यह तुम्हीं ने मुझे बताया है।

तुम्हें ही देखकर मैंने जाना है कि हमारे मनीषियों ने स्त्री-विग्रह को देवि क्यों कहा है। तुम्हें ही देखकर मैंने इस देवभूमि में नारी को देवि कहने की परम्परा का मर्म बूझा है। दुनिया के सारे उल्लास को तुम्हारे अस्तित्व में नाचते-गाते हुए मैंने देखा है। फिर भी हमेशा मैंने तुम्हें रंग-मंच की तरह तटस्थ रहते हुए देखा है। नहीं, ऐसी धीरता मुझे हमेशा ही मानवेतर मंगलकारिता से आपूर्ण लगती है। तुम्हारी धीरता में हमेशा ही मैंने विषाद के विष को विलीन होकर अस्तित्वहीन होते देखा है। हर बार देखकर विस्मित होता रहा हूँ। अभिभूत होता रहा हूँ। अभिभूत होकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के—'नारी शरीर को पवित्र मन्दिर' कहने के अभिप्राय का मर्म बूझता रहा हूँ। मैंने तुम्हें जब भी देखा है, जब-जब देखा है—तुम स्त्री शरीर के पवित्र देव मन्दिर में जीवित, जागृत-जीवन की साध को प्रसादन का प्रसाद बाँटती हुई दिव्य देवी लगी हो। देवी, यानी अथाह अवसाद, असंतोष, उत्ताप से भरे हुए जगत में उल्लास, स्फूर्ति और अदम्य जिजीविषा के लिए अचूक रसस्रोत का पता बताने वाली अकूत शक्ति की अधिष्ठात्री।

मैंने सोचा कि तुम्हारी अभ्यर्थना में अर्चना में मैं एक छन्द बन जाऊँ। तुम्हारी पूजा में एक स्रोत बन जाऊँ। मगर नहीं, तुम्हीं ने रोक दिया। तुमने ही मुझे बताया—''पूजा परम पवित्र है। चेतना का बहुत ऊँचा धरातल है। उपासना में परम उज्ज्वल आलोक है। अकम्प आस्था है। मगर नहीं। तुमने कहा, नहीं। इसमें दो हैं। दो का भाव है। ऊपर-नीचे का बोध है।''

''चलो, वहाँ चलो, जहाँ दो नहीं होता। वरिष्ठ और कनिष्ठ नहीं होता। ऊपर-नीचे का भाव नहीं होता। स्वीकृति-अस्वीकृति की, सफलता-असफलता की आशंका नहीं होती। आराध्य और आराधक नहीं होता। जहाँ सिर्फ आराधना होती है, जहाँ धरातल समान होता है। एक-दूसरे में आने-जाने के लिए अनुमति की आवश्यकता नहीं होती। जहाँ बेरोक-टोक आना-जाना सहज बना रहता है। एक-दूसरे में आते-जाते, समाहित होते, समंजित होते दो नहीं रह जाते। जहाँ दो नहीं रह जाता। जहाँ लेना-देना नहीं रह जाता, चलो वहाँ चलें।

तुमने एक शब्द कहा—प्रेम। वह मुझमें समा गया। मगर अभी भरा नहीं था। मैंने भरे होने का मर्म जान लिया है लेकिन भरे होने से अभी भी वंचित हूँ। भरे होने का आस्वाद तो बूझ लिया है मगर भरे होने के रस से भरा नहीं हूँ। अभी मैं अधूरा हूँ। खाली हूँ। कुछ भरा हूँ। कुछ खाली हूँ। जितना भरा हूँ, उतना खाली हूँ। पता नहीं कितना भरा हूँ, कितना खाली हूँ। मुझे पूरा-पूरा, पूरा भरा हुआ नहीं बना दोगी क्या? कबसे इंतजार कर रहा हूँ। हर क्षण बाट जोह रहा हूँ। अब मैं क्या करूँ? कुछ समझ नहीं आता। लगता है, मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है।

जब तुम मेरे सम्मुख थीं, मैं तुम्हें देखने में निमग्न था। मैं तुझमें ही तल्लीन था। कभी लगता है, तुम मुझमें ही हो। आँखें बन्द करके मैं तुम्हें ही अपलक देखता रहता हूँ। कभी लगता है, तुम दिख नहीं रही हो। जब तुम नहीं दिखती, जी व्याकुल हो उठता है। लगता है, तुम्हारे न होने से मेरे होने का कोई अर्थ ही नहीं है। तुम्हारे न होने से मेरा अस्तित्व, मेरा वजूद व्यर्थ है। मेरा अस्तित्व तो तुम्हारे होने पर ही अवलम्बित है।

जहाँ तुम थीं, देखता हूँ, वहाँ नहीं हो। जहाँ-जहाँ तुम थीं, अब नहीं हो। अब तुम्हारी जगह तुम्हारी छाया है। यह छाया कभी लम्बी हो जाती है, कभी छोटी। कभी धुँधली, कभी अदृश्य। तुम्हारी छाया ही बाहर-भीतर सब जगह भरी हुई है तुम्हारी छाया में तुम्हें ढूँढने का उपक्रम कितना बेधक है, कैसे कहूँ?

तुम्हारे आह्वान के हजार-हजार शब्द वाणी में मचल उठते हैं। मेरा समूचा वजूद ही तुम्हारे लिये बुलावे का गान बनकर, तुम्हें भेंट लेने को उत्कण्ठित है। मगर कैसे, पता नहीं।

कोई भी सन्देश किससे पठाऊँ? कैसे पठाऊँ? कहाँ पठाऊँ? मालूम नहीं पड़ता। मैं सिर्फ तुम्हें जानता हूँ, बस तुम्हें ही। तुम हमारे सम्मुख नहीं हो। जी विकल है। हलकान है। हैरान है। तुम्हें बुलाने के लिए, जितने भी शब्द मुझे मालूम हैं? सबको खरच कर मैंने एक काव्य रच डाला है। मगर इसे कहाँ भेजूँ? मैं तुम्हारा पता नहीं जानता।

प्राचार्य, माँ गायत्री महिला महाविद्यालय,
हिंतुरगढ़, चन्दौली-232105

हिमाचल से नालदेहरा पुकारता

आरती स्मित

लेखिका आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से मुख्य रूप से अनुवादक और समीक्षक के रूप में जुड़ी हैं। कई किताबें प्रकाशित। स्त्री विमर्श पर एक किताब 'फूल सी कोमल और वज्र सी कठोर' शीघ्र प्रकाश्य।

यात्रा! जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग! फिर चाहे वह मनःप्रदेश की हो या भौगोलिक प्रदेश की, यात्रा अनवरत चलती रहती है... कभी-कभी तो दोनों एक साथ ही। और कभी-कभी तो मनःप्रदेश भी दो हिस्सों मं बँट जाता है—हृदय और मस्तिष्क। हृदय भौगोलिक दृश्य देखकर कभी रोमांचित तो कभी द्रवित हो उठता है, और मस्तिष्क उस स्थिति विशेष का जायजा लेकर निर्णय लेता है कि उस परिवेश में संतोषजनक स्थिति की अनुभूति की जा सकती है या सुधार की आवश्यकता है और इसके लिए प्रयत्न किए जाने चाहिएँ, फिर उस प्रयत्न की रूपरेखा क्या हो? आदि-आदि।

शिमला यात्रा मेरे लिए इसलिए रोमांचक थी क्योंकि अरसे बाद पहाड़ पर जा रही थी और हिमाचल की गोद में जाने का यह पहला अवसर था। साहित्य अकादेमी दिल्ली एवं भाषा-संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश के संयुक्त तत्वावधान में समकालीन कविता: परिसंवाद एवं काव्य गोष्ठी का (21-22 अगस्त, 2015) द्विदिवसीय आयोजन किया गया था, जिसमें काव्य-पाठ के लिए शरीक होना स्वयं में गौरव की बात थी।

यात्रा की रूपरेखा निश्चित होकर भी अनिश्चित होती है। मूर्त रूप में गंतव्य निश्चित होता है किन्तु संग-संग हो रही मनःप्रदेश की यात्रा पर कई विषयवस्तुएँ तात्कालिक प्रभाव छोड़ती हैं। जैसे कि सफर की शुरुआत का प्रारूप।

19 अगस्त की शाम। यात्रा आरंभ करने की तैयारी से पूर्व एक साथ कई कामों को अंजाम देने की भूमिका में व्यस्त और व्यग्र रही कि मेरी अनुपस्थिति में बच्चे परेशान ना हों। ऊहापोह तो नहीं, पर मन में रोमांच था कि पहली बार मेरे सहयात्री बने, साहित्य अकादेमी के उपसचिव, ब्रजेन्द्र त्रिपाठी क्या मेरी वैचारिक यात्रा में भी शामिल हो सकेंगे?

शाम के 7.45 बजे यात्रा का पहल कदम। रेलवे स्टेशन में उच्च श्रेणी के यात्री प्रतीक्षालय में यात्रियों के संग बैठी, घड़ी की टिक-टिक के साथ भागते मन को संभालती मैं हावड़ा-कालका मेल का इंतजार करती रही। नियत समय पर गाड़ी यात्री-सेवा में हाजिर हो गई। एसी-2 का शांत शीतल वातावरण! हमारे कंपार्ट में हावड़ा से यात्रा करता एक बंगाली लड़का, जो किसी से फोन पर बातें करते और गाना सुनते हुए पूरी रात गुजारता है। इस कंपार्ट में हावड़ा से कालका तक का लंबा सफर शायद उसके अकेलेपन को और घना करता जा रहा हो, मैंने सोचा। चौथी बर्थ पूरे रास्ते खाली रही। आमने-सामने होने के बावजूद हमारे बीच कोई वार्ता नहीं हुई। मैं नींद लाने की जितनी कोशिश करती, नींद उतनी ही दूर खड़ी मुँह चिढ़ाती, अंत में मैंने उसे बुलाना छोड़ दिया। मेरी यात्रा और नींद का हमेशा 36 का आँकड़ा रहा है। सोचा, पुस्तक निकालूँ, पर मन ने इनकार किया, इयर फोन लगा गीत सुनना चाहा, बात नहीं बनी। बहरहाल, पौ फटने का इंतजार करने लगी, ताकि बाहर का दृश्य निहार सकूँ। ऐन मौके पर नींद ईर्ष्या-सी दबे पाँव (भोर के चार बजे या उसके बाद ही) आई और अपने आगोश में भरने लगी, खुमारी-सी चढ़ी, पर एहसास होता रहा कि सामने की बर्थ का लड़का अपना सामान समेट रहा है, मगर टोका या पूछा नहीं। तैयार हो चुकने के बाद उसने आहिस्ते से झुक कर कहा ''कालका आ गया'' और मुस्कुराता हुआ सामान के साथ दरवाजे की तरफ बढ़ गया। आनन-फानन हमने अपने सामान लिए और गाड़ी से उतर शिवालिक एक्सप्रेस की ओर बढ़े। ब्रजेन्द्र जी ने बताया कि ''यह टॉय ट्रेन कालका के आ जाने पर ही खुलती है। और तुम इस ट्रेन से प्रकृति-दर्शन का लुत्फ उठा सकोगी।''

रात भर की नीरस यात्रा के बाद शुरू हुआ मेरा रोमांचक सफर। फिर तो ट्रेन के विशाल झरोखे से झाँकता मेरा मन बच्चा हो चला। मैं भावविभोर-सी बाहर पसरी प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य को निहारती, छुक-छुक करती रेलगाड़ी के साथ आगे बढ़ने लगी। पेड़-पौधे, बड़े-बड़े पहाड़! पहाड़ काट कर बनाई गई सुरंगें! सुरंगों से बार-बार गुजरती, आँख-मिचौली खेलती हमारी टॉय ट्रेन! चीर के वृक्षों की कतार! एक ओर गहरी खाई, दूसरी ओर बादलों से अठखेलियाँ करते धुआँते पहाड़! बीच-बीच में खिलौने जैसे घर। कालका के

बाद पहला स्टेशन बड़ोग आया। यह जानकर हैरत में पड़ गई कि यह ट्रेन लगभग 109 सुरंगों से गुजरती है। हर एक किलोमीटर या उससे भी कम दूरी पर एक सुरंग है और पहाड़ काट कर इस तरह सुरंग बनने का सुझाव हिमाचल के ही एक ग्रामीण हरखूराम ने दिया, जिसे इस पहाड़ के चप्पे-चप्पे की जानकारी थी और जिसने पहाड़ को इसी अनुपात और इसी कोण में काटने और रास्ता बनाने हेतु अंग्रेज इंजीनियर का मार्गदर्शन किया था। सचमुच! शिमला-यात्रा पर जाते हुए उस हिमाचलवासी के प्रति मस्तक स्वयं ही नत हो गया। एक अनूठा उदाहरण! विशेषकर उन लोगों के लिए जो पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर विद्वता मापते हैं।

सोलन से आगे शिशु-से चपल, मस्ती में घूमते बादल। अहा! पहाड़ों की तलहटी में बसी बस्तियों के बीच शुभ्र श्वेत सघन बादल! उनमें से रुई के फाहे की तरह उड़ते-विचरते बादल! मानो गरम दूध के कटोरे में से भाप निकल रही हो। स्पष्ट! सुंदर! सौंदर्य-बोध का अनुपम संचय!

बाह्य परिदृश्य जितना मनमोहक अंतर्परिदृश्य एकबारगी मस्तिष्क को झकझोरता हुआ। हमारी बोगी का परिचारक ईमानदारी से अपनी ड्यूटी में तल्लीन घड़ी की सुई के साथ ताल से ताल मिलाता हुआ हमें बेहतर सेवाएँ देता हुआ! चुपचाप! बिना किसी अकुलाहट/उकताहट के, मानो व्यक्ति नहीं कोई रोबोट हो! झरोखे के बाहर का दृश्य उसे आलोड़ित नहीं करता। ट्रेन के उस डिब्बे के बाहर पसरी प्रकृति उसे आकर्षित नहीं करती! उसके अनुपम सौंदर्य को निहारने की उसे फुर्सत भी नहीं, ना ही कोई आकांक्षा! परिवार से दूर, पेट की आग बुझाने और पूरे कुनबे का पालने का दायित्व-बोध उसे अपनी ड्यूटी से परे इस सौंदर्य का भान होने भी नहीं देता। ना विचारक की दृष्टि है ना महसूसने का अवकाश!

सुरंगें ही सुरंगें! पहाड़ ही पहाड़! पहाड़ों के बीच किसी शिला के हृदय से फूटती तीक्ष्ण जलधार! सीढ़ियाँ उतरते कलकल छलछल निर्मल चपल जल। हरीतिमा... चारों ओर एक अजीब-सी गंध/धुएँ भरी, पर बहुत सारा ऑक्सीजन! जीवनदायी! विचारों के कोहरे से निकल कर मैं खुलकर साँस लेती हूँ। खुद में ऑक्सीजन भरती हूँ; दिलो-दिमाग को ताजा करती हूँ और महानगर दिल्ली की विषैली हवा को जीवन की विषाक्तता के साथ पीछे छोड़ देती हूँ... टॉय ट्रेन पर बैठी बढ़ती जाती, बस बढ़ती जाती हूँ।

फुहारें शुरू हो गई हैं। मैं खिड़की खोल उन ठंडी फुहारों को अपने चेहरे पर महसूस कर रही हूँ। रोम-रोम स्पंदित हो रहा है। पेड़ों की झुरमुट और सुरंगों के बीच से गुजरती ट्रेन जाने-अनजाने मुझे कितनी ही सीख देती जा रही है। मेरे अंदर रोमांच भरा है। वर्षों बाद मुझे मिला है—पहाड़ से मिलने, बोलने-बतियाने और उसके अस्फुट मौन में बजते संगीत को सुनने का अवसर। मैं कभी अपना चेहरा तो कभी हाथ खिड़की से बाहर निकाल बूँदों और भीगी सिहरी पत्तियों को छूती हूँ। एक तरफ बरसती, मेरे चेहरे और हाथों पर लरजती थिरकती बूँदें, दूसरी ओर जरा दूर, घाटी में मकानों पर बिछे श्वेत बादल, जैसे मकानों ने हरी साड़ी के ऊपर सफेद मखमली चादर ओढ़ ली हो... आँखों को शीतल करती सुकोमल मखमली।

शोघी, स्काउट हॉल्ट और अब समर हिल स्टेशन। बदलियों का ट्रेन की खिड़की से अंदर आना और नन्हीं बूँदों को हमारे चेहरे पर छोड़ जाना, आर्द्र हवा के शीतल थपेड़े, सिहरता बदन, गुदगुदाते मन-प्राण! चीर के पेड़ों के साथ-साथ अब देवदार भी हमारे संगी हो चले। मैं अब खिड़की से बाहर निहार रही हूँ। इतनी ऊँचाई पर पहुँच चुकी हूँ कि खिड़की से गहरी दृष्टि डालने पर भी नीचे पेड़ों से ढँकी धरती का मूल नहीं दिखता। पेड़ों से लदे पहाड़ और सुरंग! धुँधलाता बादल और आर्द्र हवा... यही है हिमाचल... यही है प्रकृति का स्वर्गिक रूप... अपने में कई भेद समेटे। बहुत कुछ धुँध में है फिर भी जीवन है, गति है। सीटी बजाती, धुआँ उड़ाती ट्रेन और यात्रियों सहित मैं!

शिमला! हमारा गंतव्य। भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश की ओर से गाड़ी हमें होटल तक छोड़ने आई है। मैं इस पावन स्थल को नमन करती हूँ, गाड़ी में बैठ आसपास के दृश्यों को कैमरे में कैद किए चल रही हूँ। होटल कॉसमॉस का चतुर्थ तल, कमरा नं. 32 मेरे लिए। कमरे का परदा हटाते ही नेत्र सामने टंग जाते हैं... अद्‌भुत दृश्य! पहाड़ियों की कतार। उसकी कटि में बिछी शुभ्र श्वेत बदलियाँ जो सूरज की चमक से दमक रही हैं, उनके ऊपर तैरते श्यामल बादल! इस होटल के सामने क्लार्क और बीयं ओर शृंगार होटल हैं। यह सड़क दाहिनी ओर मॉल रोड को जोड़ती है, जहाँ चर्च, स्कैंडल पॉइंट, पुस्तकालय, अंग्रेजों के जमाने की दुकानें, डाकघर, बैंक आदि की मजबूत बिल्डिंगें व गेयटी थियेटर है जिसके नीचे हिमाचली ग्रामीणों के लिए बाजार लगता था, जिसे आज भी लोअर मॉल कहा जाता है। ये खूबसूरत पहाड़ इन विडंबनाओं के भी साक्ष्य हैं कि जिस शिमला को बसाने में हिमाचलवासी ने तरकीब सुझाई, जो पहाड़ उनका अपना था, उसके ही एक हिस्से को फिरंगियों ने उनके और कुत्तों के लिए प्रतिबंधित कर रखा था, आज भी लोअर मॉल से गुजरती सड़क गंदगी से उबरने के लिए नगर-प्रबंधक का मुँह ताक रही है। मॉल रोड पर नागरिकों ने वाहन प्रतिबंधित कर आम लोगों के हित में काम किया है, बुजुर्गों और बच्चों के लिए क्रेचर ट्रॉली है। स्कैंडल पॉइंट के पास इक्के-दुक्के पुलिस वाले दिखे। एक गाड़ी, बिना अपनी उपस्थिति जाहिर करते हुए। फिर भी कहीं कोई उन्माद, हंगामा या भ्रष्ट आचरण की झलक नहीं मिलती, किशोरी हो या नवयौवना, प्रौढ़ा हो या वृद्धा... किसी के चेहरे पर कोई भय या आतंक नहीं। पुरुष दृष्टि से खुद को बचाने

की कोई अतिरिक्त कोशिश नहीं। हालाँकि वेश-भूषा और खानपान महानगरीय प्रभाव में है, किन्तु पहाड़ की नैसर्गिकता ने अब तक इंसानियत बचा रखी है। अलग बात है कि पहाड़ के जिस स्वरूप को अंतस में बसाकर मैं शिमला आई, वो इस मॉल रोड पर बसे और किसी न किसी रूप में जुड़े शहरी लोगों में नहीं मिला। एक बार तो लगा मिनी दिल्ली में ही हूँ, वही विदेशी व्यंजनों का आधिक्य, वही परिधान, सुशिक्षितों के मस्तिष्क में वही राजनीतिक दाव-पेंच, वही चाटुकारिता, वही गुटबाजी और पीठ पीछे वही शिकवे-गिले। बायीं ओर की सड़क मुख्यमंत्री आवास को जोड़ती हुई आगे गई है और यहाँ निजी वाहन लाने की अनुमति है।

बहरहाल, मैं होटल के अपने कमरे के बाहर बिखरे प्राकृतिक और प्रकृति से तालमेल बिठाकर बसाए गए नगर की चर्चा कर रही थी। खिड़की से दाहिनी ओर निहारने पर इंजीनियर के प्रति मुँह से 'वाह' निकले बिना नहीं रहता। पहाड़ की तराई से लगभग शीर्ष तक बसाया गया शहर! सीढ़ीनुमा जमीन पर उगाए गए मकान और उन्हें बाहरी दुनिया से जोड़ते हुए घुमावदार रास्ते। पूरा शहर इसी में समाया हुआ है। दूर से ऐसी प्रतीत होती है मानो सीढ़ीदार कबर्ड में बहुत सारे खाने बने हों और हर खाने में मकाननुमा खिलौना सुनियोजित तरीके से रखा गया हो... शहर का बेहतर मॉडल/खिलौने-सा आले पर सजा हुआ। मैं निहारती रह जाती हूँ।

शाम को पहाड़ी जीवन नजदीक से देखने को उत्कंठित मैं शहरी जीवन से दूर, पहाड़ी जीवन को निकट से देखने को उत्कंठित हूँ, किन्तु मेरी उत्कंठा माल रोड के भ्रमण के दौरान गहरी निराशा में बदल जाती है। मित्रगण रेस्तराँ में चाय के साथ गप्पें मारते हैं और मैं वहाँ के माहौल से ऊब कर, कहीं सुकूनभरी जगह पर जाने की इच्छा जाहिर कर बाहर आ जाती हूँ। बाहर निकल कर सामने ही सड़क किनारे खड़ी होकर नीचे देखने लगती हूँ, जहाँ से काले-काले बादल ऊपर उठते दिख रहे हैं। अचानक मूसलाधार बारिश! बारिश में भीगती हुई अंतस के पहाड़ को आसपास बाहर ढूँढती रहती हूँ। भीड़ में अकेली खड़ी सोचती रहती हूँ कि क्या यही सच है पहाड़ का... पूरी तरह बनावटी, मैदान की तरह? क्या मैदानी संस्कृति और शहरी सभ्यता ने पहाड़ को पूरी तरह लील लिया? किन्तु मेरे ऊहापोह और मित्रों के शहरी रवैये से उपजी खीझ से भला प्रकृति को क्या मतलब! वो तो हम ही अपनी मनःस्थिति के अनुरूप प्रकृति को देखते हैं। गोया यह कि मैं उस बारिश का मजा नहीं ले पाती हूँ, क्योंकि नई जगह और घना अँधेरा होने के कारण मैं अकेले होटल जाने में सक्षम नहीं। तेज बारिश में लगातार भीगने की वजह से कंपकंपी सी होने लगती है। मोबाइल काम नहीं कर रहा, यदि कहीं शेड में चली जाऊँगी तो वहाँ साथ आए और रेस्तराँ में कॉफी के साथ फेसबुक-संदेशों पर बकवास करते और मजा लेते लोग मुझे ढूँढेंगे कैसे, खासकर मेरे सहयात्री! इस खयाल से घिरी मैं शिमला की बर्फ-सी ठंडी बारिश का आनंद लेने से वंचित रह जाती हूँ।

21 की सुबह। कार्यक्रम के उद्घाटन समारोह में शामिल होने की तैयारी। कार्यक्रम की औपचारिक शुरुआत। इससे पहले हिमाचल के प्रसिद्ध कथाकार हरनोट जी सहित अन्य लेखकों से मुलाकात व औपचारिक बातचीत का सिलसिला। किन्तु प्रथम सत्र की समाप्ति के उपरांत ब्रजेन्द्र जी ने जिस शख्शियत से मिलवाया, मुझे अपना शिमला आना सार्थक लगने लगा... सरोज वशिष्ठ। आकाशवाणी दिल्ली और शिमला को उद्घोषिका के रूप में अपनी लंबी सेवाएँ देती हुईं, नाटक लेखन-निर्देशन, कहानी लेखन, जापानी साहित्य का अनुवाद मात्र उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता नहीं, इस वशिष्ठ को विशिष्ट बनाया... लीक से हटकर किए गए इनके काम ने। तिहाड़ जेल में किरण बेदी के साथ मिलकर और स्वतंत्र रूप में भी कैदियों के अंदर के अच्छे इंसान को जगाने के साथ उनकी संवेदना को शब्दबद्ध करने का जो अभूतपूर्व काम सरोज जी ने किए थे, उनकी चर्चा मैंने सुन रखी थी। कैदियों के अंदर के कवि को जगाना और उनके भावों, उनके जीवन-संघर्षों, स्वजनों, पूँजीपतियों और राजनेताओं के हथकंडे के शिकार कुछ निरीह व्यक्तियों की पीड़ा को आम समाज तक पहुँचाने का दायित्व वास्तव में असाधारण कार्य है। ऐसी नेत्री मेरे सामने खड़ी हैं और उनकी आत्मीयता, उनका खुलापन मेरे अंतस में कई सवाल दागता है पर मैं मौन होकर उन्हें सुनती हूँ, बस सुनती जाती हूँ। चंद लम्हों के साथ के बाद वे निर्णयात्मक स्वर में कहती हैं, ''आज से तुम मेरी बेटी हो, सो मैम नहीं मॉम कहो, सारे कैदी मुझे मॉम बुलाते हैं।'' और मैं हँसकर कहती हूँ, ''मॉम नहीं, फिर मैं माँ बुलाऊँगी।''वे भाव-विह्वल-सी हमारे निवेदन पर हमारे होटल तक आने को तैयार हो जाती हैं। माल रोड पर गाड़ियाँ नहीं चलतीं, सो मैं बाएँ कंधे पर उनका बैग और दाहिनी हथेली पर उनका हाथ जकड़े-पकड़े धीरे-धीरे होटल कॉसमॉस की ओर बढ़ रही हूँ। आत्मसंतुष्टि का अनुभव कर रही हूँ। माँ सरोज शरीर से जरा कमजोर हुई हैं किन्तु आत्मबल और कार्यक्षमता, समाज के पीड़ितों की आवाज बनकर उभरने का उनका जीवट यथावत है... युवा वर्ग से कहीं अधिक! इतना समझ पाई हूँ। उनके एक-एक शब्द सकारात्मक ऊर्जा से स्फुटित जान पड़ते हैं। निश्चय ही यही ऊर्जा उन्होंने तिहाड़ से लेकर हिमाचल के मंडी, कांडा और कैथू जेल की सलाखों में बंद निर्जीव हो रहे तन-मन में भरी होंगी, तभी तो इतनी मार्मिक कविताएँ फूटकर निकली हैं। माँ सरोज अपने थैले में से कुछ पुस्तकें निकाल कर मुझे देती हुई कहती हैं, ''पढ़ेगी तो फूट-फूट कर रोएगी। मुझे लगता है, तू समझ सकती है इसलिए ये किताबें तुझे दे रही हूँ।''

मैं उनकी आत्मीयता से भाव-विभोर हुई भूली सी हूँ कि हम चंद घंटे पहले ही तो मिले हैं। होटल में मेरे ही कमरे में खाना खाती हुई वो जीवन के संघर्षों को चुटकुले की तरह सुनाती हँसती-हँसाती जाती हैं। उम्र का व्यक्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं। झुर्रियों के बीच दमकता चेहरा। मैं उन्हें 83 वर्षीया युवा (83 years young lady!) कहती हूँ और वो फूल-सी खिलती हुई खिलखिला पड़ती हैं। भोजन के बाद विदा लेती हुई कहती हैं, ''मैं कल आती नहीं, पर तुझे बेटी बनाया है, तुझे सुनने जरूर आऊँगी।... सिर्फ तेरी खातिर! समझी! मैं गद्‌गद हूँ इतना प्यार पाकर। सरोज जी पर लंबी बातें फिर कभी, स्वयं को रोकती हुई इतना कि उनसे मिलने के बाद उपेक्षित, शोषित समाज के लिए कुछ अलग करने की मेरी लालसा जो अब तक धुँधलके में थी, स्वतः स्पष्ट हो गई। सामाजिक कार्यों के प्रति उनके समर्पण और जीवट ने मेरी व्यक्तिगत समस्याओं को तिरोहित कर दिया है। अब मैंने जीवन का निकटतम लक्ष्य तय कर लिया है।

21 की शाम गहराती हुई, मैं होटल में ही अपने कमरे की बड़ी खिड़की से सामने लेकिन दूर, पहाड़ पर बने मकानों में जलती रंग-बिरंगी रोशिनियाँ देख रही हूँ, जो जुगनुओं के समूह का भ्रम देती हैं, लेकिन मन इन रोशनियो के पीछे फैले अँधेरे को समझने की कोशिश में लगा है... एक अजीब-सी छटपटाहट के साथ। रह-रहकर सरोज जी की बातें अपने पूरे वजूद के साथ उभर-उभर आतीं। मैं अकेले में उकने प्रेम और आत्मीयता से लबालब, छलक पड़ने को आतुर शब्दों को समेटने, सहेजने और आत्मसात करने में व्यस्त हो जाती हूँ। कार्यक्रम में इतने लोग मिले, कई जानी-मानी हस्तियाँ भी, लेकिन दिल में घर कर गई सरोज जी... माँ सरोज वशिष्ठ! अपने अनूठे व्यक्तित्व के साथ। उनकी दी हुई पुस्तकें पलटती हूँ, सोचती जाती हूँ कि कैदियों और सरोज जी की प्रेरणा से उन कैदियों के संपर्क में आए रंगकर्मियों, साहित्यकारों, समाजसेवियों की रचनाओं (जिन्हें सरोज जी ने संकलित और संपादित किया) का जन्म कहाँ इतना आसान रहा होगा। जीवन से हारे, विक्षिप्तता की अवस्था में जीते, खुले आसमान का स्वरूप भूल चुके कैदियों को पुनः संवेदनशील बनाना, उन्हें कागज कलम मुहैया करना, उनके लिए पुस्तकालय खुलवाना, और भी बहुत कुछ क्या आसान रहा होगा? सवाल ही नहीं उठता। उन्होंने दुर्लभ और दुष्कर कार्य संभव कर दिखाया है... बिना किसी प्रशासनिक पद पर रहते हुए, बिना किसी पूँजीपति से अनुदान लिए। इन जेलों के अंदर आज बाइस पुस्तकालय सुव्यवस्थित और सुचारु रूप में विद्यमान हैं। जब वे कर सकती हैं तो जो सपने मैंने अब तक त्रिशंकु की तरह लटका छोड़े हैं, उन्हें क्यों ना पूरा करूँ। जिसे साथ देना होगा... आएगा। बस अब और इंतजार नहीं। इन पुस्तकों को उलटने-पलटने के बाद खुद को इतना निश्चित तो कर सकी हूँ मैं।

झमाझम बारिश! पूरी रात बारिश! अब 22 की भीगी भोर। खिड़की के बाहर बूँदें अब टपटप बरस रही हैं। कुछ बादल खिड़की से कमरे में अनाधिकार प्रवेश करते हैं, छूते हैं, पर गुदगुदा नहीं पाते। पिछले दो दिनों में प्रकृति-दर्शन और उसे पल-पल जीने की लालसा कहाँ छूमंतर हो गई! मैं खुद को टटोलती हूँ। बारिश थम चुकी है। दूर नन्हीं पहाड़ी की तलहटी से उसकी ऊँचाई के मध्य तक सघन श्वेत बादल बिछे हैं, मानो बादल की गोद में नन्हीं पहाड़ी अलसाई पड़ी हो या कि शुभ्र श्वेत हथेली पर कोई हरित पदार्थ रखा हो। सामने कोई भी पहाड़ नंगा नहीं, एक-एक पोर में हरियाली। निचले हिस्से में चीर, ऊपरी हिस्से में देवदार... आसमान से बातें करते हुए गर्वोन्नत! होटल से लगी सड़क से इक्के-दुक्के लोग और स्कूली बच्चे गुजरते हुए। एक फटेहाल व्यक्ति, जिसके हाथ में एक कटोरा, जिसमें कुछ तैलीय पदार्थ है और जिसके अंदर कुछ सिक्केनुमा धातु के टुकड़े हैं, उसकी चाल सामान्य नहीं, व्यवहार में भी विचित्रता है। सड़क शांत है। इक्के-दुक्के पदचापों से उसकी शांति भंग नहीं होती।

सुबह के 10.30 बजे। गेयटी थिएटर में अभी अलग-अलग राज्यों से आए साथी मित्रों के साथ मेरा भी कविता-पाठ। माँ सरोज समय पर उपस्थित हैं। आयोजक जब उन्हें सादर अंदर बिठाना चाहते हैं तो कहती हैं, ''मैं आज अपनी बेटी आरती के लिए आई हूँ, वहीं बैठूँगी जहाँ वह बैठेगी।'' उन्हें देख मैं अनायास बच्ची-सी दौड़ पड़ती हूँ। 11 बजे कार्यक्रम की शुरुआत। सभी मित्रों की बेहतर प्रस्तुति। संचालन ब्रजेन्द्र त्रिपाठी जी का। मैं अपनी पहली रचना 'माँ की याद में' माँ सरोज को समर्पित करती हूँ और मंच से उतर कर उनके पास आने से पूर्व वे उठ खड़ी होती हैं और अपनी बाँहों में पूरे वात्सल्य के साथ भर लेती हैं। मुझे याद नहीं अंतिम बार इस तरह कब अपनी माँ से लिपटी थी, मगर ये पल अब मेरे लिए अमूल्य धरोहर हैं। माँ ने मुझसे वो कविता ले लेती हैं... अपनी अगली पुस्तक में शामिल करने के लिए। हम पूरे कार्यक्रम में साथ हैं। आसपास उपस्थित लोग हमारे आपसी अनौपचारिक और आत्मीय व्यवहार से चकित होकर पूछते, ''क्या हम पूर्व परिचित हैं?'' हमारा जवाब 'ना' होता, फिर वे हँसकर कहती, ''अब तो ये मेरी बेटी है।''

इन दो दिनों में कोई मेरे और मैं किसी के करीब रही तो वो माँ सरोज थीं। जाने कितनी बातें... देश, समाज, कार्यक्षेत्र से सम्बद्ध और कुछ व्यक्तिगत भी। पीड़ा आनंद की चाशनी में लिपट कर मेरे सामने आती, मगर मुझे उसका असली रंग दिख ही जाता। उकने कहकहों में पीड़ा का एकसार होना, कहीं ना कहीं मेरे अंदर उतर चुका है। उनसे विदा होकर भी मैं उन्हें साथ ले आई हूँ और रास्ते भर वे मुझसे वैसे ही बोलती-बतियाती

रही हैं। विश्वविद्यालय-भ्रमण के नाम पर वहाँ के उपकुलपति श्री अरुण वाजपेयी से औपचारिक मुलाकात के बाद हम होटल लौट आए हैं। पहाड़ काटकर बनाए गए रास्तों ने प्रभावित किया ही, साथ ही ड्राइवर की दक्षता ने भी दिल को छुआ है। कोई जल्दबजी नहीं! स्थिरचित्त होकर गाड़ी चलाते हैं ये।

रात्रि भोजन के बाद 11 बजे हम टहलने निकलते हैं। बढ़ते हुए मुख्यमंत्री आवास तक जा निकलते हैं। वातावरण पूरी तरह शांत! किन्तु मन में किसी तरह का भय नहीं, कोई आशंका नहीं। कोई पुलिस फोर्स नहीं। चोर-उचक्के या स्त्री-मन को आतंकित करने वाले असामाजिक तत्व नहीं। इतनी निर्भीकता पहले कभी महसूस नहीं की। एक खयाल उभरता है ''क्या यह परिवेश पूरे हिन्दुस्तान का नहीं हो सकता? क्या हम थोड़े कम सभ्य होकर पहाड़ के निर्मल जीवन को नहीं अपना सकते? देश की कई आंतरिक समस्याएँ यों ही खत्म हो जाएँगी।'' हम नगरों-महानगरों की ओर भागते हैं और अपनी जिंदगी को हर पल असुरक्षा के घेरे में पाते हैं, अब तो गाँव और कस्बा भी अछूता नहीं रहा। क्यों मैदान के लोग इतने निकृष्ट होते जा रहे हैं कि अपने ही देश और समाज में बहू-बेटियाँ असुरक्षा का दंश झेलती हैं। काश!''

ब्रजेन्द्र जी मेरे चेहरे पर उभरती पीड़ा को शायद पढ़ लेते हैं, धीरे से कहते हैं, ''शुक्र है, पहाड़ अब तक बचा हुआ है।''

सड़क पर कई युगल, लड़कियाँ और माता-पिता के साथ आए बच्चे घूम रहे हैं। ये भी पर्यटक हैं, तभी तो मेरी तरह ये भी रात के 12 बजे खुली हवा में निर्भीकता की साँस अपने में भरकर लौटना चाहते हैं। यहाँ देह की सुरक्षा की चिंता नहीं पनपती। यहाँ शोषण ने सुरसा-सा मुँह नहीं फैलाया है, जबकि मैदानी जीवन में मजदूर से लेकर पूँजीपति, शिक्षक से लेकर न्याय के संरक्षक भ्रष्टाचार के पुतले बने हुए हैं। यहाँ किसी भी दृष्टि में मलिनता नहीं, कलुषता नहीं, लोभ नहीं, द्वेष नहीं, द्वेष की भावना अगर पनपी भी है तो उन लोगों में, जिनके एक पैर नागरी सभ्यता के दलदल में हैं। होटल का मुख्य द्वार बंद हो जाने की आशंका से हम आधी रात में भी व्याप्त उस सुकून भरे लम्हे और परिवेश से हटकर होटल की ओर बढ़ते हैं। मैनेजर अपने काम में तल्लीन है, वेटर सो चुके, उन्हें सुबह 7 बजे के पहले ड्यूटी पर नहीं लगना, जबकि मैनेजर उनसे पहले काउंटर पर आ जाते हैं। वेटर भी सौम्य, शालीन! फूहड़पन के लिए कोई जगह नहीं। मैं अपने कमरे में सोने के पहले ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि देश के इन स्वर्गिक स्थलों की नैसर्गिकता बची रहे जो धीरे-धीरे शहरीकरण से लील लिए जाने की प्रक्रिया में हैं।

23 की भोर। आज शाम हमारी वापसी है, इसलिए पूरा दिन प्रकृति के बीच बिताना है। गाड़ी सहित ड्राइवर गुड्डू अपने समय पर उपस्थित। सुबह के 10.30 हो चुके हैं। मैं बाजार में घुमाने से मना कर देती हूँ। हम राष्ट्रपति भवन जाते हैं जहाँ गाइड हमें 3 प्वाइंट घुमाते हुए वहाँ का इतिहास और उसकी विशिष्टता रटे-रटाए तोते की तरह बताता है। एक कमरे में, एक गोल मेज के पास ले जाकर वह बड़ी शान से बताता है कि ''यहीं बैठकर, इसी टेबल पर वायसराय माउंटबेटेन और नेहरू जी ने भारत-विभाजन की प्रथम वार्ता की।'' लोग श्रद्धापूर्वक उस मेज को देखते नजर आते हैं, मेरे मुँह से अनायास निकलता है, ''तो यही वह मनहूस जगह है जहाँ देश का दुर्भाग्य तय होना शुरू हुआ था और उस दुर्भाग्यपूर्ण स्मृति को म्यूजियम में सुरक्षित रखा जा रहा है।'' कितनों ने मेरी बात पर कान दिया, पता नहीं। हाँ, 1965 ई. में राष्ट्रपति भवन को एडवांस स्टडी का रूप देकर परम आदरणीय राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने उस स्थल की महत्ता बढ़ा दी, हालाँकि गाइड हर कमरे की बनावट और बुनावट पर अधिक व्याख्यान देता रहा, जैसे ''यह घड़ी 1888 की है और डच द्वारा लाई गई, यह शिलिंग अखरोट की लकड़ी से बनी है, शेष लकड़ी वर्मा से मँगवाई गई। यहाँ सेफ्टी के लिए शिलिंग की ग्लास के ऊपर 24 वाटर टैंक हैं'' आदि-आदि। मेरा मन शोधार्थियों के लिए की गयी सुव्यवस्था देखकर प्रफुल्लित हो उठता है और ''काश! मैं भी कभी यहाँ रहकर शोधकार्य कर सकूँ।'' अंतस से स्वयं के लिए दुआ निकलती है।

स्टेट म्यूजियम, कृषि संस्थान, पोटैटो रिसर्च सेंटर घूमते हुए मेरा मन जहाँ जा अटकता है वह है—नालदेहरा। ऊपर तक जाने के लिए हम घोड़े पर सवार होते हैं। संजू नामक वह श्रमिक जो दो घोड़ों की कमान सँभालते हुए अपनी सादगी भरी बातों से जीवन के कुछ गूढ़ तथ्य समझा जाता है। अपने काम से खुश, अपनी कमाई से संतुष्ट! ईर्ष्या-द्वेष उसे नहीं मालूम। पर्यटकों से टिप लेना वह नहीं जानता, लेकिन प्रफुल्लित होकर कहता है, ''मैडम जी, अगली बार आओ तो हमारे गाँव जरूर आना।''

मेरे कहने पर कि ''भैया! हमें तो ना पहाड़ का खाना मिला ना चाय मिली, वही दिल्ली वाला खाना यहाँ भी। आप चाय पिलाओगे?''

''ओजी मैडम जी आप जाओ, बच्चों को भी लेकर आओ। हमारे घर चलो, चाय क्या, हमारे घर का खाना खाओ, हमारे त्योहारों में रहो... लेकिन मैडम जी! आप लोगों को हमारे घर का खाना अच्छा नहीं लगेगा।''

मैं उसकी सरलता और इस तकलीफ में भी जीवन जीने की उसकी कला से सीख लेती हूँ। वह इसी नालदेहरा की तलहटी में बसा सिवी गाँव का निवासी है। उसके लिए अतिथि आज भी देव हैं। एडवेंचर प्वाइंट, मंदिर, गोल्फ कोर्स, और ना जाने किन-किन स्थलों के बारे में बताता वह शीर्ष पर जा पहुँचता है। दलदल भरे सँकरे रास्ते से चढ़ाई करते हुए भी उसके चेहरे पर कोई शिकन नहीं, लौटने की

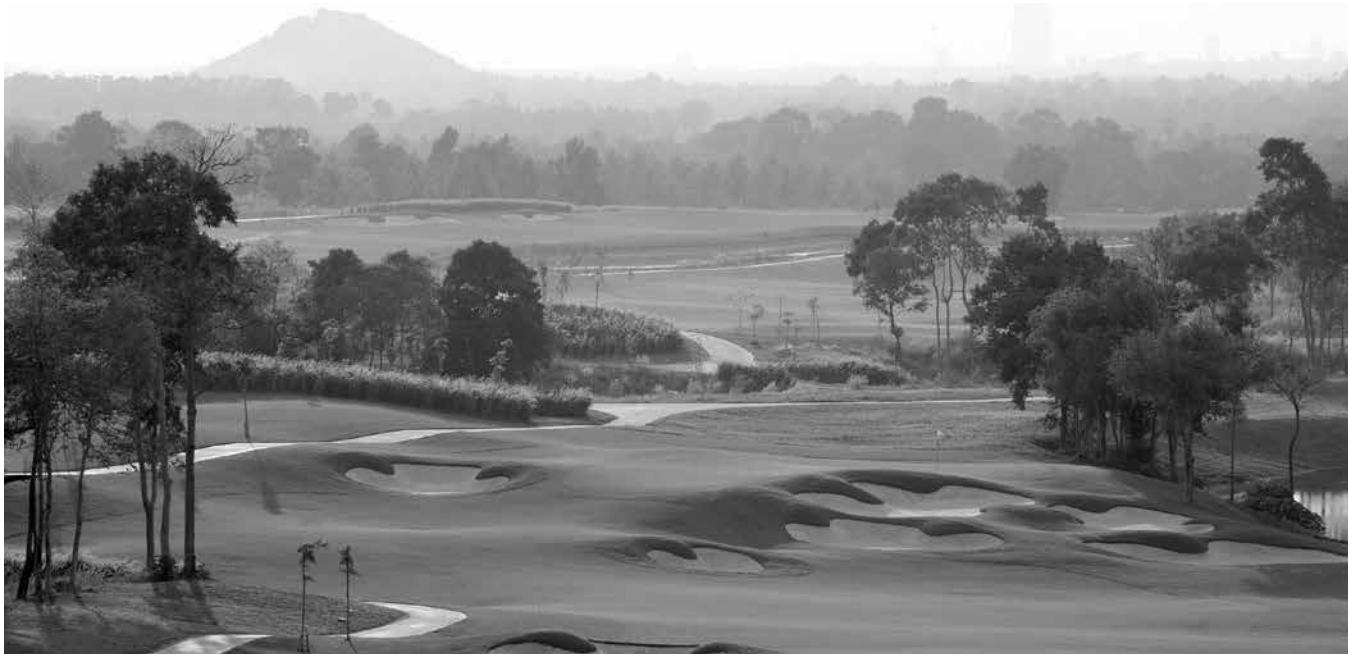

कोई जल्दबाजी नहीं। रास्ते में 75 वर्षीय रामू काका मिलते हैं, उडी गाँव के, नीचे गाँव से ऊपर पहाड़ पर गाय चराने आते हैं, दोनों की दुआ-सलाम में नैसर्गिक आत्मीयता छलक पड़ती है। काका के चेहरे पर संतुष्टि की चमक है। देवदारों के बीच से घोड़ों पर सवार हमें गुजारते हुए वह जहाँ रुकता है, वह लवर प्वाइंट कहलाता है। मैं अनायास पूछ बैठती हूँ–

''इसे लवर प्वाइंट क्यों कहते हैं? कितनी सुकून भरी जगह है यह!''

''ओजी! नए जोड़े यहाँ आते हैं, और घंटों बैठते हैं। आप घोड़े से उतरकर जाओ तो आगे।''

उसके बार-बार कहने पर मैं आगे बढ़ती हूँ। देवदार का सघन वन, फिर भी पर्याप्त खुलापन! असीम शांति, किन्तु सन्नाटा नहीं। आत्मचिंतन के लिए सर्वश्रेष्ठ जगह! सचमुच! देवभूमि है यह। देवदार से घिरी देवभूमि! वह स्थल चारदीवारी से घिरा मंदिर नहीं, लेकिन मंदिर से भी अधिक शुचिता का एहसास करता हुआ। पवित्र ऊर्जा का संचरण मैं महसूस करती हूँ। घोड़े वाले को कहकर मैं वहीं जरा दूर जा बैठती हूँ। अंतस से आवाज आती है, ''तुम ऐसी ही जगह आना चाहती थी ना, जहाँ कोई ना हो, सिर्फ तुम रहो और प्रकृति बिखरी हो चारों ओर।''

मैं आत्मविभोर-सी 'हाँ' में सिर हिला देती हूँ। एक-एक पल को समेट लेना चाहती हूँ, पूरी ऊर्जा भर लेना चाहती हूँ। मैं ना जाने आत्मलोक का कौन-सा कोना भ्रमरण कर रही होती हूँ, कुछ बूँदें आ गिरती हैं, रास्ता दलदल भरा है, जरा हटकर प्रकृति निहारते ब्रजेन्द्र जी मेरी तंद्रा में धीरे से खलल डालते हैं और वापस चलने का इशारा करते हैं। घोड़े पर सवार में घोड़े वाले संजू भैया से अगली बार उनका आतिथ्य स्वीकारने का वादा कर लौटती हूँ। बारिश का अनुमान कर ड्राइवर गुड्डू गाड़ी लेकर कुछ ऊपर तक आ गया है। कुफरी का चिड़ियाघर, फिर जाखू मंदिर, जहाँ अभिषेक बच्चन द्वारा निर्मित 108 फीट लम्बी हनुमान जी की प्रतिमा आकर्षण का केन्द्र है। जाखू पर्वत अपनी पौराणिक कथा के लिए प्रसिद्ध तो रहा ही है। इन स्थलों के भ्रमण के पश्चात् हम होटल लौटते हैं, सफर अभी जारी है। हमें दिल्ली के लिए वोल्वो (बस) लेनी है, सो सामान लेकर मैनेजर और वेटर से विदा लेकर हम फिर से गाड़ी में।

बस चल रही है। यात्रा हो रही है... मैं अपने अंदर एक साथ उग आए नालदेहरा के देवदार की दिव्यता महसूस कर रही हूँ। बीच-बीच में माँ सरोज वशिष्ठ का खिलखिलाता चेहरा भी उन देवदारों के बीच उग आता है। सचमुच! देवदार-सा ही तो व्यक्तित्व है उनका। हमेशा दूसरों को शीतलता, शांति ओर पवित्र ऊर्जा से स्पंदित करता हुआ। किन्तु पहाड़ काटकर बनाई गई सड़क और उस पर फर्राटे से दौड़ती गाड़ियों के धुएँ से खाँसते बीमार देवदार और चीर मुझे द्रवित कर रहे हैं जितना कि वहाँ मकान बनाते हुए श्रमिक। मैं घर पहुँच चुकी हूँ किन्तु यात्रा जारी है... नालदेहरा अपने समूचेपन के साथ मुझमें समाविष्ट है। मैं घंटों उसमें विचरती रहती हूँ और मेरे सहयात्री हैं चीर, देवदार, चरवाहा रामू काका, घोड़े वाला संजू भैया, वेटर चन्दन, विजय और ड्राइवर गुड्डू। नालदेहरा! मैं सुन रही हूँ तुम्हें! तुमसे होकर गुजर रही हूँ हर रोज! तुम्हें जी रही हूँ हर पल!

डी-136, तृतीय तल, गली नं. 5, गणेश नगर,
पांडव नगर कॉम्प्लेक्स, दिल्ली-110092

कविताओं के पास हैं अभी मनुष्य

(वरिष्ठ कवि दिविक रमेश से श्याम सुशील की बातचीत)

श्याम सुशील

श्याम सुशील दैनिक 'हिन्दुस्तान' में करीब बीस वर्षों तक संपादन कार्य में संलग्न रहे। दूरदर्शन के लिए अनेक साहित्यकारों पर संक्षिप्त शोध, दूरदर्शन-रेडियो आर्काइव्स में भाषा विशेषज्ञ के तौर पर स्वतंत्र रूप से कार्य। नया पथ, वागर्थ, नया ज्ञानोदय, कादम्बिनी, आजकल, कथा, कथन, भाषा आदि पत्रिकाओं में कविताएँ, लेख, साक्षात्कार, पुस्तक-समीक्षा आदि प्रकाशित। 'नवान्न', 'बूधन' और 'नन्हीं कलम' त्रैमासिक पत्रिकाओं का संपादन। संप्रति स्वतंत्र लेखन।

श्याम सुशीलः आपने अपना नया कविता संग्रह 'माँ गाँव में है' अपने गाँव किराड़ी को समर्पित किया है... सत्तर साल पहले किराड़ी में जन्मे उस बच्चे के पारिवारिक माहौल और बचपन के बारे में कुछ बताइए, जिसे आज साहित्य की दुनिया में दिविक रमेश के नाम से जाना जाता है।

दिविक रमेशः हरियाणा की सीमा से लगे दिल्ली के एक गाँव किराड़ी में मेरा जन्म (1946) में हुआ था। मेरे दादा जी आसपास के कितने ही गाँवों में अपनी ज्योतिष विद्या के लिए प्रख्यात थे। वे पुराणों आदि के बहुत अच्छे अध्येता थे। रामायण, महाभारत आदि की कितनी ही दिलचस्प कहानियाँ मैंने उन्हीं से सुनी और जानी थीं। तीज-त्यौहार पर उनसे संबंधित कहानियों की जानकारी मुझे दादा जी से ही मिलती थी और आज तक मैं उन्हें नहीं भूला हूँ। यूँ दादा जी भी कम नहीं थे, बदले में पैर दबवाते, कमर पर मुक्की मरवाते या खुजली करवाते थे। लेकिन कहानियाँ बड़ी मजेदार सुनाते थे। मेरे पिताजी, स्कूली शिक्षा की दृष्टि से कम पढ़े-लिखे थे, लेकिन

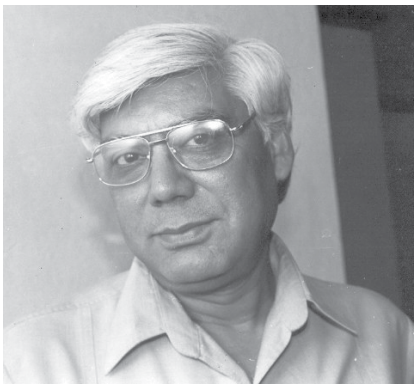

लोकगायक बहुत अच्छे थे। लोकगायक होने के कारण उनके यहाँ जाति-पाँति के भेदभाव की भावना लगभग नहीं थी। व्यक्ति किसी भी जाति आदि का हो उसे आयु के अनुसार आदर देने का संस्कार उनहोंने ही दिया था। बताना चाहूँगा कि एक बार मैंने अपने गाँव में आयु में काफी बड़े एक 'कुम्हार' का नाम ले लिया था। पिता जी को इतना गुस्सा आया कि उन्होंने वहीं गली में ही मुझे बुरी तरह से धमकाते हुए कहा कि अपने से बड़ों का नाम नहीं लिया जाता बल्कि आयु के अनुसार चाचा या ताऊ कहकर पुकारा जाता है। हमारे गाँव की एक गली परली गली कहलाती थी जिसमें प्रायः दलित वर्ग के लोग रहते थे। तब दलित शब्द नहीं चलता था बल्कि जिन्हें आज हम जातिसूचक शब्द के नाम से जानते हैं वे ही चलते थे। मेरे पिता जी की सोच के कारण ही उनके प्रति मेरे मन में कभी यह भावना नहीं आई जो सवर्णों में पाई जाती रही है। यही कारण है कि बाद में चलकर कई दलित लेखक ना केवल मेरे अच्छे दोस्त थे बल्कि मेरा उनके घर पर मजे से खाना-पीना भी था। मेरी माँ की एक अच्छी सहेली गाँव की उस समय के शब्दों में एक 'चमारिन' थी जिन्हें हम आदर के साथ चाची कहते थे और वे हमें बहुत प्यार करती थीं। उसी समय की एक और बुरी प्रथा ने मेरे बालमन पर प्रतिकूल प्रभाव छोड़ा था जिसके कारण बड़ा होने पर एक तीखे व्यंग्य की कविता लिखी गई जिसका शीर्षक है 'और जाति बलि कैसे देहि' जो हावड़ा की वार्षिकी 1982 में प्रकाशित हुई थी और उसमें आज की भाषा में जातिसूचक शब्दों का ही सहज भाव से इस्तेमाल हुआ था। बाद में इस कविता से उन शब्दों को निकाल कर 'पुन्न के काम आए हैं' शीर्षक से अपनी दूसरे संग्रह 'खुली आँखों में आकाश' में प्रकाशित किया था। असल में जब गाँव के सवर्णों के कुओं को पक्का किया जाता था तो जोखिम का सारा काम दलितों को करना होता था। हादसे में वे ही मारे जाते थे। पंडित जी उनके रोते-बिलखते परिजनों को पुन्न के काम आए हैं कह कर सब्र करने का उपदेश देते थे। कविता के माध्यम से मेरे मन में प्रश्न उठा कि पुन्न के काम हमेशा दलित ही क्यों आएं, सवर्ण क्यों नहीं। यहाँ मैं अपनी कविता को उसके मूल रूप में सुनाना चाहूँगा जो इस प्रकार है—

''और जाति बलि कैसे देहि'

''सब के सब मर गये
इन विधवा चमारिनों को
कुछ दे दिवा दो भाई
कैसा विलाप कर रही हैं।''

''कैसे हुआ पंडित जी?''

''वही पुरानी गाथा—
कोठी गाल रहे थे कुएँ की
लगता है
ढह गयी
सब के सब दब गए
होनी को कौन रोक सकता है।''

'अरी अब सबर भी करो
पुन्न के काम ही तो आए हैं।
लगता है कुआँ बलि चाहता था।''

''हाँ पंडित जी
जब भी कुआँ बलि चाहता है
बिचारे चूहड़े चमारों पर ही
कहर ढहाता है।''

''सब उसी की माया है भाई।
अरी अब सबर भी करो।''

हाँ, मेरे पुत्र होने को मेरे पिताजी महत्त्व देते थे। शायद इसी प्रतिक्रिया में मैं स्त्री के हक का हिमायती होता चला गया।

श्याम सुशीलः आपका झुकाव दर्शन की ओर भी रहा है। किस दर्शन को आप जीवन के बहुत करीब पाते हैं?

दिविक रमेशः मार्क्सवाद या वामपंथ के मैं करीब रहा हूँ। लेकिन उसकी राजनीति की कठपुतली बनना मुझे रास नहीं आया। अटकलों के नाम पर कुछ फायदा उठाऊ लोगों के कारण मोहभंग भी हुआ। छद्म रूपों का मैं विरोधी हूँ। व्यापक स्तर पर मैं मानवतावाद का हिमायती हूँ और वंचितों का पक्षधर। इसके लिए जहाँ से भी ताकत और राह मिले, ले लेता हूँ।

श्याम सुशीलः लेखन के क्षेत्र में विचारधारा की भूमिका को आप किस रूप में देखते हैं?

दिविक रमेशः विचारधारा दृष्टि के रूप तक ही सीमित रहनी चाहिए। उसे लादा नहीं जाना चाहिए। अनुभव के स्तर पर रचनाकार एक अर्थ में स्वपाकी होता है। किसी अन्य का पकाया उपयोग में लाएगा तो नकली और सपाट हो जाएगा।

श्याम सुशीलः जीवन में किस व्यक्ति से सबसे ज्यादा प्रभावित रहे हैं?

दिविक रमेशः अनेक व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञ हूँ। जहाँ तक रचनाकार के रूप में प्रभावित होने का प्रश्न है तो मैं शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, जयप्रकाश भारती के नाम विशेष रूप से लेना चाहूँगा। शमशेर से पूर्णत्व और पूरी निष्ठा की प्रेरणा मिली तो तो त्रिलोचन से समाज के प्रति गहरे और निश्छल लगाव की जातीय राह सीखने में मदद मिली। जयप्रकाश भारती से बात-बात पर उत्तेजित और उछलते रहने की प्रवृत्ति से बचे रह कर सम्यक् दृष्टि से खुद को प्रस्तुत करने की निर्द्वन्द्व कला सीखने को मिली। कहाँ तक सफल हूँ यह अलग बात है।

श्याम सुशीलः अक्सर रचनाकार का रिश्ता आलोचक और रचना के साथ बड़ा पेचीदा और उलझाव-भरा हो जाता है। आपने अपनी रचना के संदर्भ में इस रिश्ते को कैसा महसूस किया?

दिविक रमेशः मुझे अपने पाठकों और वरिष्ठ एवं अनुज रचनाकारों का बहुत प्यार मिला है। मेरी रचनाओं पर लिखा भी गया है। लेकिन कायदे से आलोचक मुझे नहीं मिल सका है। इस दृष्टि से मैं खुद को काफी उपेक्षित मानता हूँ। अभाव में इतना जरूर विचार बना लिया कि मुझे लिखते रहना है। आलोचकों की मार को सहना अपने आप आ गया है। नुकसान भी हुआ है। शिकायत है पर उसके प्रति बहुत मुखर होने का मन नहीं होता। बहुत तरह से मान्यता मिलने, और हेमंत कुकरेती, गोपेश्वर सिंह, अब्दुल बिस्मिल्लाह, विष्णु खरे, प्रेम जनमेजय आदि सुप्रसिद्ध रचनाकारों का मेरे कवि रूप की उपेक्षा के प्रति (जिसे करने वालों में बहुत से संपादक और पत्रिकाएं भी हैं) ध्यान दिलाने के बावजूद आप पाएंगे कि महत्त्व के स्थानों पर मेरे कवि का जिक्र करने में भी बहुत से मान्यवरों की जुबान जलती है। लेकिन यह लिख कर मुझे जो मिला है उसे कमतर नहीं मानता। मेरे पहले ही दो कविता संग्रहों पर सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार जैसा प्रतिष्ठित सम्मान मिल गया था। एक विश्वविद्यालय में काव्य नाटक एम.ए. में पढ़ाया जा रहा है। शोध भी हुए हैं। देर से और अपवाद स्वरूप ही सही प्रो. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने साहित्य अकादमी की ओर से प्रकाशित कविता संकलन में मेरी कविता 'गेहूँ घर आया है' को भी गौरवपूर्ण स्थान दिया है। फैज अहमद फैज जैसे विश्व प्रसिद्ध शायर ने अपनी पत्रिका 'लोटस' में मेरी कविताएँ प्रकाशित की हैं। कोरियाई भाषा में हिन्दी से अनूदित कविताओं का सबसे पहले प्रकाशित होने वाला संकलन मेरा ही है। और भी बहुत कुछ है। इस सबके बावजूद यदि कवियों की समय-समय पर बनने वाली सूचियों में मेरे नाम को नदारद रखा जाता है तो अपना नाम जुड़वाने के लिए भीख तो नहीं माँगूंगा। त्रिलोचन से बहुत कुछ सीखा है।

श्याम सुशीलः कभी-कभी ऐसी हताशा नहीं होती कि कविता आखिर किसलिए?

दिविक रमेशः हताशा तो नहीं लेकिन कभी-कभी कुंठा या अवसाद अवश्य हो जाता है (खासकर जब साहित्यिक गुटबाजियाँ घेरने लगती हैं) लेकिन होता है क्षणिक ही। चुनौतियाँ मुझे और लिखवा लेती हैं।

श्याम सुशीलः न लिख पाने की स्थिति में कैसा महसूस होता है?

दिविक रमेशः बेचैनी और कमतरी का भाव। और कभी-कभी चुक जाने का भय भी।

श्याम सुशीलः आपकी प्रकाशित रचनाओं में से सर्वाधिक प्रिय रचनाएँ?

दिविक रमेशः बहुत ही कठिन सवाल है। फिर भी चुनना ही पड़े तो मैं अपने काव्यनाटक 'खण्ड खण्ड अग्नि', 'गेहूँ घर आया है' की कविताएँ और अपने अन्य संग्रहों की कुछ कविताओं को चुनना चाहूँगा। बाल-साहित्य में मुझे अपनी अधिकांश कविताएँ पसंद हैं। कहानियों में पुस्तक 'मेरे मन की बाल कहानियाँ'की सभी कहानियाँ पसंद हैं। अपना बाल-नाटक 'बल्लू हाथी का बालघर' मुझे बेहद पसंद है। महादेवी वर्मा, बच्चन, कोरिया आदि से सम्बद्ध कुछ संस्मरण भी मुझे प्रिय हैं।

श्याम सुशीलः एक पाठक के रूप में अच्छा रचनाकार आप किसे मानते हैं?

दिविक रमेशः जो संवेदनशील और दृष्टि सम्पन्न हो। जिसकी रचना में सहज रचनात्मकता हो, बेकार का चमत्कार और गढ़ना न हो। उलझाव न हो। जो एक अच्छा इंसान भी हो।

श्याम सुशीलः आपके लिए सबसे बड़ी खुशी क्या है?

दिविक रमेशः कि मैं निरंतर रचनारत हूँ।

श्याम सुशीलः आपकी कमजोरी?

दिविक रमेशः संबंधों को लेकर अतिशय भावुकता और वह भी उन पर एकाधिकार समझने की हद तक ही अव्यावहारिक प्रवृत्ति।

श्याम सुशीलः कौन-सी चीज आपके अंदर जोश भर देती है?

दिविक रमेशः अन्याय के खिलाफ सोचते हुए, बोलते हुए।

श्याम सुशीलः आपको सबसे ज्यादा संतोष किस काम में मिलता है?

दिविक रमेशः अपने मन की रचना करके और अपनों के बीच बने रहकर।

श्याम सुशीलः आपकी जिंदगी में कोई ऐसी बात जिसका आपको अफसोस है?

दिविक रमेशः कभी न कभी आत्मविश्वास की कमी का आ जाना।

श्याम सुशीलः दुनिया में सबसे अच्छी चीज आपको क्या लगती है?

दिविक रमेशः जीवन।

श्याम सुशीलः और सबसे बुरी चीज?

दिविक रमेशः क्लेश और मृत्यु।

श्याम सुशीलः आपको सबसे ज्यादा प्यार किस पर आता है?

दिविक रमेशः व्यक्ति-संबंधों में आजकल अपनी नातिनों (डोरथी और दयाना) पर। यूँ मुझे अपने परिवार के सभी सदस्य प्यारे हैं और उनके प्रति कुछ भी प्रतिकूल देखते हुए घबरा भी जाता हूँ और बेचैन भी हो जाता हूँ। कामों में मुझे रचनारत रहना सबसे प्यारा काम लगता है।

श्याम सुशीलः किस बात पर रोना आता है?

दिविक रमेशः बच्चों की बीमारी पर। चाह कर भी कुछ न कर पाने की लाचारी पर। साथ ही ठीक होते हुए भी अपने को गलत समझे जाने पर।

श्याम सुशीलः हँसी किस बात पर आती है?

दिविक रमेशः अपने से हो जाने वाली मूर्खता पर।

श्याम सुशीलः ऐसी कौन-सी चीज है जो आपको दूसरों में नापसंद है?

दिविक रमेशः बनावटी और दोगलापन।

श्याम सुशीलः आपको अपने बारे में कौन-सी चीज पसंद नहीं है?

दिविक रमेशः अतिशय भावुकता। इसके चलते मैं बहुत बार ठगा ही नहीं गया हूँ बल्कि नुकसान भी उठाया है। आघात भी पहुँचे हैं। उदाहरण के लिए कई बार मैंने कुछ लोगों (रचनाकारों सहित) की 'आउट आफ द वे' जाकर मदद की लेकिन जब उनकी बारी आई तो किसी-न-किसी बहाने कन्नी काट गए। बातें छिपी नहीं रहतीं।

श्याम सुशीलः आपके लिए कामयाबी (सफलता) क्या है?

दिविक रमेशः थोड़ा व्यवहारिक होकर कहूँ तो दूसरों के द्वारा स्वीकृत किया जाना।

श्याम सुशीलः आपके लिए ईश्वर क्या है?

दिविक रमेशः एक रहस्य।

श्याम सुशीलः क्या आप भाग्य को मानते हैं?

दिविक रमेशः एकदम न मानता हूँ ऐसा लगता नहीं है। कभी-कभी उसकी गिरफ्त में खुद को पाता हूँ, ना चाहकर भी।

श्याम सुशीलः आपके लिए धर्म क्या है?

दिविक रमेशः जो मनुष्य मनुष्य में भेद न करे। हर भेदक तत्त्व से ऊपर रहने की प्रेरणा देने में सक्षम करे। यूँ धर्म को आजकल जिस संकीर्ण अर्थ में लिया जाता है उस पर एक कटाक्ष मेरी कविता 'खोल दो पुनश्च' में देखा जा सकता है। कुछ पंक्तियाँ देखिए–

''कहाँ जाना था
कि एक जमीन होती है हिन्दू की
कि एक मुसलमान की होती है
एक ही पृथ्वी पर।

हम तो यह भी नहीं जानते थे
कि हिन्दू जनेऊ होता है
कि हिन्दू तिलक होता है
और मुसलमान इंसान से
कुछ अलग भी होता है।''

श्याम सुशीलः पूजा-पाठ में विश्वास करने या न करने का कारण?

दिविक रमेशः इस बारे में संशयग्रस्त हूँ। मन और बुद्धि में द्वन्द्व चलता रहता है।

श्याम सुशीलः आज के समय का सबसे बड़ा आश्चर्य आपको क्या लगता है?

दिविक रमेशः कि फिर भी भारत की जनता सह रही है और सहर्ष वोट डाल देती है।

श्याम सुशीलः आपको किससे डर लगता है?

दिविक रमेशः अपने भीतर के डर से। यह भीतरी डर अनेक कारणों से उपजता रहता है। शायद जो लोग जीवन और कर्म को मोह तक ही हद तक महत्त्व देते हैं उन्हें यह ज्यादा ही सताता है।

श्याम सुशीलः अगर आप लेखक नहीं होते तो क्या काम करना पसंद करते?

दिविक रमेशः काम तो मैंने लेखन के साथ-साथ भी किया है। विश्वविद्यालय में अध्यापक रहा हूँ। हाँ, अभिनेता बनने की इच्छा जरूर रही है।

श्याम सुशीलः आपकी मनपसंद पुस्तकें?

दिविक रमेशः अनेक हैं। कुछ ही गिनाऊँ तो उनमें सबसे ऊपर 'उस जनपद का कवि हूँ', 'धरती', 'धरती धन न अपना', 'खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर', 'वोल्गा से गंगा', 'संस्कृति के चार अध्याय', 'अनारो' तो आएँगी ही। कुछ ऐसी पुस्तकें भी हैं जिनके कुछ हिस्से या रचनाएँ प्रिय हैं।

श्याम सुशीलः आपका प्रिय नशा?

दिविक रमेशः रचनारत होना।

श्याम सुशीलः आपकी प्रिय प्रार्थना?

दिविक रमेशः उठ जाग मुसाफिर भोर भई...।

श्याम सुशील : आपके लिए सबसे बड़ा सम्मान क्या है?

दिविक रमेशः सबका प्यार और अपनापन।

श्याम सुशीलः एक बेहतर दुनिया की कल्पना किस रूप में करते हैं?

दिविक रमेशः मेरी कविता का एक अंश है जिसमें उत्तर निहित है—

''है अभी बहुत कुछ
बहुत कुछ है पृथ्वी पर।

गीतों पास हैं अभी वाद्ययंत्र
वाद्ययंत्रों के पास हैं अभी सपने
सपनों के पास हैं अभी नींदें
नींदों के पास अभी रातें
रातों के पास हैं अभी एकान्त
एकान्तों के पास हैं अभी विचार
विचारों के पास हैं अभी वृक्ष
वृक्षों के पास हैं अभी छाहें
छाहों के पास हैं अभी पथिक
पथिकों के पास हैं अभी राहें
राहों के पास हैं अभी गन्तव्य
गन्तव्यों के पास हैं अभी क्षितिज
क्षितिजों के पास हैं अभी आकाश
आकाशों के पास हैं अभी शब्द
शब्दों के पास हैं अभी कविताएँ
कविताओं के पास हैं अभी मनुष्य
मनुष्यों के पास है अभी पृथ्वी।

है अभी बहुत कुछ
बहुत कुछ है पृथ्वी पर
बहुत कुछ।''

ए-13, दैनिक जनयुग अपार्टमैंट्स,
वसुंधरा एन्क्लेव, दिल्ली-110096

लघु कथाएँ

डॉ. सुरेन्द्र गुप्त

लेखक जाने-माने पत्रकार वअनुवादक हैं। शिक्षा एम.ए., पीएच.डी.।

ये बेचारे तो, बस जी रहे हैं

उनकी बिटिया हमारे पास कमरे में आकर फूट-फूट कर रोने लगी थी। मैं और श्रीमती जी क्या करते, बस उसे रोते हुए देखते रहे। वह वहीं लोकल ब्याही हुई थी और इस समय अपने माता-पिता के पास उनके घर बदलने में सहायता करने के लिए आई थी।

हाँ, उसके बूढ़े माता-पिता हमारे मकान में पिछले दस वर्षों से रह रहे थे। उनसे मकान खाली करवाना बहुत जरूरी था। असली बात तो यह थी कि हमारे एक भाई वकील हैं। उन्होंने हमें बुरी तरह से डरा दिया कि यदि वे दो वर्ष तक और मकान में रह गए तो मकान खाली नहीं होगा। और मकान पर इनका कब्जा हो जाएगा। इसी बात से डरते हुए, हमने इन्हें मकान खाली करने के लिए कह दिया। जब कि इनसे मकान खाली करवाने का हमारा कतई मन नहीं था।

वह एक जगह मकान देखकर पेश्गी किराया दे आए। निर्धारित तिथि को उन्होंने सामान बाँधा तथा कुली और रेहड़े वाले को बुला लिया। अभी वह सामान रेहड़े पर रखवाने की तैयारी ही कर रहे थे कि जिस घर में जा रहे थे, उसका मकान मालिक वहाँ आया और यह कह कर पेशगी किराया वापस कर गया कि उन्होंने मकान किराए पर नहीं देना। सच्चाई यह थी कि उन्हें किसी ने भड़का दिया कि ये लोग जहाँ पहले रहते थे, वहाँ से मकान नहीं छोड़ना चाहते थे, और बड़ी मुश्किल से वकील के द्वारा मकान खाली करवाया गया है।

घर के प्रांगण में उसके बूढ़े माता-पिता, बँधे सामान पर बैठे सोच रहे थे कि अब कहाँ जाएँ? रेहड़े वाला तथा कुली जा चुके थे। दिन में धूप की वजह से सर्दी दबी रही, किन्तु संध्या होते-होते, सर्दी ने भी अपने तेवर दिखाने शुरू कर दिए थे। उनकी बिटिया अभी भी हमारे सामने हाथ बाँधे खड़ी थी, और रोए जा रही थी। वह मकान खाली न करवाने के लिए हमारे सामने गिड़गिड़ा रही थी। बहुत ही विकट स्थिति थी। कोई भी रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था। तभी उनकी बिटिया आँसू पोंछती हुई शिथिल कदमों से बाहर निकल गई। मैं और पत्नी भी उसके पीछे-पीछे बाहर चले आए।

उसके माता-पिता एक बड़े से ट्रंक पर बैठे थे। भयंकर सूखा पड़ने के कारण जिस प्रकार धरती पर तरेड़ें पड़ जाती हैं, उसी प्रकार उनके ऊबड़-खाबड़ मुख पर, उभरी तरेड़ों और उनके बीच में धँसी हुई आँखों को देखकर लग रहा था कि बस अब रोए कि अब रोए। यह दृश्य देखकर मुझे भी लगा, कि यदि कुछ क्षण रुका रहा तो रो पड़ूगा। मेरा भीतर भी आँसूओं से भर गया। मैंने तत्काल पत्नी का हाथ पकड़ा तथा कमरे में ले आया।

कुछ क्षण उपरांत अपने को भीतर समेट कर शान्त और धीमे स्वर में पत्नी से बोला, ''अब तुम ही बताओ, क्या करना है। कुछ तो सोचना पड़ेगा। आखिर कब तक ये इसी तरह बाहर बैठे रहेंगे। कुछ ही देर में ठंड और बढ़ जाएगी। यदि बीमार पड़ गए तो कौन इनकी देखभाल करेगा। दस वर्षों से हमारे यहाँ रह रहे हैं। इन्होंने हमेशा हमें बेटे सा प्यार दिया है, और तुम्हें बहू का। यह हमारे बूढ़े माँ-बाप की तरह ही तो हैं।'' यह सुनकर पत्नी की आँखें भी नम हो आईं। वह अपनी आँखों की कोरों को साफ करती हुई बोली, ''मैंने कब कहा था कि मकान खाली करवाओ। आपने ही तो वकील भाईसाहब के कहने से यह कदम उठाया। दोनों ही तो बुर्जुग हैं, कौन जाने कितनी बची है। मेरा तो कहना है, इन्हें वापस रहने के लिए कह दो।''

''यही मैं सोच रहा था। एक काम करते हैं, इनके पास दो कमरे, स्टोर तथा एक ड्राइंग रूम है। इनसे एक कमरा अपने पास रख लेते हैं। वैसे भी इनका कौन-सा ज्यादा सामान है। इससे वकील भाई की बात भी रह जाएगी।''

इससे पूर्व कि पत्नी कुछ कहती, वह तेज-तेज कदमों से बाहर निकल गए और उनकी बिटिया को भीतर बुला लाए। और उससे बोले, ''देख सुनंदा, हमारी इच्छा तो पहले ही

बाऊ जी से मकान खाली करवाने की नहीं थी, किन्तु...। खैर छोड़िए...। ऐसा करना, हमें एक बाहर वाले कमरे की जरूरत हैं आप वह कमरा हमें दे दो। शेष ऊपर वाले सेट में बाऊ जी तथा आंटी जी आराम से रह सकते हैं। उन्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं।''

इतना सुनना था वह मेरे तथा श्रीमती जी के पैरों में गिर पड़ी। फिर भागी-भागी बाहर गई तथा चिंता में डूबे मम्मी-पापा को वह खुश-खबरी सुनाई। यह सुनकर वे एक सैकेंड भी बाहर नहीं रुके, बिटिया के साथ ही घर के भीतर चले आए और आते ही हम दोनों के पाँव छूने लगे। मैं उन्हें रोकता हुआ बोला, ''अरे... रे... बाऊ जी ये क्या कर रहे हो, आप तो मेरे माता-पिता समान हो।'' कुछ न बोलकर, अगले ही क्षण, दोनों ही मेरी पत्नी की ओर पाँव छूने के लिए आगे बढ़े। पत्नी भी उन्हें रोकते हुए बोली, ''अरे... रे... ये क्या। आंटी जी तथा बाऊजी ये क्या कर रहे हैं आप।'' तभी उन दोनों की आँखों में झर-झर आँसू बहने लगे। उनकी बिटिया भी रोने लगी। रोते-रोते बोली, ''भाईसाहब, किराया तो नहीं बढ़ाना।''

''अरे... क्या किराया बढ़ाओगे? पेन्शन ही तो है, इनके पास और है क्या! ये बेचारे तो बस, जी रहे हैं। हाँ, अब इन्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं। किराया बढ़ाने का तो सवाल ही नहीं। जितने दिन की जिन्दगी है, यहीं आराम से काटें।'' मेरे इतना कहते ही बाऊ जी तथा आंटी जी, प्रणाम की मुद्रा में दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गए। आँसू अभी भी उनकी आँखों में भरे हुए थे। पहले के आँसू शायद परेशानी भरे थे और ये खुशी के।

तभी श्रीमती जी बोली, ''आप बैठिए, मैं अभी आपके लिए चाय बना लाती हूँ।'' इतना कह कर वह चाय बनाने रसोई में चली गई। उसी समय कुछ ऐसा आभास हुआ, कि बारिश शुरू हो गई है। हम बाहर निकले तो सचमुमच में बूँदा-बाँदी शुरू हो गई थी। मैं तत्काल पत्नी से बोला, ''अरे सुनो, चाय बनाकर ऊपर दे देंगे, पहले इनका सामान ऊपर चढ़वाना पड़ेगा। बाहर बारिश शुरू हो गई है।'' यह कहकर वह भी भागी-भागी बाहर चली आई।

''सुनंदा, तुम जल्दी से अपने मम्मी-पापा का हाथ पकड़ कर ऊपर ले जाओ, हाँ, सीढ़ियाँ आराम से चढ़ना। मैं पड़ोस में रह रहे शर्मा जी के दोनों लड़कों को बुला कर सामान ऊपर रखवाता हूँ।'' और वह तेज-तेज कदमों से बाहर निकल गए।

मैं भिखारी नहीं हूँ

डॉ. सुरेन्द्र गुप्त

गाड़ी स्टेशन से रवाना हो चुकी थी। मेरे साथ मेरी पत्नी तथा बच्चे भी थे। हमने अपना सामान एडजेस्ट किया और इत्मीनान से अपनी-अपनी सीटों पर बैठ गए। अन्य सवारियाँ भी आपस में एक-दूसरी सवारी के साथ तालमेल बिठा कर बैठ चुकी थीं। गाड़ी को चले हुए अभी कुछ ही समय हुआ था कि वहाँ एक लड़का आकर खड़ा हो गया जिसकी आयु दस वर्ष के लगभग रही होगी। उसने अपने दाएँ हाथ की अंगुलियों को थोड़ा-सा भीतर की ओर मोड़ा हुआ था और हथेली पर रेजगारी के कुछ सिक्के डाल रखे थे। उसने हमारा ध्यान आकृष्ट करने के लिए उन सिक्कों को तीन-चार बार अपनी हथेली से पर उछाला। सिक्कों के खनकने की आवाज सुनकर डिब्बे के उस हिस्से में बैठी सभी सवारियों ने एक बार तो उसकी ओर देखा, पर दूसरे ही पल उसकी उपेक्षा करके पूर्ववत् बैठी रही। दो-एक सवारियों ने तो अपनी-अपनी गर्दनें खिड़की की ओर घुमा दी तथा चलती गाड़ी के साथ दौड़ रहे पेड़-पौधों और खेतों की ओर देखने लगी। एक सवारी ने, जिसने अपने हाथ में अखबार पकड़ रखी थी, उसने अबखार के पन्नों को पूरी तरह से फैलाकर अपने दोनों हाथों में इस कदर पकड़ लिया था कि माँगने वाले उस लड़के का चेहरा ही नजर न आए।

मेरे साथ बैठे एक सज्जन ने चुभती निगाहों से उस लड़के की ओर देखा तथा शब्दों के नुकीले बाण उस पर छोड़ता हुआ बोला, ''अरे, पढ़ा क्यों नहीं? सारी उम्र भीख माँग कर पेट भरेगा क्या?''

एक दूसरी सवारी आग में घी डालने का काम करती हुई बोली, ''हराम की खाने की जो आदत पड़ गई है।'' लड़का कुछ बोला नहीं। बस बच्चों की सी भोली-भाली सूरत से उनकी ओर देखता रहा। सभी को लगा शायद गूँगा है। यह सोचकर मेरे मन में कहीं न कहीं सहानुभूति उमड़ी और मैंने दस का नोट पर्स से निकाल कर उसके हाथ में पकड़ा दिया।

दस का नोट देख कर उसकी आँखों में एक बार तो चमक उभरी, पर दूसरे ही क्षण उसकी आँखों से टप-टप आँसू बहने लगे। आँसुओं को देख कर एक बार तो सभी सवारियाँ द्रवित हो गई। उसी समय वह अपने आँसुओं को पोंछता हुआ बोला, ''बाऊ जी, कभी मुझे भी पगार मिलती थी।''

यह सुनकर वहाँ बैठी सभी सवारियाँ आश्चर्यकित होकर जिज्ञासा भाव से उसकी ओर देखने लगी थी।।

मैंने तत्काल पूछा, ''पगार मिलती थी?''

''हाँ, बाऊजी, मैंने भी पूरे एक साल तक एक होटल में काम किया था?''

''अच्छा! फिर छोड़ क्यों दिया?'' साथ वाले

सज्जन ने, अखबार से अपनी निगाह हटा कर पूछा था।

''नहीं बाऊ जी, मैंने नहीं छोड़ा, वो तो होटल के मालिक ने ही निकाल दिया।''

''पर क्यों? जरूर कोई चोरी वगैरह, कोई गलत काम किया होगा।'' मैंने भी उसकी ओर एक सवाल दाग दिया।

यह सुनते ही वह एकदम बोला, ''नहीं बाऊ जी, कोई गलत काम नहीं किया। होटल का मालिक तो छोड़ना ही नहीं चाहता था। क्या हुआ, एक दिन दो मेमसाब चमचमाती गाड़ी में बैठ कर आई और होटल के मालिक को धमकाते हुए बोलीं, ''तुमने इन बच्चों को होटल में नौकर क्यों रखा हुआ है? तुम्हें मालूम है, बच्चों को नौकर रखना कानूनी जुर्म है। यदि एक माह के भीतर इन बच्चों को नहीं निकाला, तो हम पुलिस लेकर आएंगे।''

जब वह जाने लगी तो मालिक ने उनसे पूछा, ''मैडम, आप लोग कौन हैं?''

उन्होंने उत्तर दिया था, ''हम एन.जी.ओ. हैं, सामाजिक संस्था चलाते हैं।''

दस दिन के बाद जब महीना खत्म हुआ तो मालिक ने हम दोनों का हिसाब कर दिया। मैं मालिक के सामने हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाया था, ''मालिक मुझे मत निकालिए, मेरी माँ बहुत बीमार है। कम से कम मेरी पगार से उसकी दवाइयों का खर्चा तो निकल आता है। बापू रिक्शा चलाता है, इस महंगाई में उससे भी तो घर का खर्चा ही निकाल पाना मुश्किल होता है। मुझसे छोटे-छोटे दो भाई तथा एक बहिन भी है।''

फिर कुछ क्षण रुक कर अपनी बात जारी रखता हुआ बोला, ''मैंने उसके पैर तक पकड़े थे, पर बाऊ जी उसका दिल नहीं पसीजा था। वह कड़क आवाज में बोला था, ''अरे, यह बात तो ठीक है, पर उन औरतों का क्या करूँ। अगर वह फिर से आ गई और पुलिस वाले को साथ ले आई तो मेरे तो होटल की बदनामी हो जाएगी। यह तो सरकार को सोचना चाहिए, जिसने यह बाल-मजदूरी खत्म करने का कानून बनाया है।''

''बस बाऊ जी, उसने मुझे तथा मेरे साथी को निकाल दिया था। हाँ बाऊ जी, मैं भिखारी नहीं हूँ, रोज एक न एक होटल के मालिक से मिलता हूँ, पर अनजान को तो कोई रखता भी नहीं है न।''

इतना कहते-कहते उसका चेहरा मुरझा गया था और वह मरियल कदमों से, अपनी हथेली पर रखे सिक्कों को उछालता हुआ, डिब्बे के अगले हिस्से की ओर बढ़ गया था।

आर.एन.-7, महेश नगर, अम्बाला छावनी-133001

दादाजी के सपने

ऋषि मोहन श्रीवास्तव

लेखक कहानी, प्रहसन, साक्षात्कार आदि विधाओं से जुड़े हैं। टेलीविजन में अभिनय एवं स्टूडियो-कम्पेरिंग।

दादा जी को कुछ शान्त और धीमी चाल से चलते हुए देख कर कृष्णा ने पूछा, ''दादा जी आज आप बहुत धीरे से चल रहे हैं। आपके हाथ-पैर भी कुछ ढंग से काम नहीं कर रहे शायद।''

''हाँ बेटा, तू सही कह रहा है। आज मैं तेरे साथ स्कूल नहीं आ रहा था। मेरी तबीयत भी कुछ ठीक नहीं थी, पर तुझे स्कूल तो पहुँचाना था।'' दादा जी ने कुछ लड़खड़ाते हुए जवाब दिया।

''दादा जी, ये मम्मी भी खूब हैं। रोजाना आपको ही मुझे स्कूल पहुँचाने भेज देती हैं। कभी पापा जी को या खुद को भी आना चाहिए। आज आपकी तबीयत ठीक नहीं थी, तो कोई और आ जाता मेरे साथ।'' कृष्णा ने बड़ी सरलता से अपनी बात कही।

''क्या करूँ बेटे? मैंने तो तुम्हारी मम्मी से कहा था, पर उन्होंने कह दिया—कृष्णा का स्कूल कोई बहुत दूर नहीं, कॉलोनी के भीतर ही तो है। अभी कुछ देर में पहुँचा आयेंगे। तब दिन-भर आराम कर लीजिएगा।'' दादा जीने दबी जुबान से मन की भड़ास निकाली।

अभी दादा जी और कृष्णा आपस में बात करते जा रहे थे। तभी कृष्णा का स्कूल आ गया। कृष्णा बोला, ''दादा जी, अब आप जाइए। पर थोड़ा स्कूल में बैठकर आराम कर लीजिए। थक गए होंगे।'' कृष्णा अपना बस्ता टाँगे स्कूल कैम्पस में दाखिल हो गया।

दादा बलवीर सिंह सेना से सेवानिवृत्त हवलदार थे। आज 80 वर्ष के लगभग उम्र हो रही थी। पत्नी अमनजीत का निधन हुए भी लगभग 10 वर्ष गुजर चुके थे। किसी तरह से एक तंग कमरे में जिंदगी गुजर रही थी।

किसी तरह बलवीर सिंह धीरे-धीरे कृष्णा के स्कूल से चलकर घर वापिस आ गए। बेटे मंजीत सिंह की पत्नी ज्योति ने झट से कहा, ''देखा पापा जी, थोड़ा स्कूल तक घूम आए तो अच्छा रहा। अब नाश्ता कर लीजिए। मैंने आपके लिए परांठे और चाय बना दी है।''

बलबीर सिंह को आज थकान के कारण हल्का-सा बुखार था। मन तो नहीं था कि नाश्ता किया जाए पर अब बहू ज्योति कह रही है तो नाश्ता करना ही पड़ेगा। नहीं तो पूरे दिन उसका लेक्चर सुनना पड़ेगा, ''मैंने तो पापा जी के लिए सुबह ही नाश्ता बना दिया था। पर खुद नाश्ता करते नहीं और कहते हैं, मैं उन्हें समय पर चाय-नाश्ता भी नहीं देती। बेटे मंजीत सिंह से भी ढेरों शिकायतें करने बैठ जाएंगे।''

दादा बलवीर सिंह वहीं मंजी पर बैठकर नाश्ता करने लगे। फिर अपने कमरे में आकर लेट गए।

चारपाई पर लेटे-लेटे वे अपने पुराने दिनों की याद में खो गए। कैसे उनकी पत्नी अमनजीत उनका ध्यान रखती थी। कितना जायकेदार-लजीज खाना बनाती थी। हर चीज समय पर आँखों के सामने हाजिर कर देती थी और आज उसके जाने के बाद बहुत कुछ खत्म-सा हो गया। जिस बेटे को मैं और अमन आँखों से एक मिनट ओझल नहीं होने देते थे। आज वही बेटा दस-दस दिनों तक बाप से बात तक नहीं कता। यह भी नहीं सोचता कि पापा जी से पूछ ले—पापा जी, आपको कोई चीज तो नहीं लानी? या आज आप क्या खाएंगे? अपनी पसंद की चीज बता दो।

मैंने तो इसे इतने लाड़-प्यार में रखा, हर ख्वाहिश मिनटों में पूरी कर दी। आज वही बेटा, मेहमानों जैसा गैरों की तरह व्यवहार करता है। आज मेरे सारे सपने टूट चुके हैं।

अभी दादा जी अपने विचारों में खोए हुए थे। तभी जोर से आवाज आई, ''पापा जी, बारह बज चुके हैं। कृष्णा को स्कूल लेने नहीं जाना? ये तो आफिस चले गए हैं। जल्दी से स्कूल चले जाइए, छुट्टी साढ़े बारह बजे हो जाएगी।'' मंजीत सिंह की पत्नी ज्योति ने पापा जी को हुक्म सुना दिया। अब उसके आदेश का पालन दादा जी को करना बहुत जरूरी था। बुखार और हाथ-पैरों में दर्द के बावजूद बेचारे दादा जी, कृष्णा को छुट्टी के बाद घर लाने के लिए चल दिए।

अभी घर से निकले ही थे कि पड़ोस में रहने वाले प्रोफेसर श्रीवास्तव ने बलवीर सिंह की हालत देखी। उन्हें लगा—आज बलवीर सिंह कुछ अलग से दिख रहे हैं। उन्होंने बलवीर सिंह से कहा, ''पापा जी, आप ठीक तो

हैं? आज लग रहा है, आपकी तबीयत कुछ गड़बड़ है।''

''कुछ नहीं श्रीवास्तव जी, अपने नाती को लेने स्कूल जा रहा था। अब कुछ काम-धाम तो है नहीं इसलिए बहू-बेटे ने एक काम सौंप दिया है वही करता रहता हूँ।'' बलवीर सिंह ने मन की पीड़ा कह डाली।

''चलिए, मैं आपको स्कूल तक पहुँचा देता हूँ। आप मेरे स्कूटर पर बैठ जाइए।'' प्रोफेसर श्रीवास्तव ने बलवीर सिंह से अनुरोध किया। किसी तरह बलवीर सिंह को प्रोफेसर श्रीवास्तव ने कृष्णा के स्कूल तक छोड़ दिया।

कृष्णा को लेकर दादा जी घर वापस आ गए थे। आते ही वे चककर खाकर गिर पड़े, सिर में भी चोट लग गई। बहू ज्योति अपनी सहेली सुखवंत के साथ गप्प-बाजी कर रही थी। कृष्णा से जब उसे मालूम हुआ तो वह दादा जी के पास आई और बड़बड़ाते हुए बोली, ''जब बनता हनी है तो इस उम्र में इधर-उधर क्यों घूमते रहते हैं? घर में बैठकर आराम क्यों नहीं करते?''

''पर मम्मी जी, आपने ही तो दादा जी को दो-दो बार मेरे स्कूल भेजा। आज उन्हें बुखार भी था। तभी तो उन्हें चक्कर आ गया।'' कृष्णा ने तेज आवाज में मम्मी की बात का जवाब दिया।

कृष्णा ने फोन करके अपने पापा मंजीत सिंह को बुला लिया। मंजीत ने जब पापा जी के सिर में खून निकलते देखा तो उसने पापा जी को तुरन्त कार में बिठाया और अस्पताल की तरफ चल दिया। उसकी पत्नी ज्योति कहती रही, ''अभी डिटोल से चोट साफ करके पट्टी बाँध देंगे। आप चिन्ता क्यों कर रहे हो?''

पर मंजीत समझ गया था। उसके पापा को यह हार्ट-अटैक था। जिसके कारण वे जमीन पर गिर पड़े थे। डॉक्टरों ने इलाज के बाद बताया कि उसके पिता को यह माइल्ड हार्ट-अटैक था। किसी तरह उनके प्राण बच सके।

कृष्णा दादा जी के सिरहाने बैठकर उन्हें एकटक निहार रहा था कि किसी तरह मेरे दादा जी ठीक होकर घर आ जाएँ। बहुत दिनों से उनसे कोई कहानी भी नहीं सुनी है। पर दादा जी एकदम खामोश-जैसे बिस्तर पर पड़े हुए थे। शायद वे सोच रहे थे कि अब अस्पताल से वापिस घर लौटेंगे भी या नहीं। अब किसके लिए लौटना है। जितना लिखा था मुकद्दर में उतना हम जी लिए। बेटे-बहू पर भी तो अब बोझ हूँ। एक हस्ती ही क्या है सिर्फ नौकर जैसी बस! हाँ मेरा पोता ही मेरा है। कहा भी गया है—मूल से ब्याज ज्यादा प्रिय होता है। पर मैंने जो सपने सँजोए थे बेटे के लिए, वे तो सब बिखर गए हैं। अब क्या बचा है!

एस-1, नित्यानंद विला, कमलेश्वर कॉलोनी, जीवा. जीगंज, लश्कर, ग्वालियर-474001 (म.प्र.)

गर्लफ्रेंड

डॉ. पूजा खिल्लन

डॉ. पूजा खिल्लन 'गगनांचल' पत्रिका की सहायक संपादक एवं मूलतः कवयित्री हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय में पूर्व तदर्थ प्राध्यापिका, 'समांतर सिनेमा और नसीरूद्दीन शाह' नामक एक पुस्तक सद्यः प्रकाशित। प्रथम काव्य-संग्रह 'हाशिए की आग' पर यशोधरा सम्मान। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कविता, कहानी, ग़ज़ल, समीक्षा का निरंतर प्रकाशन। दूसरा काव्य-संग्रह 'जिन्दगी किनारों पर नहीं होती' शीघ्र प्रकाश्य।

मोनाली के लिए उसकी शादी वाकई गंभीर मुद्दा था। हॉस्टल में रहने के कारण और अपने पैरों पर खड़ी आत्मनिर्भर और बोल्ड लड़की होने के कारण घरवालों का दबाव उसे झुका नहीं पा रहा था, नहीं तो जब भी घर पर बात करने की सोचती थी, तो अपने पर होने वाले शादी से जुड़े सवालों की बौछार को लेकर घबरा जाती थी। इसीलिए अब तो घर पर फोन करना उसके लिए एक ऐसा अजीब 'हैसिटेटिंग एक्पीरियंस' बनकर रह गया था। जिससे कभी उसका दूर तलक का वास्ता नहीं था। उसने हमेशा अपने सपनों में 'बीलीव' किया था। और खुद पर भी उसे स्कूल के दिनों से ही भरोसा था। पढ़ाई के साथ-साथ स्कूल की सभी एक्स्ट्रा करिकुलर एक्टीविटीज में भी अव्वल रहने की जद्दोजहद ने खुद में उसके भरोसे का और भी निखार दिया था और लड़कों के प्रति उसकी राय अपने साथ स्कूल में पढ़ने वाली हमउम्र लड़कियों से कई गुना परिपक्व एवं संवेदनशील थी। कई बार आवारा छोकरों को अपने साथ घूमने वाली लड़कियों के पीठ पीछे उनकी हँसी उड़ाते देखकर मोनाली अपने जीवनसाथी की परिकल्पना पर सहम जाती। अभी कल ही तो राकेश और उसके दोस्तों को उसने लीना को शर्त लगाकर पटाने की बात करते सुना था और वह अपसेट हो गई थी। वह लड़कियों की कमअक्ली और आसानी से जाल में फँस जाने की बात कह रहे थे। राकेश जीत की मुद्रा में पूरे गैंग की अगुवाई कर रहा था। 'यू नो वूमेन आर सो इजिली कन्विंस्ड'। इन्हें किसी भी बात पर इतनी आसानी से भरोसा हो जाता है। मैंने लीना से अपने खास दिलफेंक अन्दाज में कहा कि लीना अब मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकता, अगर तुमने शादी के लिए हाँ नहीं की तो मैं अपने कमरे के सीलिंग फैन से लटकरकर अपनी जान दे दूँगा। इस पर लीना बेहद इमोशनल हो गई ''एण्ड यू नो शी स्टार्टेड शेडिंग टीअर्स। एनी वे लेट अस पार्टी टू सेलिब्रेट दिस विनिंग मूमेंट।''

मोनाली यह सब अपने कानों से सुनकर आ रही थी। हॉस्टल पहुँचने पर पहले तो उसने गर्मी को दूर करने के लिए शावर लिया और फिर तरोताजा होकर एक मैगजीन के पन्ने तेजी से पलटने लगी। तभी उसकी निगाह औरतों के जीवन से जुड़ी समस्याओं के लिए किसी लेख पर पड़ी और वह ध्यानपूर्वक उसने पढ़ने लगी। उसमें लिखा था औरतों की आधी परेशानियाँ दूसरों के उन्हें देखने के नजरिए को लेकर हैं। वह कुछ भी कर लें कुछ भी बन जाएँ सोसाइटी उन्हें किसी की पत्नी, बहन या माँ के रूप में ही तरजीह देना चाहती है वगैरह, वगैरह। यह लेख मोनाली के मन में उठ रहे भावों से इस कद्र मेल खा रहा था कि वह उसमें जरूरत से ज्यादा ही डूब गई थी तभी तो उसे पता ही नहीं चला कि कब उसके बेड के साइड टेबल पर रखा स्मार्ट फोन घरघरा रहा था। घर्र घर्र घर्र। मोनाली ने मोबाइल स्क्रीन पर उगे नंबर और नाम को देखा और खुशी से उछल पड़ी। वह उसकी सबसे प्यारी सहेली वर्षा दास का फोन था। मोनाली और वर्षा स्कूल में भी साथ थीं और एक-दूसरे से अपनी हर बात शेयर करती थीं। वर्षा भी पढ़ाई, लिखाई में अच्छी थी और स्कूल के दिनों से ही इंडियन नेवी ज्वाइन करना चाहती थी। हाय वर्षा, कैसी हो तुम, हॉउ इज एवरीथिंग गोइंग। जैसे ही मोनाली ने रिसीवर हाथ में लिया कमरे में उसकी आवाज गूँज सी गई। वर्षा ने उधर से जवाब दिया 'फिट एण्ड फाइन' तुम सुनाओ। मोनाली वर्षा के नेवी एक्जाम क्लीयर करने के बारे में जानती थी और उसके भविष्य को लेकर काफी निश्चिंत थी।

मगर यह क्या वर्षा तो कुछ और ही बातें किए जा रही थी। वह पहले वाली वर्षा न तो साउन्ड कर रही थी और न ही उसमें अपने सपनों को लेकर पहले वाली उस्तुकता थी। दरअसल वह मोनाली को अपने पहले प्यार के बारे में बता रही थी। रंजीत से उसकी मुलाकात ट्रेनिंग के दौरान ही हुई थी। और वह उसके प्यार में पूरी तरह से खो गई थी। क्या, क्या नाम बताया तुमने रंजीत, रंजीत वर्मा ओह। मगर मैं तो तुमसे कुछ और ही एक्सपेक्ट कर रही थी। शायद ट्रेनिंग के दौरान तुम्हारे एडवेंचरस और एंजॉय किए गए पल। खैर अब तो यह बताओ

कि यह सब कहाँ तक पहुँचा है और आगे की क्या प्लैनिंग है?

वर्षा ने बताया कि उसके घरवालों के बार-बार शादी के लिए पूछने पर उसने रंजीत के बारे में उन्हें बताया है और उन्होंने इस पर एतराज न कर रंजीत और उसके घरवालों से मिलने का मन बना लिया है।

वह तो ठीक है वर्षा मगर रंजीत कैसा लड़का है मुझे उसके बारे में जानना है।

वह मैं तुम्हें आकर बताऊँगी और कल में तुमसे मिलने दिल्ली तुम्हारे हॉस्टल आ रही हूँ।

ओके, गुडनाइट।

मोनाली रात भर वर्षा के बारे में सोचती रही और सो नहीं पाई। सुबह उठी तो उसने हॉस्टल के अपने अस्त-व्यस्त कमरे को थोड़ा ठीक-ठाक किया। दोपहर में मैस में जाकर खाने के बजाए ऊपर ही खाना लाकर देने का ऑर्डर पहले ही दे दिया। करीब डेढ़ बजे वर्षा आ पहुँची। वह उसे गेट से रिसीव करके ऊपर अपने कमरे में ले आई। और दोनों सहेलियाँ बातचीत में व्यस्त हो गई। दोनों का लन्च हॉस्टल स्टाफ द्वारा कमरे में पहुँचा दिया गया था।

वर्षा बोले जा रही थी... रंजीत इज सो हैन्डसम और सबसे अचछी बात तो यह है कि वह मुझे बेहद चाहता है। ही लव्स मी सो मच। कि वह मेरे लिए कुछ भी कर सकता है।

अच्छा, मोनाली ने प्रतिक्रिया देते हुए कहा, तो क्या वह तुम्हारे लिए खुद को बदल सकता है।

मतलब? वर्षा ने पलकें झपकाते हुए पूछा।

मतलब यह कि तुम उसके लिए इतनी चेंज कैसे हो गई। यू हैड सम प्राइऑरटीज इन लाइफ। तुम्हें नेवी में ट्रेनिंग पूरी करनी थी। और तुम रंजीत के लिए सबकुछ भूल गई।

मैं कुछ नहीं भूली, बस शादी तक मुझे एडजस्ट करना है जो हर लड़की को करना पड़ता है। तब तक मैं रणजीत की गर्लफ्रेंड होना एन्जॉय करना चाहती हूँ बस।

तुम्हारी नजर में उसकी गर्लफ्रेंड होने के मायने क्या है?

ओह! इसमें कौन सी नई बात है। उसके साथ घूमना-फिरना, उसके पैसों से अपने लिए शॉपिंग करना जैसे अमूमन नए जोड़े करते हैं।

और मुझे यकीन है वो भी तुम्हें इसी नजरिए से देखता है। यानि तुम्हें घुमाना-फिराना और बदले में तुम्हें जैसा वो कहे वैसे जीने के लिए कम्पेल करना।

ही हैस नोट कल्पेल्ड मी। वर्षा ने झुँझलाकर कहा।

मोनाली ने कहा—तो तुमने कैसे उसकी हर बात के लिए स्वीकृति दे दी?

अरे मोनाली तुम समझती नहीं हो हर रिश्ते में एडजेस्टमेंट होते ही हैं और रिश्ते बिना एडजेस्टमेंट के चल ही नहीं सकते।

लेकिन तुम्हारे खुद के देखे सपने, उनका भी तो कुछ है।

यार हर लड़की का पहला सपना अच्छे घर में ब्याह कर जाना होता है।

दैट मीन्स तुम अभी रणजीत की गर्लफ्रेंड होने की कीमत चुका रही हो, कल उसकी पत्नी होने की कीमत चुकाओगी और बाद में उसके बच्चों की माँ बनने की। देख, जहाँ तक मैंने एनालाइज किया है तुम दोनों एक-दूसरे के थ्रू अपने सपनों को साकार करना चाहते हो जबकि होना यह चाहिए कि तुम एक-दूसरे के सपनों को साकार करने में एक-दूसरे की मदद करो। तभी तुम पहले अच्छे दोस्त और बाद में अच्छे पति-पत्नी भी बन पाओगे। क्यों सही कहा न मैंने।

और वर्षा का तो जैसे ब्रेनवॉश ही कर दिया मोनाली ने।

उसने कहा, थैंक्यू मोनाली फॉर बीइंग देअर। तुम नहीं होती तो मैं पूरी तरह रास्ते से भटक गई थी। उसने कुछ-कुछ हकलाते हुए स्वर में कहा।

खैर ट्रेनिंग पर लौटने के बाद वर्षा अब रणजीत को अपने सपनों को पूरा करने में सहयोग करने वाले जीवन साथी के रूप में तब्दील करने में लगी थी। मगर बात हमेशा बनते-बनते रह जाती।

एक दिन रणजीत ने उसे लैपटॉप पर किसी से बात करते हुए पकड़ लिया और वर्षा ने कहा मैं देख रही हूँ रणजीत, आई हैव क्लोसली आब्सर्ड कि तुम मेरी हर गतिविधि को शक की निगाह से देखते हो, जब से मैंने तुम्हारी गर्लफ्रेंड बनकर जीने के बजाए अपने जीवन की चुनौतियों से जूझने का फैसला लिया है।

मगर मुझे लगता है वर्षा तुम्हारी लाइफ में कोई और भी है। आई थिंक देअर इज समथिंग यू आर हाइडिंग फ्रॉम मी।

ठीक है। अगर तुम्हें ऐसा ही लगता है तो यही सही।

हाँ ठीक है, मगर जाने से पहले मुझे बता दो तुम किससे बात कर रही हो?

किसी ने नहीं बस उससे जिसकी मैं दोस्त हूँ। टू हूम आए एम ए फ्रेंड और बेटर से गर्लफ्रेंड यानि मैं लड़की हूँ और उसकी दोस्त भी जो मुझे और मेरे सपनों को समझता है।

तो हुई न उसकी गर्लफ्रेंड। बाय, और रणजीत पैर पटकते हुए कमरे से बाहर हो गया।

36, डूप्लेक्स, द्वितीय तल,
नजदीक एम.सी.डी. स्कूल, गुड़मण्डी,
दिल्ली-110007

शोधार्थी

वनिता उप्पल

वनिता उप्पल दिल्ली विश्वविद्यालय में पीएच-डी. शोधार्थी एवं उदीयमान लेखिका। गगनांचल में पूर्व में भी छपी हैं।

आज वाणी बहुत खुश थी। आज उसका पीएच.डी. में रजिस्ट्रेशन हुआ था। उसकी खुशी का ठिकाना न था, उसने अपने जीवन में एक ही ख्वाब देखा था, वो ख्वाब था डॉक्ट्रेट करना। वह चाहती थी एक दिन लोग उसे डॉ. वाणी कहकर पुकारें। आज उसे अपने ख्वाब की ताबीर होती दिखाई दे रही थी। वाणी ने पीएच.डी. में एडमिशन की खुशी में आस-पड़ोस में मिठाई बाँटी। उसके पड़ोसियों ने ऊपर से तो उसे खूब बधाई दी पर भीतर से उसे तरक्की करते देख उन्हें खासी जलन हो रही थी। पर ये सब बातें वाणी की समझ से दूर थीं। वह खुद जैसे मन की साफ थी, दुनिया को भी वैसा ही समझती थी।

वाणी में पढ़ाई को लेकर बचपन से ही काफी लगन थी। वह अपनी पीएच.डी. की पढ़ाई जल्द-से-जल्द शुरू कर देना चाहती थी पर इसमें एक बाधा थी। दरअसल उसकी सुपरवाईजर डॉ. करुणा न जाने क्यों उससे खार खाती थीं और उसे परेशान करने का कोई मौका नहीं छोड़ती थीं। वाणी जब भी उनसे मिलने का वक्त माँगती वो उसे टाल देतीं।

''क्या वाणी तुम इतनी जल्दी क्यों मचा रही हो। अभी तो तुम्हारा रजिस्ट्रेशन हुआ है। अभी तो तुम्हारे पास कई साल बाकी हैं। वैसे भी अभी मेरे पास वक्त नहीं है, अगले महीने फोन करना।'' यह कहकर डॉ. करुणा ने फोन काट दिया।

वाणी को अपनी सुपरवाइजर के हतोत्साहित करने वाले शब्दों से काफी धक्का पहुँचा, फिर भी उसने खुद को सँभाल लिया। उसने फैसला किया कि डॉ. करुणा उससे मिलें या न मिलें वो अपनी थीसिस का काम शुरू कर देगी। उसने अपने शोध विषय की रूपरेखा में कुछ जरूरी बदलाव किए और प्रथम अध्याय की अध्ययन सामग्री जुटानी शुरू कर दी। उसका पूरा दिन लाइब्रेरियों के चक्कर लगाने और अपने विषय से संबंधित किताबें खरीदने में चला जाता था। वाणी अपनी थीसिस पर काम करने के साथ-साथ अपनी सुपरवाइजर से मिलने की कोशिश भी करती रही लेकिन उसकी मैडम के पास अभी भी उससे मिलने का समय नहीं था।

कुछ ही महीनों में वाणी ने अपनी थीसिस का पहला अध्याय लिखकर अपनी सुपरवाइजर को सौंप दिया। पर उसकी हैरानी का ठिकाना नहीं था जब उसे पता चला कि महीना भर बीत जाने के बाद भी डॉ. करुणा ने उसके दिए चैप्टर को हाथ तक नहीं लगाया था।

''देखो वाणी, तुम अपना अगला चैप्टर लिखना शुरू कर दो। मुझे जब वक्त मिलेगा, मैं तुम्हारे इस पहले चैप्टर को पढ़ लूँगी।'' डॉ. करुणा ने वाणी को फोन पर कहा।

वाणी करती भी तो क्या। उसने हार मानकर अगला अध्याय लिखना शुरू कर दिया। वक्त गुजरता गया मगर ये सिलसिला नहीं थमा। वह अध्याय पर अध्याय लिखकर डॉ. करुणा को देती रही पर उन्होंने एक भी चैप्टर को हाथ नहीं लगाया। विद्यार्थी और शिक्षक का ये कैसा रिश्ता था जहाँ शिक्षक को अपने विद्यार्थी से लगाव या जुड़ाव तो दूर उसके शोध कार्य को समय पर समाप्त करवाने की चिंता तक नहीं थी। दरअसल डॉ. करुणा एक आत्मकेन्द्रित महिला थीं और एक सीनियर टीचर होने के नाते हर बात को वह अपने रुतबे का सवाल बना लेती थीं। वैसे भी उनके रिटायर होने में दो साल ही बचे थे और न जाने क्यों उन्होंने वाणी को पीएच.डी. में लटकाए रखने का मन बना लिया था।

एक-एक कर जब वाणी ने उन्हें अपनी थीसिस के सारे अध्याय सौंप दिए तो उन्होंने यकायक उसके शोध ग्रन्थ का निरीक्षण करने की बजाए उसकी धज्जियाँ उड़ानी शुरू कर दी। जब वाणी उनसे मिल गई तो उन्होंने उसकी थीसिस के पाँचों अध्यायों को लाल स्याही में डूबोकर उसे लौटा दिया। ''देखो, वाणी अपने अध्यायों की भाषा बदलो, इसे थोड़ा सहज बनाओ। बाकी विषय सामग्री पर बाद में बात करेंगे।''

''जी मैम''। वाणी ने सिर झुकाकर हामी भरी और घर लौट आई। वाणी ने कई महीनों की जी-तोड़ मेहनत के बाद अपनी पूरी थीसिस की भाषा को सहज बनाया। पूरे शोध ग्रन्थ को दोबारा लिखना आसान बात नहीं थी, फिर भी वाणी अपनी मैडम के सुझाव का सम्मान

करती थी इसीलिए उसने दिन-रात मेहनत कर अपनी थीसिस का पुनर्गठन किया। अपनी संशोधित थीसिस लेकर वह फिर से डॉ. करुणा से मिली।

''मैम, जैसा आपने कहा था, मैंने थीसिस में जितने बदलाव जरूरी थे, सब कर लिए हैं। अब यह मेरी फाइनल थीसिस है। अगर आप इजाजत दे दें तो मैं थीसिस जमा करवाना चाहती हूँ।''

''ठीक है, इसे छोड़ जाओ। मैं एक बार दोबारा चेक कर लेती हूँ।'' डॉ. करुणा ने वाणी की थीसिस अपने पास रख ली।

वाणी को उम्मीद थी कि अब जल्द ही उसकी थीसिस जमा हो जाएगी। पर उसे यह मालूम न था कि उसकी सुपरवाइजर न जाने क्यों उसकी थीसिस को जमा करवाने के मूड में बिल्कुल नहीं थी।

''वाणी, मुझे अभी भी तुम्हारी थीसिस ठीक नहीं लग रही। मैं ऐसी थीसिस को जमा करने नहीं दे सकती। इसे वापस ले जाओ और मैंने जो सुझाव एक पेपर पर लिखे हैं, उन पर काम करो। फिर देखेंगे आगे क्या करना है?'' यह कहकर डॉ. करुणा ने वाणी की थीसिस उसे फिर लौटा दी।

वाणी जब भी डॉ. करुणा से मिलती उसे महसूस होता जैसे वो औरत उससे किसी पिछले जन्म का बदला ले रही हो, क्योंकि इस जन्म में तो वह इस औरत से पहली बार ही मिली थी और वो औरत ही इस पोजीशन में थी कि वाणी का सबकुछ बिगाड़ सकती थी और वास्तव में वो औरत ऐसा ही कुछ कर भी रही थी।

वाणी एक बार फिर से डॉ. करुणा के बताए सुझावों पर काम कर उनसे मिलने गई। ''मैम, आपने जैसा कहा था, मैंने वैसा ही किया। मैम अब आप कहें तो मैं थीसिस जमा करवा दूँ।'' वाणी ने बड़ी विनम्रता से कहा।

''थोड़ा सब्र करना सीखो वाणी। मैं देख तो लूँ तुमने इस बार कैसा काम किया है।... अरे ये क्या, जरा ये चौथा अध्याय तो देखो... इस पहली लाइन को बीसवीं लाइन की जगह लेकर जाओ और बीसवीं लाइन को पहले लाइन की जगह लेकर आओ... इस पन्द्रहवीं लाइन को पाँचवीं लाइन की जगह लेकर जाओ और पाँचवीं लाइन को तीसवीं लाइन की जगह लेकर जाओ और तीसवीं लाइन को पच्चीसवीं लाइन की जगह लेकर आओ।'' इस बार डॉ. करुणा ने थीसिस में ऐसे-ऐसे संशोधन बताए कि वाणी को एक बार तो ऐसा लगा जैसे ये औरत किसी गम्भीर मानसिक रोग से पीड़ित है, क्योंकि इस तरह के संशोधन कोई सामान्य मस्तिष्क वाला व्यक्ति तो सोच भी नहीं सकता। पर अपनी मैडम की सनक को झेलने के सिवा उसके पास कोई चारा भी तो नहीं था।

घर आने के बाद वाणी ने अपनी सहेली कनिका को फोन किया और मैडम के व्यवहार के बारे में बताया। कनिका ने उसे डिपार्टमेन्ट में मैडम के खिलाफ अर्जी दाखिल करने का सुझाव दिया। वाणी ऐसा नहीं करना चाहती थी। उसकी मैडम बहुत सीनियर थी, वो उनका अपमान नहीं करना चाहती थी। वैसे भी उनकी रिटायरमेंट में अब ज्यादा वक्त नहीं बचा था। वाणी ने उनके रिटायर होने तक अपनी थीसिस का काम रोक लेने का फैसला किया।

कुछ महीनों के बाद डॉ. करुणा रिटायर हो गईं और डिपार्टमेंट की ओर से डॉ. रागिनी वाणी की नई सुपरवाइजर निश्चित की गई। वाणी अपनी नई मैडम से मिली और उसने अपना काम पूरा करने के लिए उनसे थोड़ा-सा वक्त माँगा। डॉ. रागिनी एक नेक दिल औरत थीं, जब उन्हें पता चला कि डॉ. करुणा ने वाणी का काफी वक्त बर्बाद कर दिया है तो उन्हें बेहद दुख हुआ। उन्होंने वाणी को जल्द से जल्द काम पूरा कर थीसिस जमा करने की हिदायत दी।

''वाणी बेटे, पहले ही तुम्हारा काफी वक्त बर्बाद हो चुका है। मैं तुम्हारे कैरियर से कोई खिलवाड़ नहीं करना चाहती। तुम जितनी जल्दी हो सके अपना काम पूरा करके मुझे दिखाओ।'' डॉ. रागिनी ने वाणी के कैरियर के प्रति चिंता जताते हुए कहा।

डॉ. रागिनी के ममता भरे शब्दों ने वाणी के दुखते मन पर मरहम का काम किया। उसने तो अपनी थीसिस जमा होने की उम्मीद ही खो दी थी पर डॉ. रागिनी उसके उदास जीवन में एक फरिश्ते की तरह आई। नए जोश से भरी वाणी ने कुछ ही हफ्तों में अपना काम पूरा कर लिया। डॉ. रागिनी को वाणी की थीसिस में कोई कमी नजर नहीं आई। हर लिहाज से ये एक बेहतरीन थीसिस थी। डॉ. रागिनी ने बिना समय गवाए वाणी की थीसिस पास कर दी और जल्द ही जमा करने की औपचारिकताओं को पूरा कर वाणी ने अपनी थीसिस जमा कर दी।

आज वाणी को डॉक्ट्रेट की डिग्री मिले कई साल बीत चुके हैं और वह एक लेक्चरर भी बन चुकी हैं। लेकिन जब भी वो अपने शोध के दिनों को याद करती है तो उसकी आँखें यह सोचकर नम हो जाती हैं कि आखिर डॉ. करुणा ने उसकी थीसिस जमा क्यों नहीं होने दी। अगर उसकी थीसिस में सच में कुछ कमी होती तो डॉ. रागिनी भी उसे रोक लेतीं, पर उन्होंने तो उसे एक बेहतरीन थीसिस लिखने पर बधाई भी दी थी। फिर डॉ. करुणा क्यों उसकी थीसिस को लटकाए रहीं। यह एक ऐसा सवाल था जिसका जवाब वाणी को आज भी मथता है और काँटे की तरह उसके मन को हर वक्त सालता है।

पॉकेट-ई-20, हाउस नं. 3, सेक्टर-3,
नजदीक रेमाल पब्लिक स्कूल,
रोहिणी, दिल्ली -110085

ग़ज़ल/कविता

हितेश कुमार शर्मा

जाने-माने लेखक एवं कवि। वर्षों से लेखन में सक्रिय हैं। इनकी रचनाएं अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। पेशे से एडवोकेट एवं ब्राह्मण अंतरराष्ट्रीय समाचार पत्र के समर्थ सम्पादक है।

वीरानियाँ भी हैं

सकुने जिन्दगी भी है, मगर बेचैनियाँ भी हैं।
हजारों मुश्किलों के बीच में, आसानियाँ भी है।

अरी ओ जिन्दगी हमने तुझे, क्या कुछ नहीं सौंपा।
मगर बरताव से तेरे हमें हैरानियाँ भी हैं।

जो कल होना था वह सब आज कैसे हो गया यानि।
कि जिमेदार इसकी मेरी खुद नादानियाँ भी हैं।

गजब की भीड़ है महफिल में, अपने यार की साहेब।
छुपी लेकिन दिलों में सभी के, वीरानियाँ भी है।

अगर इतिहास देखोगे तो हमको भी समझ लोगे।
हमारे नाम पर लिक्खी, कई कुर्बानियाँ भी हैं।

जो मन्दिर का पुजारी था, हवस में हो गया अन्धा।
गजब इन्सानियत में देखिए, हैवानियाँ भी हैं।

हमीं में से कई जयचन्द हैं, या मीर जाफर हैं।
कि जिनकी दुश्मनों के साथ यारानियाँ भी हैं।

चल त्याग कलम को तू हितेश

शिवजी का ले त्रिशूल और,
हाथों में ले बघनखा वीर।
तू वीर शिवा का वंशज है,
शत्रु का दे तू गला चीर।

क्या बगदादी आईएसआई,
तेरे समक्ष सब बौने हैं।
तू कुरुक्षेत्र का सिंह,
सामने तेरे सब मृगछौने हैं।

क्या सत्य कभी हारा है,
जो अब हारेगा, मत हो अधीर–

गद्दार देश में जो भी हो,
अनदेखा मत कर पकड़ उसे।
यदि कुत्ता पागल हो जाए,
तो जंजीरों में जकड़ उसे।
अब जागो बनकर महाकाल,
भारत माता पर पड़ी भीर।

घुसपैठ कर रहे हैं जो भी,
भेजो उनको शमशान मित्र।
उसको भेजो न्यायालय को,
जो काटे-छाँटे देश चित्र।
सीमा पर कड़ी सुरक्षा की,
खींचो अभेद्य सुदृढ़ लकीर।

इससे पहले तुझ पर कोई,
हमलावर हो तू हमला कर।
शत्रु हैं चारों ओर मित्र,
ले पूर्ण सुरक्षा निकला कर।
हो सकता है आतंकी हो,
जो तुझको दिखता है फकीर।

अब दूध दही के धोखे में,
फिर खिला न दे कोई चूना।
गायों को काट रहा है जो,
उससे अनजान रहे तू ना।
जो भी संदिग्ध लगे तुझको,
मत होना उसके बगलगीर।

अब वही बचेगा धरती पर,
जो सर्वश्रेष्ठ है शक्तिमान।
चल त्याग कलम को तू हितेश,
ले अपने कर में धनुष-बाण।
आतंकविहीन धरा कर दें,
युग पुरुष उठा संधान तीर।

**गणपति भवन, सिविल लाइन,
बिजनौर-246701 (उ.प्र.)**

कविता

मंजुश्री

हमारे समय की महत्त्वपूर्ण कवयित्री एवं इनकी रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित।

फिर से इक नई कहानी होगी

बड़े-बड़े तूफानों ने कब कहा
कि जिन्दगी ठहर गई।
एक रात आई और बीत गई।
फिर से शिवालयों की मीनारों
की सफाई होगी।
मानवता देगी श्रमदान
ईश्वर की गवाही होगी।
मंजर है वीरान तो क्या हुआ।

फिर से सजेंगी गलियाँ
लोगों की नीली आँखों में
फिर से कोई कहानी होगी।

चमकेंगे फिर बाजार
दरो दीवार, नजारे बदलेंगे।
फिर से लोगों की जुबाँ पर
कोई सुन्दर गीत, ढोल,
मंजीरा बाजे इकतारा
फिर से कोई गीतों की बोल पर
तालियों की गड़गड़ाहट और
मौजों की रवानी होगी।

**सरस्वती विहार कॉलोनी, लखपेड़ाबाग,
निकट रामसेवक यादव इण्टर कॉलेज,
बाराबंकी (उ.प्र.)**

कविताएँ

रश्मि रमानी

श्रीमती रश्मि रमानी (एम.ए. हिन्दी साहित्य) हिन्दी एवं सिन्धी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार रखने वाली, सुप्रसिद्ध कवयित्री एवं अनुवादक हैं। इनकी कविता, अनुवाद एवं आलोचना की 16 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। मध्य प्रदेश की सिन्धी साहित्य अकादेमी, केन्द्रीय साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली की पूर्व सदस्य, वर्तमान में भारतीय ज्ञानपीठ की भाषा सलाहकार समिति एवं राष्ट्रीय सिन्धी भाषा विकास परिषद्, मानव संसाधन विकास मंत्रालय की मनोनीत सदस्य रश्मि रमानी को अनेक बार राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक पुरस्कारों, सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है। सिन्धु घाटी सभ्यता एवं मोअनजोदड़ो पर शोध के लिए आपको संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार की सीनियर फैलोशिप प्रदान की गई है।

बँटवारा

नक्शानवीस ने उठाई कलम
ज़मीन के नक्शे के बीच खींची रेखा
और कहा
'ये हिन्दुस्तान, ये पाकिस्तान'
मजदूर ले आए काँटेदार तार
सरहद पर खड़ी की बागड़
ये तेरा आँगन, ये मेरा घर
घड़ी भर में ही साथ-साथ रहने वाले
हो एक सीमा पार।
ऊँघ रहे सैनिकों ने सँभाल ली बन्दूकें
जब-जब उनके आका हो जाते थे
ऊबे और अनमने
जैसे ही लगता था उन्हें
कि भूल रहे हैं लोक इतिहास
वे चीखते थे—'फायर'
और बदहवास सैनिक चलाते थे
गोलियाँ बेशुमार
बिना यह देखे कि—
कहाँ है निशाना और कौन
बेगुनाह मारा गया है
अफरा-तफरी के इस आलम में?
कुछ दिनों के बाद
जब थम जाता था सब कुछ
सरहद के सिपाही आपस में
खेला करते थे पत्ते
कुछ डूब जाते थे अपनी प्रेम कहानियों में
इस तमाम आपाधापी के बावजूद
परिन्दे सारे आसमान में उड़ते थे
बिना किसी औपचारिकता के
सरहद के पार हवा चलती थी बेरोकटोक
और नदियों का पानी तो था ही लापरवाह
खुद ब खुद ढूँढ लेता था वह अपनी राह
दूतावासों में चल रही रस्साकशी से
कोई फर्क नहीं पड़ता था तमाम लोगों को
बस
कुछ लोग ढूँढते थे उस नक्शानवीस को
जो खींच दे आसमान पर भी लकीर
और बाँट दे आसमान को भी
दो-तीन-पाँच टुकड़ों में
और कर दे उसका भी तिया-पाँचा!
उन्हें चाहिए थे वे जादूगर
जो मोड़ सकें पानी का बहाव
अपनी नाकामयाबी पर
कोसते हों शायद भगवान को भी
पर कुछ लोग अदा करते थे शुक्रिया
उस ऊपरवाले का
जिसने सोच-समझकर संसार बनाया
और गिनकर
पागल!''

धन्यवाद

धन्यवाद
ईश्वर को
इसलिये कि उसने
इस दुनिया में मुझे भी पैदा किया।
ये दुनिया
जिसकी मिट्टी से मैं प्यार करती हूँ
इसकी फसलों, पानी और पहाड़ों की
मैं आभारी हूँ
कितना कुछ है यहाँ जीने के लिये
बहुत कुछ है
तृप्ति की तलछट तक पीने के लिये।

जिन्हें मैं जानती हूँ
वे प्यारे दोस्त
और
जो मुझे जानते हैं
उन प्यारे खुशमिजाज
अजनबियों के लिये
बार-बार कहना चाहती हूँ
धन्यवाद।

इस दुनिया में
कम नहीं मेरे दुश्मन भी
बहुतेरे हैं मुझे सताने वाले
फिर भी
इसी दुनिया में
भय, असमंजस और आशंकाओं में डूबते-उतराते
इन्हीं के बीच
मैंने प्रेम किया
और मुक्ति का आस्वाद लिया
मन में अपार प्रसन्नता के साथ
ममता और सन्तोष का सुख महसूसा
क्या इतना कुछ काफी नहीं है!
ईश्वर को धन्यवाद कहने के लिये।

**30, पलसीकर कॉलोनी, मानस मेंशन,
फ्लैट नं. 201, सेकेण्ड फ्लोर, जूनी,
इन्दौर थाने के सामने, इन्दौर-452004 (म.प्र.)**

कविता

डॉ. किश्वर सुल्ताना

किश्वर सुल्ताना जी सम्प्रति हिन्दी विभाग रामपुर में सहायक प्रोफेसर एवं लेखन में सक्रिय।

हिन्दी
है इतनी मीठी
कहते अमीर खुसरू
इसे शकर, मिसरी
'गुफ्त हिन्द' में
है 'अलफाज खुशगवार'
तभी तो है श्रेष्ठ
तुर्की औ फारसी से
उत्तर से दक्खिन
पूरब से पच्छिम
गुजर, माबरी, गौरी
सिंधी, लाहौरी, कश्मीरी,
तिलगंगी, बंगाली और अवधी
ब्रज बोली—सब हैं हिंदवी
अनेकता में एकता समेटे
महकता हिन्द राष्ट्र।

हर कोने की अपनी बोली
है उसकी सांस्कृतिक पहचान
जड़ें इतनी गहरी समायी
सोंधी मिट्टी में।

खुशबू ऐसी बांध ले
जो दिलों को।
विद्यापति की पुलक
इसी में, अद्दहमाण की
मार्तण्ड मंजूषा।
जायसी अमर हस्ताक्षर
रच 'पद्मावत'
हो गये प्रिय
छंद दोहा चौपाई।
'रामायण' आई—
लोक-मन
गुंजरित चहुं ओर 'मानस-गान'
झंकृत हृत्तंत्री
मन भाव विभोर
रहीम, रसखान, सूर
पद मन-भावन कृष्ण लीला
हो गयी धन्य ब्रजभूमि।
मुकुन्द, माधव, गोविन्द बोल
केशव माधव हरि-हरि बोल।
कवि जान कहते
कहूँगा कलाम 'रियाज़े जान'
इसी 'मीठी बोली' में।
भाल हिमालय की बिन्दी
है भाषा कहें जिसे हिन्दी।

द्वारा डॉ. जेड़ ए. सिद्दीकी
चौक मोहम्मद सईद खाँ, लंगरखाना,
रामपुर-244901 (उ.प्र.)

ग़ज़ल

ओम प्रकाश अडिग

ओम प्रकाश अडिग पूर्णकालिक तौर पर लेखन से जुड़े हैं। मूलतः गीत लिखते हैं।पहला गीत संग्रह 'कुंवारे गीत' सन् 1976 में प्रकाशित। 'युद्ध के बाद' काव्य-संग्रह। कई पुरस्कार प्राप्त।

चले गए हम

कछु कहा क्यूँ नहीं, जब छले हम गए।
जिन्दगी भर अगन में जले हम गए।।
चोट पर चोट दिन रात सहते रहे।
आह निकली नहीं जब ढले हम गए।।
लोग कहते रहे देखकर मुँह हले।
पीठ पर तो स्वयं ही दले हम गए।।
कोशिशें तो बहुत की चली भी हवाएँ।
मगर जो चले तो चले हम गए।।
लाख सर शूल पटकें, बहुत दर्द आए।
उठाए कदम तो चले हम गए।।

याद रख

जिन्दगी फिर जिन्दगी है, याद रख।
बस यही सबसे सगी है, याद रख।।

कौन सुनता है किसी की, याद रख।
यह अकेली मुँह लगी है, याद रख।।

यातनाओं के शिविर का है निमंत्रण।
दर्द के घर रतजगी है, याद रख।।

कुछ नहीं हमको मिला, तो जान लो।
पीर अपनी बहुमुखी है, याद रख।।

क्या अजूबे ही घटेंगे प्यार में।
आग पानी में लगी है, याद रख।।

'गीतायन', 454, रोशन गंज,
शाहजहाँपुर-242001 (उ.प्र.)

कविता

डॉ. पुष्पलता कुमार

हमारे दौर की महत्त्वपूर्ण एवं समर्थ रचनाकार। इनकी रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित।

वह आसमान पर था
मैं जमीन से आसमान पर देख रही थी
वह मुस्कराया आकर्षित हुआ बोला
मेरी प्रतिआत्मा हो तुम
सबकी होती है कोई न कोई
समाना चाहता हूँ तुममें
मैंने कहा तुम दागी हो
किस्सा सुना है तुम्हारा
हर जो चीज चमकती है
नहीं होती सोना
उसने कहा झूठ है मनगढ़त है
मेरी बेवफाई के किस्से
कुछ चाँद आज भी होते हैं
बिना दाग सीधे और सच्चे
अपना लो मुझे
तुम मेरे दिल की धरती का चाँद हो
वह जमीन पर उतरा
छोटा और छोटा और छोटा हुआ
पाँवों में बैठा बोला
अपना लो मुझे मेरी प्रतिआत्मा
मेरी जिन्दगी मेरी खुशी
सार्थक हो जायेगा मेरा होना
बंद करो ये नाटक
जाओ वापिस
मैंने कहा
वह सिक्के जितना बना जमीन पर
बिखर गया
न चाहते हुए भी मेरे विश्वास को कुतर गया
आँसू थे उसकी आँख में
जो काफी थे मेरे दिल के दरवाजे पर
टक टक करने के लिए
मेरा बेवकूफ दिल दरवाजा खोलकर
बाहर आया मुस्कराया बोला
सच्ची सच्ची बताओ
क्या मैं सच में तुम्हारी प्रतिआत्मा हूँ
उसने मासूमियत से हाँ में गर्दन हिलाई
दिल में न जाने कहाँ से ढेर सारी
करुणा, ममता, नेह, प्रेम की
सरिता उमड़ आई
जाओगे तो नहीं छोड़कर
मैंने दिल में फन उठाती
समझाती शंका के ना में
हिलते हाथों को देखकर पूछा
मिट जाऊँगा मगर अपनी प्रतिआत्मा से
अलग नहीं रहूँगा
पिछले जन्म का प्रेम हो
साथी हैं हम जन्म-जन्मान्तर के
मेरा बेवकूफ दिल आँखें चमकाकर
मुस्कराया
नहीं नहीं बेवकूफ कहकर
दिमाग ने जोरों से हाथ हिलाया
मगर मैंने झुककर नन्हा सितारा बना चाँद
चुटकी में उठाया मुट्ठी में दबाया
दिल का दरवाजा खोलकर आँगन में रख दिया
वह रोज बड़ा होने लगा
उसकी रोशनी में दिल चाँद चाँद
होने लगा
दिखाई न देने पर दिल चुपके चुपके रोने लगा
उसके काबू में होते जा रहे दिल को
दिमाग रोज थपकी से धोने लगा
एक दिन मैंने उसे मुट्ठी में पकड़ना चाहा
वह बाहर निकल गया
मुट्ठी खोलकर देखा ख्वाब सा फिसल गया
आँगन में तो क्या दिल के
किसी कोने में नहीं मिला
अपमान दुःख धोखे से ममता,
करुणा, नेह, प्रेम
की सरिता की बाढ़ आ गयी
मैं जगह-जगह उस चाँद को ढूँढ-ढूँढ कर
चकरा गयी
दिमाग ठहाके लगा रहा था
उँगली उठाकर आसमान से
जमीन पर उतरता हुआ
चाँद दिखा रहा था
वह और छोटा-छोटा होता जा रहा था
फिर किसी प्रतिआत्मा के पैरों में पड़ा था
उसने भी उसे उठाकर दिल के
आँगन में जड़ा था
आगे की कहानी पूरी समझ में आ गयी
दिल को दिमाग के साथ लातों से लतिया कर
दिमाग के काबू में आ गयी
फिर से एक चाँद मेरे पाँवों में पड़ा है
मगर दिल के दरवाजे पर दिमाग ने अब
अपना ताला जड़ा है।
हर प्रेम की यही नन्हीं सी कहानी है
इसका शिकार कोई आसमान का चाँद
या धरती की चन्द्रिका हो जानी हैं।

253/1, साउथ सिविल लाईन्स,
मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश)

वर्षा गीत

डॉ. पुष्पलता कुमार

हमारे समय की महत्त्वपूर्ण कवि, गीतकार हैं। इनकी रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

बदरी के संग लिपट रहा है
सांवरिया घन छम-छम बारिश
शर्म से सूरज पलट रहा है
सांवरिया घन छम-छम बारिश

पत्ते-पत्ते बूटे-बूटे
नहा रहे हैं खेत बाग वन
गागरिया सी उलट रहा है
सांवरिया घन छम-छम बारिश

चिंहुक उठा है चातक प्यासा
पकड़ रही बूँदें अभिलाषा
जल धारा में सिमट रहा है
सांवरिया घन छम-छम बारिश

धुला-धुला सा मन आँगन है
धुला-धुला तन छत दीवारें
घुला-घुला नभ चमक रहा है
सांवरिया घन छम-छम बारिश

युगों-युगों से बदरी प्यासी
सदियों से प्यासा बादल मन
प्यास बुझाता भटक रहा है
सांवरिया घन छम-छम बारिश

मदिर-मदिर सी हवा बही है
मृदुल-मृदुल सा हुआ है मौसम
कौन दिशा में अटक रहा है
सांवरिया घन छम-छम बारिश

छेड़-छेड़ कर जाता पानी
हँस-हँस नाच रही पंखुरियाँ
अब कलियों में चटक रहा है
सांवरिया घन छम-छम बारिश।

ग़ज़ल

रामबहादुर चौधरी 'चंदन'

हमारे समय के महत्त्वपूर्ण ग़ज़लकार-लेखक हैं। इनकी रचनाएं अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

(1)

प्यार गूँगा है, मगर बहरा नहीं है,
यह खुदा जिसका कोई चेहरा नहीं है।

हर जगह रहता है वह भगवान जैसा,
एक जगह लेकिन कहीं ठहरा नहीं है।

बागवाँ का जोर फूलों पर भले हो,
खुशबुओं पर तो कोई पहरा नहीं है।

सूख जाता है समय की गर्मियों में,
प्यार का पानी अगर गहरा नहीं है।

जिन्दगी है चन्द लमहों की कहानी,
प्यार होता है जहाँ सहरा नहीं है।

(2)

हमारे हक का अब बोलो हिसाब कब होगा,
सवाल जिन्दगी का है, जवाब कब होगा।

बुने थे ख़्वाब जो हमने हसीन आँखों में,
नज़र के सामने पूरा, वो ख़्वाब कब होगा।

बहुत हुआ है यहाँ खेल जाति-मज़हब का,
हरेक दिल से ही दिल का जुड़ाव कब होगा।

रहा न भेद कोई चोर और साधू में,
बुरे में और अच्छे में चुनाव कब होगा।

कसीदे रोशनी के पढ़ रहे हैं हम लेकिन,
गली में फिर रहा चेहरा किताब कब होगा।

चमन से हर तरफ फैले जो प्यार की खुशबू,
महक वो बाँटता हर दिल गुलाब कब होगा।

(3)

हम आपको इस वक्त की पहचान दे दें,
वह माँगता अपना हमें ईमान दे दें।

वो खोदते हैं कब्र भी कुछ इस अदा से,
जी चाहता है हम भी अपनी जान दे दें।

ओढ़ें गमों को आप या उसको बिछाएँ,
हमको तो अपने होंठ की मुस्कान दे दें।

जो जीत जाए जिस तरह भी वह सिकंदर,
जो हार जाए बस उसे हरिनाम दे दें।

कहता है होरी से समय का यह महाजन,
बस खेत है तेरा हमें खलिहान दे दें।

उम्मीद पर दुनिया सदा जीती रही है,
इस आस की कैसे कहो बलिदान दे दें।

(4)

दर्द अपना आपको हम क्या दिखाएँ,
टूटती जातीं निरंतर आस्थाएँ।

भावके भूखे कभी भगवान थे जो,
भोग के भूखे हुए हैं क्या बताएँ।

जल रहे रिश्ते सभी इंसानियत के,
बाँटती तेजाब ये वहशी हवाएँ।

मकड़ियों के जाल-सी उलझी हुई हैं,
नित नई बनती-बिगड़ती योजनाएँ।

दीमकों-सी चाट जाती जिन्दगी को,
बाढ़-सूखे की नियोजित आपदाएँ।।

फुलकिया, बरियारपुर, मुंगेर-811211 (बिहार)

गीत

सतीश गुप्ता

लेखक कानपुर निवासी हैं। पंजाब नैशनल बैंक से 2011 में सेवानिवृत्त हुए। तदोपरांत लेखन में भागीदारी एवं सक्रियता।

मन, मेरे आज उदास न हो

मन, मेरे आज उदास हो।
अब मौन नहीं चुप रहने को
लेकिन कुछ पास न कहने को
अभिव्यक्ति भटकती पगली सी
अनुभव की पीड़ा सहने को
मन, शब्दों का आकाश न हो।

जीवन की गाँठ नहीं खुलती
बिन माँगे भीख नहीं मिलती
नामों पर जीने-मरने से
जीवन की साँस नहीं चलती
मन, बिखरो नहीं निराश न हो।

पीड़ा के अम्बर का तारा
मन काँप रहा जैसे पारा
यह देह तड़पती मछली सी
हर प्यास लिए सागर खारा
मन, तृष्णा का परिहासन हो।

हम तुम हैं एक सरल रेखा
अंकों का लिखते क्या लेखा
हम चला किए पगडण्डी पर
कर राजमार्ग को अनदेखा
मन, छाया का आभास न हो।

फिर शाम हुई काजल कैसे
फिर आँख हुई बादल कैसे
क्यों दर्द रहा तनहा-तनहा
फिर पीर हुई पागल कैसे
मन, करुणा का इतिहास न हो।

मन ढूँढे सुख की परछाईं
मन मचले जैसे पुरवाई
मन रोज बगावत करता है
मन ने हर बार सजा पाई
मन, असमय का उपहास न हो।
मन, मेरे आज उदास न हो।

ऊपर-ऊपर जीता हूँ मैं

ऊपर-ऊपर जीता हूँ मैं
अन्दर-अन्दर मरता हूँ।

जीने की लाखों शर्तें हैं
मरने की शर्त नहीं
अनुबन्धन के सूर्य चमकते
नियम अर्हत नहीं
मेरे तेरे सब के संग हैं
चाहें रोज नयी
हर चाहत पूरी हो जाए
यही जतन मैं करता हूँ।

पक्का घर तो बना लिया
पर रिश्ता कच्चा है
परछाई को पकड़ रहा
मन कितना बच्चा है
सन्नाटे में तनहाई भी
सांय-सांय बोले
रिश्तों की चिन्दी चादर मैं
रोज ओढ़ता धरता हूँ।

किस संगीन जुर्म की कब तक
सजा काटनी है
कुआँ पूरना सम्बन्धों का
खाई पाटनी हे
हर रिश्ते की नदी भँवर में
क्यों फँस जाती है
दुःख के दर्द भरे टीले में
मैं धसने से डरता हूँ।

ग़ज़ल बन गयी

जुगनुओं सी सदा जगमगाती रही
जो यादों के दीपक जलाती रही
जो मेरे ख़यालों में आती रही
बाद मुद्दत के वो इक ग़ज़ल बन गयी।

अपने सीने में सब कुछ समेटे हुए
प्यार बनकर पिता गम लपेटे हुए
पीर की कोख से अश्क बेटे हुए
वेदना अपनी जिद पर अटल बन गयी।

कामनाओं के आगे उमर क्या करे
फूल की चाह में कोई कली ना झरे
चाँदनी-सी बिछी ख़्वाब की चादरें
झील में खिलखिला कर कमल बन गयी।

नाज़ में वो पली रेशमी फूल सी
खो गयी प्यार में कोई भूल सी
वो बिखरती रही राह में धूल सी
जिन्दगी की पहेली का वो हल बन गयी।

नीर नयनों से हरदम बहाती रही
प्यार के दर्द में वो नहाती रही
सीप भर प्यास को वो सताती रही
प्यास सागर बनी और वो जल बन गयी।

के-221, यशोदा नगर, कानपुर-20811 (उ.प्र.)

कविताएँ

राजेन्द्र राजन

हमारे दौर के महत्त्वपूर्ण कवि राजेंद्र राजन वर्षों से लेखन में सक्रिय हैं। इनकी कविताएँ, लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इन दिनों जनसत्ता के वरिष्ठ सहायक संपादक हैं।

इस फैलते हुए शहर में

जलकुंभियों की तरह फैलता जाता है हर रोज
यह शहर जिसमें मैं रहता आया
कोई नहीं जानता इसके फैलने की रफ्तार
न जल निगम का अध्यक्ष न शहर का महापौर
न हॉकर न ड्राइवर न कोई और
बस यह फैलता जाता है बिना किसी सोच के

आप जब तक टटोलें इसका सिर
इसकी पुरानी चादर से
और बाहर जा चुका होता है इसका धड़
आप जब तक मुआयना करें इसके पेट का
तब तक कुछ और फूल जाते हैं
इसके हाथ-पांव

मकानों की झाड़ियाँ
उगती चली जाती हैं गुत्थमगुत्था
लोग भागते रहते हैं एक दूसरे के ऊपर
कोई जगह नहीं जहाँ यह
आराम से साँस लेता दिखे

रोज-रोज फैल रहे इस शहर में
अब मैं ढूँढ नहीं सकता हूँ
अपने बचपन के निशान
नष्ट हो रहे हैं स्मृतियों के ठिकाने
वे जगहें कॉप्लेक्स वगैरा बनने की वजहों से
मिट गईं
जहाँ जुड़ते थे किस्से फूटते थे कहकहे
पता नहीं गुणीजनों का क्या हुआ
रसिकजन कहाँ गए

शरीर में फैली नाड़ियों की तरह
जुड़ी थीं इसकी गलियाँ और सड़कें
बलवाई की तरह नहीं
एक इकाई की तरह यह जीता था
अभी कुछ बरसों पहले तक
एक घटना चुभती थी एक हिस्से में
झनझना उठता था पूरा शहर
अब तुम कहीं भी सरेआम पिटते रहो
या खा ले कोई जहर
यह जरा भी हिलता-डुलता नहीं
बस फूल रही है इसकी काया
हर तरफ बढ़ी आ रही है भीड़।

अंतिम गान की पृष्ठभूमि

जगह नहीं पा सके जो मंच पर
बैठे हैं श्रोताओं की कुर्सियों पर
ऊबे हुए परोसे गए भाषणें को कोसे हुए
प्रतीक्षा कर रहे हैं उस नर्तकी की
जो अभी तक मंच पर नहीं आई
डूबे हैं थके हुए विचारों की निद्रा में
जो वक्ता बनकर खड़े हुए
अब जा चुका है उनका समय
धँस रही है साँझ
पृथ्वी के अपार अँधेरे में
मंच पर आ चुकी है नर्तकी
अनेक रंगों की चमकती रोशनी में
दर्शकों की आतुर आँखें
छू रही हैं उसके अंग-प्रत्यंग
उसके शरीर के कुछ हिस्सों पर
चमक रहे हैं कई नामी कम्पनियों के विज्ञापन

कुछ क्षणों बाद
हॉल में उठता है एकाएक
एक अनुल्लेखनीय शोर
एक आदमी कर रहा है
शांत रहने की अपील
मगर जल्दी ही आने लगती हैं
आवाजें और हिचकियाँ
नेपथ्य से उसके जोर-जोर उलटियाँ करने की

कौन सुनेगा कह नहीं सकते
मगर पूछ रहे हैं गायक कलाकार
किस राग में गाया जाए
अंतिम गान।

सम्पादकीय विभाग, जनसत्ता, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा-201301 (उ.प्र.)

नारी शक्ति

डॉ. पुष्पा प्रसाद

सुप्रसिद्ध लोक-गायिका, कजरी, ठुमरी, फगुआ से लेकर लोकनृत्य में निपुण। कई देशों में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की ओर से लोकगीत, संगीत, नृत्य आदि की प्रस्तुति दे चुकी हैं। राष्ट्र भावना एवं नारी शक्ति का एहसास एवं चिंतातुर, लगातार सृजनरत जीवन ही प्राथमिक ध्येय है।

भारत में नव बिहान लायें
हम सब मिल प्रेम गीत गायें।

हम नारी शक्ति भारत की
अनवरत स्रोत हैं हम ममता की
फैलायें हम प्यार का आँचल
घर आँगन सब महकायें।
भारत में नव बिहान लायें...।

सात रंग के सुर-ताल ले
हम सब गायें गीत मिलन के
लहरायें हम मलय-पवन सी
बासंती रंग छिटकायें
भारत में नव बिहान लायें...।

राग-द्वेष को दूर भगाकर
सद्भाव के दीप जलाकर
संस्कार के प्रखर वेग से
स्नेह सुधा हम बरसायें।
भारत में नव बिहान लायें।
हम सब मिल प्रेमगीत गायें।।

सुरंगमा, चाकबसु, पोस्ट-रमना, जिला-मुजफ्फरपुर-842001 (बिहार)

पुनर्मूल्यांकन का जोखिम

सुनील मांडीवाल

युवा लेखक-समीक्षक सुनील मांडीवाल कई वर्षों से दिल्ली विश्वविद्यालय के दयाल सिंह कॉलेज (प्रातः) में हिंदी के सहायक प्रोफेसर पद पर कार्यरत। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सक्रिय लेखन।

मूल्यांकन आधुनिक सभ्यता का सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द है। इसी के बूते मानव सभ्यता यहाँ तक पहुँची है। शब्द, शैली, विचार, सिद्धांत आदि सभी मूल्यांकन के उपादान हैं। मूल्यांकन को कैसे प्रभावी बनाया जाए और परिवर्तन में उसकी भूमिका को कैसे पहचाना जाए, यह साहित्यिक आलोचना का मामला है जिसके लिए हमेशा दूरदर्शिता एवं व्यापक दृष्टिकोण की अपेक्षा होती है। इससे मूल्यांकन की प्रासंगिकता एवं उपयोगिता दोनों बनी रहती हैं। इसलिए मूल्यांकन में बराबर बदलाव की प्रक्रिया की आवश्यकता होती है, जिसे पुनर्मूल्यांकन से संबोधित किया जाता है।

डॉ. अनुपम कुमार एक युवा आलोचक हैं जिन्होंने श्रीलाल शुक्ल की रचनाशीलता को पुनर्मूल्यांकित किया है। शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित 'श्रीलाल शुक्लः एक पुनर्मूल्यांकन' आलोचनात्मक पुस्तक है। जिसमें शुक्ल की मानसिकता को एवं उनके रचनागत प्रयोजन को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास है। यह आलोचनात्मक पुस्तक पाँच अध्यायों में विभक्त है। जिसका प्रथम अध्याय 'मूल्य' चेतना के विविध आयाम। दूसरा अध्याय आधुनिक हिन्दी उपन्यास और श्रीलाल शुक्ल, तीसरा अध्याय श्रीलाल शुक्ल एवं स्वातंत्र्योत्तर व्यंग्यकार, चतुर्थ अध्याय तीन उप-अध्यायों श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं में मूल्य चेतनाः सामाजिक मूल्य, श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं में मूल्य चेतनाः राजनीतिक मूल्य, श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं में मूल्य चेतना : सांस्कृतिक मूल्य एवं पंचम अध्याय उपसंहार के रूप में प्रस्तुत है।

मूल्य की चेतना मनुष्य पर कितना प्रभाव डालती है इसका मूल्यांकन मूल्य-चेतना के विभिन्न आयाम के अंतर्गत किया गया है। आधुनिक युग में 'मूल्य' शब्द केवल अर्थशास्त्र तक ही सीमित नहीं रहा बलिक दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि का भी विषय बन गया। विज्ञान की प्रगति के परिणामस्वरूप भौतिक जीवन समृद्ध हुआ और बुद्धिवादी दृष्टिकोण की प्रबलता ने जीवन दृष्टि को ही बदल दिया। तर्क और चिंतन का स्तर प्रमुखता प्राप्त कर व्यापक होता गया। प्रत्येक क्षेत्र में सीमाओं का बंधन टूट गया। शब्द भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा। उसका अर्थ विस्तार हुआ और विभिन्न दृष्टियों से उसकी अर्थवत्ता को परखा गया। इस पुस्तक में 'मूल्य' भी इसी अर्थ विस्तार का बोधक है। आधुनिक दृष्टि से 'मूल्य' शब्द को कतिपय नवीन आयामों में परिभाषित किया गया है। इस आलोचनात्मक पुस्तक में 'मूल्य' को सत्यम् शिवम् सुंदरम् के रूप में स्थापित किया गया है।

उपन्यास नितांत आधुनिक साहित्यिक विधा है। इस विधा ने व्यक्ति, समाज, इतिहास, राष्ट्र आदि में हुए सभी बदलावों को परखा है तथा उसे खुले शब्दों में अभिव्यक्त किया है। उपन्यास जीवन के सर्वाधिक निकट होने के साथ-साथ उसका प्रामाणिक चित्रण भी करता है। वह मानवीय मन की गहनतम छानबीन भी करता है। इस पुस्तक में आधुनिक उपन्यास की सापेक्षता में श्रीलाल शुक्ल के कथा-साहित्य को स्थापित किया

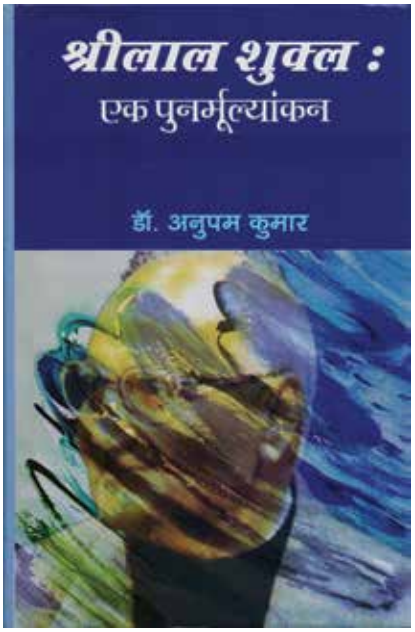

पुस्तक : श्रीलाल शुक्लः एक पुनर्मूल्यांकन

लेखक : डॉ. अनुपम कुमार

प्रकाशक : शिवालिक प्रकाशन, शक्ति नगर, दिल्ली-110007

मूल्य : 795 रुपए

गया है जहाँ श्रीलाल शुक्ल की रचनाशीलता के विकास में उपन्यास एवं कहानी लेखन का महत्त्वपूर्ण योगदान है लेकिन शुक्ल का कहानी के किसी आंदोलन से जुड़ाव नहीं रहा है। इसकी पड़ताल की गई है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग के रचनाकार अपने लेखन में प्रगतिशीलता के कारण व्यंग्य का बराबर प्रयोग करते रहे हैं। भारतेन्दु, बालमुकुंद गुप्त, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि से व्यंग्य की जिस गंभीर जीवन दृष्टि का आरंभ हुआ था वह अपने आप में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। दरअसल व्यंग्य को आधुनिक काल की एक उल्लेखनीय शैली माना जा रहा है। तीसरे अध्याय में आलोचक ने हरिशंकर परसाई, नरेन्द्र कोहली, शरद जोशी के समकक्ष श्रीलाल शुक्ल को खड़ा किया है। व्यंग्य शैली को अपनाने के कारण सामाजिक विद्रूपता के प्रति करुणा एवं आक्रोश दोनों बताया गया है। इन व्यंग्यकारों की तुलना में श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य को सत्ता का शालीन प्रतिपक्ष बताया गया है। यह आगे के आलोचकों को श्रीलाल शुक्ल एक कथाकार या व्यंग्यकार हैं, इसकी फर्क करने में मदद करता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारतीय राजनीतिक चेतना, सामाजिक चेतना एवं सांस्कृतिक चेतना का प्रस्फुटन भिन्न-भिन्न स्तर पर अलग-अलग रूपों में हुआ। राष्ट्रवाद के साथ व्यक्तित्व चेतना का विकास, व्यक्ति की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के साथ सराहनीय एवं समानाधिकार की चेतना का विकास भी आजादी के बाद हुआ। आजाद भारत में जहाँ एक ओर नूतन आलोकपूर्ण उपलब्धियों का गौरव और द्रुत विकास की स्थितियाँ रही हैं वहीं दूसरी ओर स्व-टूटन के अंतर्गत श्रीलाल शुक्ल की असाधारण ईमानदारी जरूरी, बेबाकी और असंदिग्ध सहानुभूति को उसकी विडंबनाओं, अन्तर्विरोधों और सहज मानवीयता में खोजने का प्रयास किया गया है। श्रीलाल शुक्ल की अपनी खोजी रची दुनिया में गहरी हिस्सेदारी है। उनकी बुनियादी नैतिकता दूसरों पर फैसला देने की नहीं है बल्कि उनके साथ शामिल होने और साझा करने की है। आलोचक ने इस हिस्सेदार दृष्टि और अधिक मानवीय लेखक के रूप में संवेदना को जगाने का काम किया है।

बाजार, मीडिया और विस्तार के दबाव में हिन्दी गद्य की बड़ी दुर्दशा हो रही है। खुलेपन और ग्रहणशीलता के नाम पर मनमानी, गैर मुहावरेदारी, अस्वाभाविक अशुद्धताओं की पड़ताल श्रीलाल शुक्ल के संदर्भ में यह पुस्तक करती है। इसमें बताया गया है कि श्रीलाल शुक्ल हिन्दी के उन लेखकों में से हैं जिन्होंने 'शुद्धता के पाखंड' की लगातार पोल खोली है। श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं में बदलाव की इच्छा और उसके लिए अथक अनवरत संघर्ष है, पर अपनी सामाजिकता का दिखाऊ इजहार नहीं है।

यह शोधपरक आलोचनात्मक पुस्तक श्रीलाल शुक्ल की रचनाशीलता को समझने में पाठकों को महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट सामग्री देती है। शुक्ल के मानस को समझने में पाठकों को विचार सूत्र सौंपती है। जिससे पता चलता है कि श्रीलाल शुक्ल व्यंग्यात्मक शैली एवं आम पाठक के जीवंत रिश्ते के बीच एक उज्ज्वल पड़ाव थे।

हिंदी-विभाग, दयाल सिंह कॉलेज (प्रातः),
दिल्ली विश्वविद्यालय, लोदी रोड,
नई दिल्ली-110003

नरेन्द्र मोदीः एक मूल्यांकन

सुनील कुमार वर्मा

युवा समीक्षक सुनील कुमार वर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय में शोधार्थी एवं लेखन में सक्रिय। साथ-साथ श्यामलाल कॉलेज (सांध्य) में अतिथि हिन्दी प्राध्यापक। संप्रति तदर्थ अध्यापन गार्गी कॉलेज में।

कुलदीप सिंह राघव द्वारा लिखित पुस्तक 'नरेन्द्र मोदीः एक शोध' के संदर्भ में राज्यसभा सांसद श्री तरुण विजय का यह कथन भी उद्धृत कर देना चाहिए, ''भारत के सुषुप्त आत्मा के नवजागरण की इस चैतन्य-पर्व भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी वैश्विक स्तर पर नेतृत्व का मानक बन गए हैं। उनका व्यक्तित्व-कृतित्व और नेतृत्व करोड़ों भारतीयों को प्रेरणा देता है।... यह पुस्तक श्री नरेन्द्र मोदी से जुड़ी समस्त जिज्ञासाओं को शांत करेगी।''

निश्चित रूप से लेखक कुलदीप सिंह राघव ने प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के जीवन के विभिन्न पहलुओं को साधारण जन की भाषा में सरल एवं सहज प्रस्तुति दी है। इस पुस्तक में लगभग पच्चीस लेख या कहें कि टिप्पणियाँ हैं। इन टिप्पणियों के माध्यम से श्री नरेन्द्र मोदी की विचारधारा एवं जीवन के बारे में करीब से जानने का अवसर प्राप्त होगा।

लेखक कुलदीप सिंह ने इस पुस्तक के माध्यम से गागर में सागर भरने का काम किया है। नरेन्द्र दामोदर दास मोदी के जन्मकाल से लेकर उनका परिवार, उनका पारिवारिक जीवन, उनके बाल्यकाल में पिता के साथ चाय बेचने से लेकर उनके प्रधानमंत्री बनने तक के घटनाक्रम का सटीक और सार्थक संकलन समीक्षाओं और आलोचना के माध्यम से किया गया है।

17 सितम्बर, 1950 को मेहसाणा के बड़नगर गाँव में बालक नरेन्द्र मोदी का जन्म हुआ। 1968 ई. में जसोदाबेन से विवाह हुआ और लेखक के अनुसार मोदी पहले ही दिन पत्नी को अध्ययन की सीख देकर घर से निकल गए। मोदी 1987 में गुजरात अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के प्रभारी बने फिर गुजरात भाजपा के महासचिव। 'विदेशी मीडिया दंग' शीर्षक अध्याय में भाजपा की 2014 के चुनाव ने शानदार प्रदर्शन से विश्व के पटल पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की छाप का विश्लेषण किया गया है। अमेरिकी अखबार 'न्यूयार्क टाइम्स' हो या 'वाशिंगटन पोस्ट' या ब्रिटिश मीडिया 'द टेलीग्राफ', सबने इस नेता को हिन्दूवादी पार्टी के शीर्ष पर पहुँचने का करिश्माई नजरिया पेश किया। पाक मीडिया में तो खलबली-सी मची और मोदी को लेकर चिंता के स्वर भी दिखे। जिस अमेरिका ने नरेन्द्र मोदी को अपने यहाँ आने पर बैन लगा रखा था वही अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा का नरेन्द्र मोदी की सफलता पर बधाई देने के साथ-साथ अमेरिका आने का न्यौता भी देने से नहीं चूके।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की पहली पसंद थे मोदी। इसी कारण तमाम आलोचनाओं और विरोध के स्तर के बावजूद 5 सितम्बर, 2013 को मोदी के जन्मदिन पर उन्हें प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया गया। संघ निश्चित रूप से एक संस्कार का निर्माण करता है और उसके साक्षात् मूर्ति हैं नरेन्द्र मोदी। संघ के प्रति मोदी की भक्ति देखकर ही देश का नेतृत्व करने का आदेश संघ की तरफ से मिला।

लेखक ने 2014 के चुनाव प्रचार के दौरान प्रयोग किए गए तमाम उपायों का वर्णन भी किया है। 'मैं देश नहीं मिटने दूँगा' शीर्षक वाला गीत बहुत लोकप्रिय हुआ। इस गीत को सुखविंदर सिंह ने गाया है और प्रसून जोशी ने लिखा है। संगीत आदेश श्रीवास्तव का है। यथा—

''सौगंध मुझे इस मिट्टी की
मैं देश नहीं मिटने दूँगा।
मैं देश नहीं रुकने दूँगा,
मैं देश नहीं झुकने दूँगा।''

इस गीत के साथ ही उन नए-नए नारों का जिक्र भी है जिसके सहयोग से भाजपा सत्ता तक पहुँची। इस पुस्तक की गहराई विचारधारा के स्तर पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्कार को सामान्य पाठक तक सहज, सरल भाषा में पहुँचाना है। संस्कार पुरुष के रूप में नरेन्द्र मोदी हमारे सामने आते हैं। साथ ही पुस्तक की खूबसूरती विपरीत अभिव्यक्तियों को भी उचित स्थान देना है। संघ के कार्यकर्त्ता से लेकर प्रधानमंत्री बनने तक के संघर्ष में विपरीत

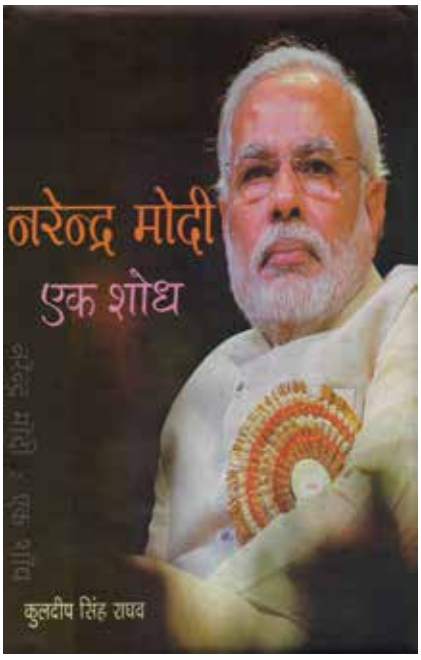

पुस्तक : नरेन्द्र मोदीः एक शोध

लेखक : कुलदीप सिंह

प्रकाशक : अनंग प्रकाशन,
दिल्ली-110053

मूल्य : 325 रुपए

अभिव्यक्तियों की कोई कमी नहीं रही। लेखक ने उसे भी स्थान दिया है।

लेखक ने मोदी की जनसभाओं के साथ-साथ कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं को संकलित किया है।

लेखक ने एक पक्ष को गहराई से नहीं लिया है वह है मोदी जी की शिक्षा, उसका जो भी कारण रहा हो। बहरहाल जो पाठक संक्षिप्त रूप में नरेन्द्र मोदी के जन्म, परिवार और उनके सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन की घटनाओं को जानना चाहते हैं, उनके लिए पुस्तकः 'नरेन्द्र मोदीः एक शोध' निश्चित रूप से उपयोगी व सार्थक सिद्ध होगी।

**जयपाल सिंह, 36, डूप्लेक्स, द्वितीय तल,
गुड़मण्डी, दिल्ली-110007**

राष्ट्रीय एकता की मजबूत कड़ी

गंगा प्रसाद विमल

लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार एवं जाने-माने कवि एवं लेखक।

राष्ट्रीय एकता की मजबूत कड़ी के रूप में हिन्दी को याद करना हिन्दी के एक ऐतिहासिक दायित्व को याद करना है। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में हिन्दी के सहारे विकसित स्वाधीनता संग्राम ने विश्व के तमाम स्वाधीनता संग्रामों से हटकर जिस लड़ाई की शुरुआत की थी उसके हथियार थे जनाकांक्षा, सत्याग्रह, सविनय विरोध, सविनय अवज्ञा, स्वेच्छा से शक्तिशाली का दण्ड झेलना और दंड की यातना को ही औजार बनाकर शक्तिशाली की शक्तिहीनता सिद्ध करना। बड़ा विचित्र संग्राम था यह। यह भारत में ही जन्म सकता था। क्योंकि भारत में सदियों पहले बिना हथियार केवल वैकल्पिक विचार के रूप में विश्व विजय का एक और सपना चरितार्थ हुआ था जिसने समूचे एशिया को कुछ ही समय में समता के आदर्श लोक में ढाल दिया था और उस विचार का मुख्य लक्ष्य था एकता और शांति और वह भी सामुदायिक स्तर पर, वह भी एक ऐसी प्रार्थना के रूपमें कि वह प्रार्थना ही तमाम तरह के विभक्तिदायक कष्टों से छुटकारा दिलाए।

इस तथ्य के मूलाधार पर केन्द्रित राष्ट्रीय एकता के विचार के पीछे अगर कोई शक्ति है तो वह भाषा ही है जिससे हम एक-दूसरे से सम्बोधित होते हैं। प्रो. अनन्तराम त्रिपाठी ने ठीक ही याद दिलाया कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने आरंभ में ही कहा था कि भारत की राष्ट्रभाषा वही हो सकतीहै, ''जो सहज और सुगम हो। जो धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में माध्यम भाषा बनने की शक्ति रखती हो। जिसके बोलने वाले बहुसंख्यक हों, जो पूरे देश के लिए सहज रूप से उपलब्ध हो। अंग्रेजी किसी तरह से इस कसौटी में खरी नहीं उतर पाती। हिन्दी ही वह भाषा है जो पूरे भारत में इस कसौटी पर खरी उतरती है।''

असल में स्वाधीनता संग्राम के दिनों में विचारधाराएँ अपनी जगह काम कर रही थीं परंतु उनका लक्ष्य एक था—भारत को विदेशी दासता से मुक्त कराना और इसके लिए भारतीय बहुलता के बीच से एकता का रास्ता हमारी भाषाएँ प्रशस्त करती थीं। पूरा भारत भारतीय भाषाओं से एक-दूसरे को सम्बोधित था और उनमें एक विचित्र प्रकार का लोक संवाद सतत चलता रहता था। उस लोक संवाद से लोक आदर्श, लोकानुभव, लोकगायन, लोक चेतना और लोक सौन्दर्य परस्पर एक-दूसरे के बीच पहुँचता था और यह जादुई कार्य लोक भाषाएँ अर्थात् हमारी मातृ भाषाएँ, हमारी मादरी जुबानें करती थीं। हिन्दी के शीर्षस्थ लेखक विष्णु प्रभाकर ने स्पष्ट शब्दों में अपनी भाषाओं का पक्ष रखा। विष्णु जी की मान्यता है, ''भाषा केवल सम्प्रेषण ही नहीं करती, चरित्र का उद्घाटन भी करती है। समाज को जोड़ती है, समाज को धारण करती है। स्पष्ट है कि यह काम सबसे अच्छे रूप में मातृभाषा के द्वारा ही हो सकता है, क्योंकि सपने आदमी अपनी मातृभाषा में ही देखता है। उसका साहित्य भी मातृभाषा में ही लिखा जा सकता है। और जो आदमी अपनी माँ को प्यार नहीं कर सकता, वह दूसरे की माँ को भी प्यार नहीं कर सकता। जो अपनी मातृभाषा में पारंगत हो जाता है वह दूसरी भाषा भी अपेक्षाकृत आसानी से सीख लेता है।'' स्पष्ट है विष्णु जी ने मातृभाषाओं का महत्त्व देखते हुए राष्ट्रीय एकता की दृढ़ता के सूत्र वही देखे जो अस्तित्वमय हैं पर दीखते नहीं और क्योंकि वे अदृश्य हैं इसलिए बहुत भीतर तक गए हुए हैं। विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक

ग्रंथ : राष्ट्रीय एकता की कड़ी : हिन्दी भाषा और साहित्य

संपादक : डॉ. केशव फालके

प्रकाशक : डायलाग, पुणे-411008

पृष्ठ संख्या : 324

मूल्य : 250 रुपये

संस्करण : 2016

जयन्त विष्णु नार्लीकर ने इस प्रश्न को विज्ञान सम्मत सत्य के आलोक में देखना ज्यादा युक्तिसंगत माना है क्योंकि उनकी मान्यता है कि कई कारणों से राष्ट्रीय एकता पर हमले भी होते रहे हैं। उनकी मान्यता है कि अंध श्रद्धा उनमें से एक है और इसी कारण प्रो. नार्लीकर वैज्ञानिक आधार की ज्यादा वकालत करते हैं, ''राष्ट्रीय एकता पर होने वाले इन हमलों का सामना करने का एक प्रभावशाली साधन है वैज्ञानिक दृष्टिकोण का। यह दृष्टिकोण हमें विज्ञान के विकास से मिला; यद्यपि इसका प्रभाव विज्ञान तक ही

सीमति नहीं है। जनसाधारण के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब सही निर्णय लेना कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमें अधिकतम वास्तविक जानकारी पर आधारित निर्णय लेना सिखाता है।''

नार्लीकर ने विज्ञान-तकनीक की प्रगति से जोड़कर भाषा की शक्ति को सराहा है। वस्तुतः राष्ट्रीय आधार हमारे इतिहास, प्राचीन ज्ञान, शास्त्र-विमर्श और आध्यात्मिक उन्मेष से बनते हैं जबकि छोटे स्तर पर हम भौगोलिक परिसीमाओं को ही स्वीकार करते हैं तथापि राष्ट्र की भारतीय संकल्पना विश्व की सर्वाधिक पृथक अवधारणा है, उसके भीतर हमारे सह-संपर्क के सभी साधन रहते हैं और वह हमारे आचरणों में गुरुतर लक्ष्यों में रूपांतरित होते हैं। इन दोनों सीमान्तों से अलग वास्तविक के सीमान्त का परिचय कराते हुए विख्यात पत्रकार नंद किशोर नौटियाल ने स्पष्ट किया ''कि 1947 में देश आजाद तो हो गया, मगर भाषायी आजादी विरोधी तत्त्वों का प्रभाव बरकरार है। इनका सबसे उजागर चेहरा नौकरशाही है। यह हिन्दी की उपभाषाओं को हिन्दी से अलग करने में जितनी संलग्न दिखती है उतना अंग्रेजी को अलविदा कहने में नजर नहीं आती। इनकी प्रेरणा का स्रोत क्या है वह अपनी जगह पर शोध का विषय है, क्योंकि ये उन उपभाषाओं के निष्णात विद्वान नहीं हैं, जिनकी पैरोकारी करते हुए एक तरफ हिन्दी के वटवृक्ष की शाखाओं और जटाओं को कतर रहे हैं और दूसरी तरफ हमारी स्वदेशी भाषाओं को अंग्रेजी का गुलाम बनाए रखने की औपनिवेशिक साजिश को सफल करने में शर्मनाक सहयोग कर रहे हैं। अंग्रेजी की गुलामी से राष्ट्रीय मुक्ति की लड़ाई राष्ट्रभाषा हिन्दी, राष्ट्रध्वज तिरंगे और राष्ट्रगीत वंदेतामरम के माध्यम से लड़ी और जीती गयी। इन तीनों ने राष्ट्रीय एकता की ऐसी लहर पैदा की कि अंग्रेजों को जाना पड़ा। आज हम एक स्वाधीन राष्ट्र हैं। हमारा अपना संविधन है। उसके अनुसार हमारी राज्य-प्रणाली है। हमारी सार्वभौम, स्वाधीन राष्ट्रीयता के प्रतीक हैं हमारा राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत। लेकिन विडंबना देखिए कि हमारी कोई राष्ट्रभाषा नहीं है।''

श्री नौटियाल ने जनाकांक्षा से निर्मित राष्ट्र की संकल्पना से विषय को संलग्न करते हुए स्पष्ट किया है।

''स्वराज की लड़ाई ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया। हमारे राष्ट्रगान जन गण मन... में वही राष्ट्रभाषा है हिन्दी; फिर भी कितनी बेतुकी बात है कि हिन्दी कानूनी तौर पर राष्ट्रभाषा नहीं है। क्यों नहीं है? जिस भाषा ने पूरे देश को आजादी की लड़ाई में जोड़ा, उसी के खिलाफ दलील दी गई कि अगर उसे राष्ट्रभाषा बना दिया गया तो राष्ट्रीय एकात छिन्न-भिन्न हो जाएगी, देश टूट जाएगा।'' नन्द किशोर नौटियाल की तर्क पद्धति से ही रास्ता लिया जाए तो कहना होगा कि भारत राष्ट्र के शेष राष्ट्रीय गुण धर्मों का चयन हमारे लोक समाज ने किया ही हुआ है ठीक वैसे जैसे हमें भारत नामक अवधारणात्मक, ज्ञानात्मक राष्ट्रीय पहचान मिली हुई है।

डॉ. राम जी तिवारी ने प्राकृतिक आधार पर अन्वेषित किया है। उनका कहना है ''भारतीय वाङ्मय में अति प्राचीनकाल से राष्ट्र के प्रति निष्ठा और दायित्व चेतना का अभिव्यंजन निरंतर होता रहा है। वही वैदिक साहित्य में राष्ट्रीय संकल्पना को अत्यंत व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। इसमें भौगोलिक सीमा और राजनैतिक व्यवस्था के साथ ही राष्ट्रसीमा में बसे जनसमूह की जीवन पद्धतियों की समरूपता, भावनात्मक एकता, विचारों की समता, राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की प्रतिबद्धता, रागात्मक संबंधों की दृढ़ता और आंतरिक समन्वय पर भी अत्यधिक बल दिया गया है।'' वैदिक साहित्य में प्रगतिशील राष्ट्र के चरम उत्कर्ष के लिए जिन आकांक्षाओं को बार-बार दुहराया गया है उनमें परस्परावलंबन और एकात्मभाव पर सर्वाधिक बल दिया गया है। वस्तुतः आज यह देखने की आवश्यकता है कि भारत राष्ट्र किस कोटि का है? भावैक्य के आधार पर डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित ने इसे स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि ''1857 के गदर में कई रजवाड़े पहली बार एकजुट हुए थे। स्वातंत्र्य आंदोलन के बीच समस्त भारती भूभागों को पहली बार एकीकृत किया गया था। इसका श्रेय सर्वाधिक गाँधी जी को दिया जा सकता है। यह भी सही है कि यहाँ अभी तक पूरा राष्ट्रैक्य नहीं आ पाया है। संघ राष्ट्र बन जाने के बाद भी हमारे यहाँ कुछ राज्य कभी-कभी नदी के पानी के बँटवारे को लेकर भिड़ जाते हैं और कभी एक नगर विशेष को राजधानी बनाने के प्रश्न पर परस्पर जूझने लगते हैं। किन्तु इन मतभेदों के कारण भारतीय राष्ट्रीयता पर संदेह करना तर्कसंगत नहीं होगा। प्रजातांत्रिक व्यवस्था में, विचार स्वातंत्र्य की लंबी परंपरा में और सम-विषम विभिन्न सत्तारूढ़ दलों में इस प्रकार के मतभेद यदा-कदा उभरते ही हैं, फिर भी हम हजारों वर्षों से महाकुंभ जैसे मेले में सम्मिलित होकर अपनी राष्ट्रीयता को सँजोए हुए हैं।'' तथापि आज हम एक सुसंगठित राष्ट्रीय इकाई हैं। हमारा भूगोल स्पष्ट है क्योंकि हम न आक्रान्ता हैं न विस्तारवादी। हमारे पड़ोस में भूगोल के भूखे विस्तारवादी दक्षिण एशियाई समुद्र पर भी नजर गड़ाए हुए हैं। जबकि हम सर्वहित में अपनी राष्ट्रीय परिसीमाओं को विश्व शांति की दृष्टि से उदार और क्षेत्रानुकूल बनाने की दिशा में प्रयासरत हैं। भारतीय राष्ट्र वैश्विक या क्षेत्रीय षड्यंत्रों से कमजोर पड़ने वाला नहीं है क्योंकि यह ज्ञानाधारों से निर्मित एक ज्ञानलोक है जो जितना दिखाई देता है उससे ज्यादा वह विमर्शात्मक चक्षुओं से अपनी अतल गहराइयों में दिखाई देगा।

भारतीय राष्ट्रीय एकता की सबसे मजबूत कड़ी हिन्दी ही है क्योंकि उसकी जड़ें तमाम भारतीय भाषाओं से अपने लिए हवा पानी लेती हैं। भारतीय भाषाओं का सह संपर्क अनेक स्तरों पर सक्रिय है। वह लोक भाविक विशेषताओं को एक-दूसरे के भीतर रसने-बसने देता है। उसी से ज्ञानात्मक एकता का भाव सुदृढ़ होता है। राष्ट्रीय एकता पर केन्द्रित यह ग्रंथ हिन्दी के बहाने भारतीय भाषाओं और भारतीय साहित्य पर पुनर्विचर की प्रेरणा भी देता है और यह खोजने के लिए पर्याप्त आधार देता है कि विदेशी भाषा के मुकाबले भारत की एकता को मजबूती देने वाली कड़ियाँ भारतीय भाषाएँ ही हैं।

112, साउथ पार्क, कालकाजी, नई दिल्ली-110019

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....
.....
.....
.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....
.....
.....
.....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.....	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US $ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US $ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं..... दिनांक.....

रु./US $..... बैंक.....भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....
नाम.....
पद.....
दिनांक.....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पांच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनांचल (हिंदी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिंद (अरबी) और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल हैं। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिंदी, अंग्रेजी व अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गए हैं।

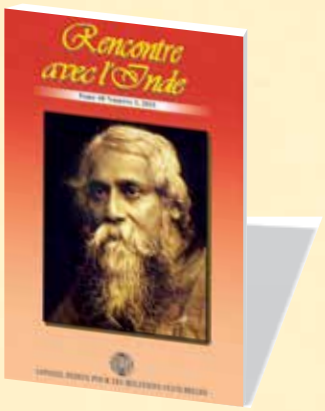

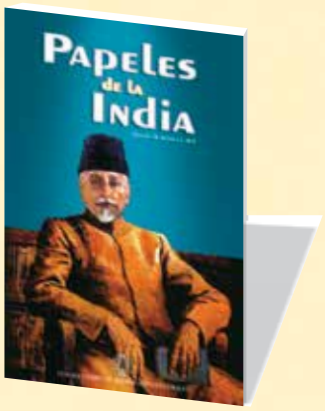

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

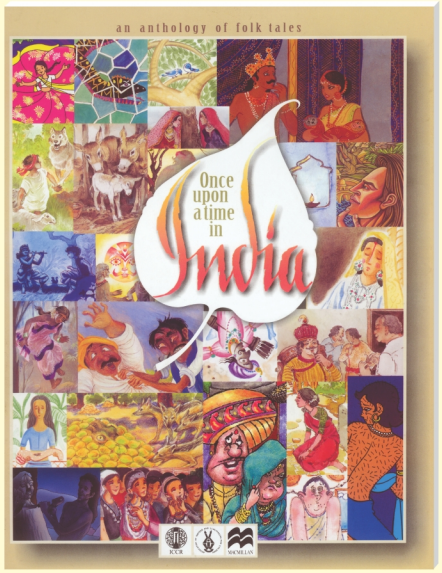

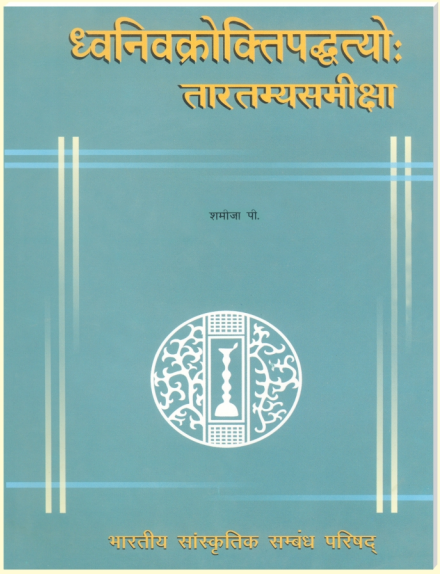

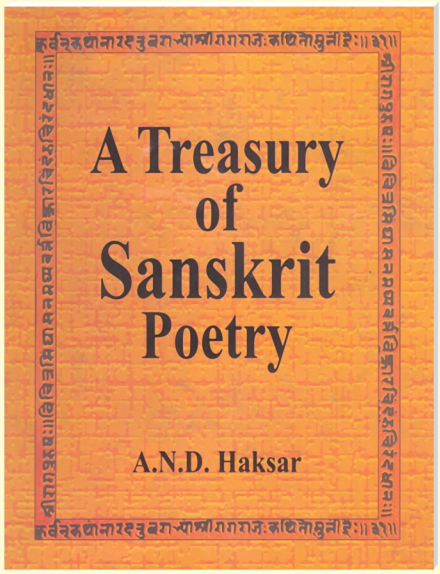

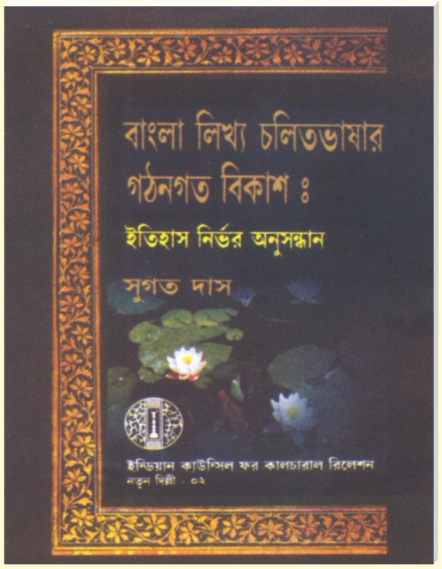

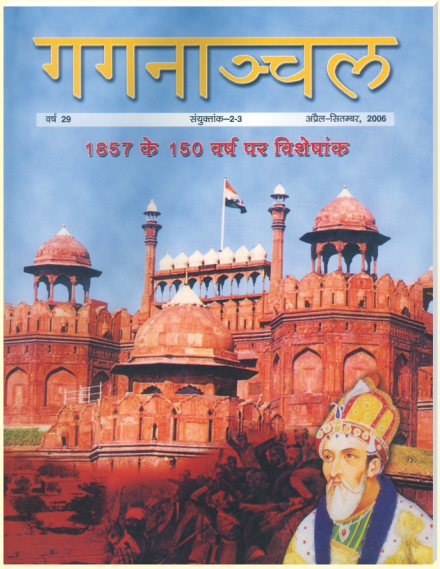

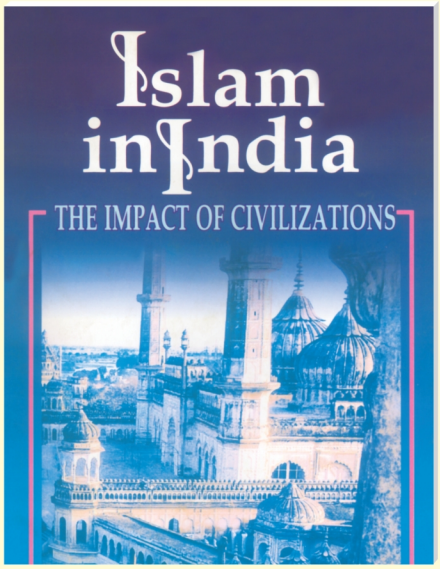

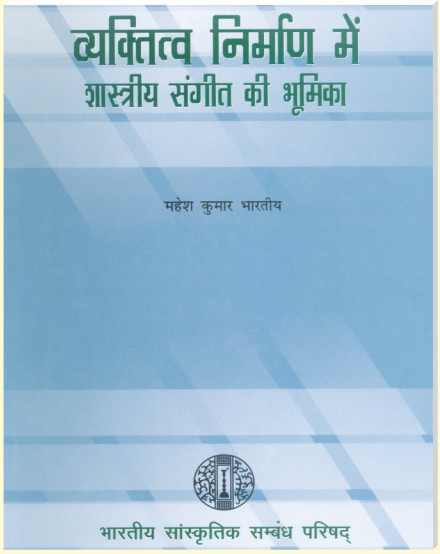

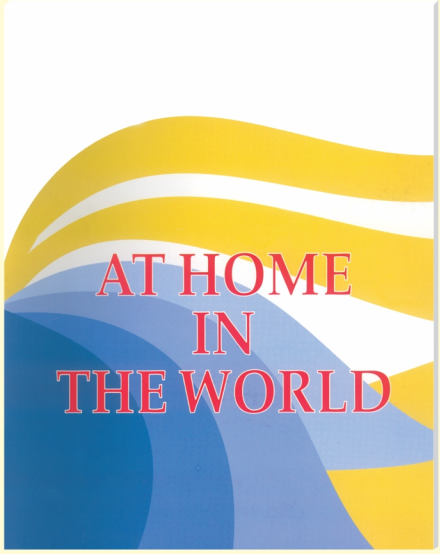

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

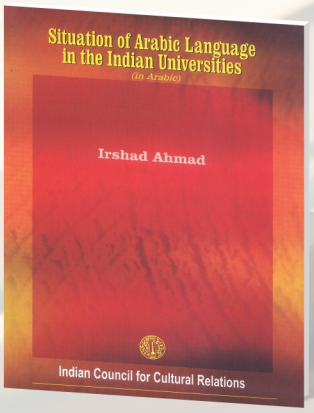

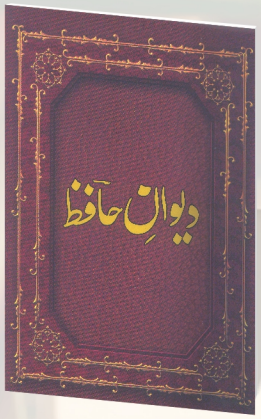

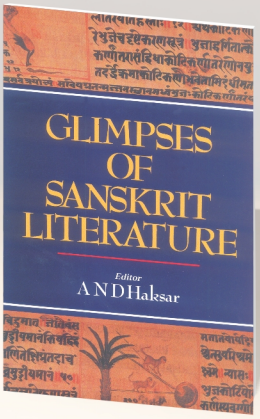

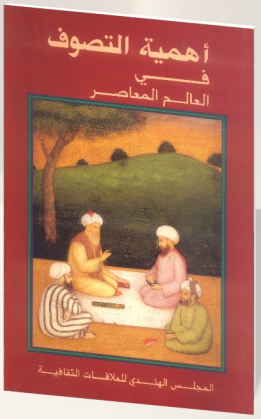

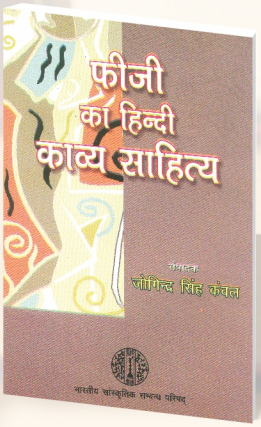

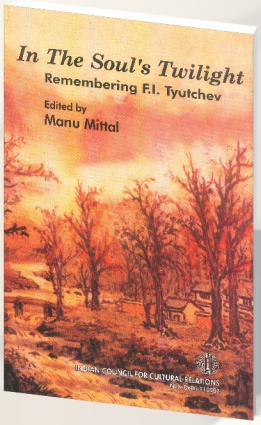

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310
फैक्स: 23378639, 23378647, 23378783
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccr.gov.in